HISTORY OF BANARAS IN MEDIEVAL. PERIOD.

मध्यकालीन बनारस का इतिहास,

1206 से 1761 ई०

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डॉक्टर आँफ फिलाँसफी
की डिग्री हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध,

निर्देशक :
डाँ० हेरम्ब चतुर्वेदी

शोधकर्ता :
सचिन्द्र पाण्डेय

मध्य कालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद,

2002

विषय–सूची

प्राक्कथन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध १२०६–१७६१ ई० के मध्य 'बनारस का इतिहास' के अर्न्तगत इस नगर मे होने वाली राजनीतिक गतिविधियो, सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक प्रगति तथा सास्कृतिक उपलब्धियों की समीक्षा की गयी है। इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण होने मे कुछ व्यक्तियो ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है, उन्हे साधुवाद किये बगैर मै अपना दायित्व पूर्ण न कर सकूँगा।

मै अपने निर्देशक डॉ० हेरम्ब चतुर्वेदी के प्रति बार–बार सम्मान प्रकट करता हूँ, जिनके कुशल एव स्नेहित निर्देशन में इस शोध प्रबन्ध कार्य को पूर्ण करने मे महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। मैं, डॉ० हेरम्ब चतुर्वेदी एवं उनकी पत्नी श्रीमती आभा चतुर्वेदी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिए संदैव प्रेरित किया।

मैं अपने पिता श्री रामउदार पाण्डेय एवं माता श्रीमती प्रभावती देवी को शत्–शत् नमन् करता हूँ जिनके स्नेह व उत्साहवर्धन ने मुझे इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिए मुझे प्रेरणा व शक्ति प्रदान की।

मैं अपने विभाग के समस्त प्राध्यापकों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिनसे मुझे समय–समय पर उचित सलाह प्राप्त हुई।

मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, ईश्वरी प्रसाद शोध संस्थान, इलाहाबाद, इलाहाबाद म्यूजियम, इलाहाबाद, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, आदि के

पुस्तकालयाध्याक्षों एव उन कर्मचारियों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने मुझे शोधकार्य हेतु पुस्तकें उपलब्ध करायी।

अन्त में मैं इस शोध प्रबन्ध का टंकण कार्य करने वाले को ह्रदय से धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होने व्यक्तिगत रूचि के साथ इस कार्य को समपादित किया।

Sachindra Pandey
7/10/2002
सचिन्द्र पाण्डेय
"शोध छात्र"
मध्य/आधुनिक इतिहास विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद।

अध्याय : प्रथम

पृष्ठभूमि : प्राचीन बनारस

ऐतिहासिक विकास कम में बनारस के भौगोलिक एवं प्राकृतिक संरचना के विषय मे प्राचीन साहित्य के अन्तर्गत, विशेष रूप से पुराणो मे जो उल्लेख प्राप्त होते है, उनसे यह स्पष्ट होता है कि बनारस की प्राकृतिक संरचना गगा घाटी से निर्मित थी। प्राचीन काशी की भौगोलिक सीमा के विषय मे साक्ष्य प्राप्त नही हुए हैं, लेकिन पुराणो और सम्बन्धित भौगोलिक अनुसधानो के अन्तर्गत जो विवरण प्राप्त होते है, उसी आधार पर यह स्वीकार किया जाता है कि बनारस की सीमाएँ गगा वरूणा और असि नदी से सम्बन्धित थी।[1]

बनारस की भौगोलिक संरचना इसके नाम से सम्बद्ध है। इसे काशी के रूप मे स्वीकार किया जाता है। काशी की पौराणिक उत्पत्ति को स्वीकार करने में विभिन्न जटिलताओ और समस्याओ का भी उल्लेख किया गया है। डा० मोतीचन्द्र ने काशी की प्राकृतिक सरचना का वर्णन करते हुये यह स्पष्ट किया है कि यह कहना कठिन है कि जब प्राचीन युग में यहाँ मनुष्य बसा तो काशी की प्राकृतिक बनावट का क्या रूप था, पर कृत्यकल्पतरू, काशी खण्ड और १६वी सदी में चार्ल्स प्रिन्सेप के नक्शों के आधार पर यह कहना सम्भव है कि गगा–वरूणा सगम से लेकर गगा–असि सगम के कुछ उत्तर तक एक ककरीला करारा था। असि नदी न होकर बहुत ही साधारण नाला था। इसका भी कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता कि प्राचीन काल मे इसका रूप नदी का था। प्राचीन काशी की स्थिति से सम्बन्धित अन्य साक्ष्य भी इस मत का

---

[1] अथर्ववेद, वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १८८५, ४ / ७ / १, काशी खण्ड (स्कन्द पुराण), खेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई, १६०८, पृ० १६१ एवं अग्निपुराण, (सम्पा०) आनन्द शर्मा, पूना १६५७, ३५ / २०

समर्थन नही करते। प्रायः विद्वान एकमत है कि प्राचीन काशी आधुनिक राजघट के ऊॅचे मैदान पर बसी थी। नगर का प्राचीन विस्तार, जैसा कि, भग्नावशेषो के अध्ययन से पता चलता है, वरूणा के उस पार भी था। परन्तु अस्सी (असि) की तरफ तो बहुत ही कम प्राचीन अवशेष मिले हैं और जो मिले भी है वे परवर्ती अथवा मध्यकाल के है।[२] तात्पर्य यह कि आधुनिक वाराणसी का बहुत कुछ स्वरूप मध्यकाल मे प्रस्थापित हो चुका था। इसमे सन्देह नही है कि मध्यकाल मे बनारस की सीमाओ का निर्धारण गगा, वरूणा और अस्सी द्वारा निर्मित सीमाआ से था, क्योकि प्राचीन काशी का मूल केन्द्र राजघाट से स्थानान्तरित होकर आधुनिक वाराणसी के मध्य क्षेत्रों में स्थापित हो गया था। बनारस की प्राकृतिक सरचना और विस्तार के विषय मे मत्स्य पुराण के अन्तर्गत इसके विस्तार का उल्लेख प्राप्त होता है। मत्स्य पुराण मे काशी की पूर्व से पश्चिम तक दो या ढाई योजन लम्बाई, वरूणा से अस्सी तक, स्वीकार की गयी है, और आधा योजन चौड़ाई का उल्लेख किया गया है। लेकिन गगा के अर्धचन्द्राकार होने के कारण इसकी चौड़ाई कही—कही ढाई योजन तक भी इगित की गयी है।[३] ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में पतजलि के अष्टाध्यायी में काशी की भौगोलिक सरचना का जो विवरण प्राप्त होता है, उससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन काशी वरूणा के साथ—साथ गंगा के उस पार भी थी।[४] पुरातत्व से प्राप्त साक्ष्य यह इंगित करते है कि मौर्य और शुंग युग में राजघाट पर काशी स्थित थी।[५] ब्रह्म पुराण के अनुसार उत्तरमुखी गंगा वाले क्षेत्र का प्रमाण पांच योजन तक था जबकि स्कन्द पुराण के अनुसार काशी का विस्तार चारों ओर चार कोस तक था।[६] अग्नि पुराण के अनुसार

---

[२] डॉ मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९८५ (द्वितीय सस्करण), पृ. २—३

[३] मत्स्य पुराण, मूल श्री जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य संस्कृत प्रकाशन, कलकत्ता, १८७६, हिन्दी अनु. पण्डित रामप्रताप त्रिपाठी, साहित्य सम्मेलन, प्रयाग संवत, २००३, पृ० ३६

[४] अष्टाध्यायीः पाणिनी, अग्रेजी अनु. एस सी वसु, दिल्ली १९६२, (पुनर्मुद्रित), स्त्रोत २/१/१६

[५] डा० मोती चन्द्र पूर्वोक्त, पृ० ४—५

[६] लक्ष्मीधर, कृत्यकल्पतरु, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा, १९४२, पृ० ३१

वरूणा व असि नदियो के बीच काशी का विस्तार पूर्व मे दो योजन और दूसरी जगह आधा योजन है।[७] लेकिन जातक कथाओ से इसकी सीमाए अत्यधिक विस्तृत ज्ञात होती है। राजघाट के किला से दूर–दूर तक इस नगर के फैले होने का विवरण प्राप्त होता है। काशी के चारो ओर उपनगरों और शहरपनाह का उल्लेख प्राप्त होता है।[८] जातको में काशी का विस्तार ३०० योजन दिया गया है जिसके उत्तर मे कौशल, पूर्व मे मगध और पश्चिम मे वत्स था।[९] अल्तेकर ने काशी के पूर्व मे पडोसी जनपद मगध और उत्तर–पश्चिम का पडोसी जनपद उत्तर पचाल का उल्लेख करते हुए, इस जनपद के उत्तर–पश्चिम विस्तार को दो सौ पचास मील स्वीकार किया है।[१०]

काशी एक बृहत्तर इकाई के रूप मे पंचकोशी परिक्रमा के प्रतीकात्मक परिधि को इंगित करती है जो मूलनगर के पवित्र क्षेत्र से अत्यधिक दूर लगभग १० मील की सीमाओ को स्पर्श करती है, जबकि काशी का प्रयोग वरूणा और असि नदियो के बीच अवस्थित नगर के लिए किया जाता है जिसमें अविमुक्त नाम का प्रयोग अत्यन्त लघु क्षेत्र के लिए अथवा अन्तरगृही परिक्रमा के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र के अन्तर्गत किया जाता है। सामान्यतः प्राचीनतम अभिलेखो में काशी शब्द का उल्लेख पाप्त होता है जो इस नगर स शासित राज्य को प्रदर्शित करता है आज के लगभग ३००० हजार वर्ष पूर्व यह नगर काशी राज्य की राजधानी के रूप मे स्थित था। काशी की वाह्य परिक्रमा के बाहर ही छठी शती ई०पू० में गौतम बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया था कालान्तर मे कुछ जातको के अन्तर्गत उस क्षेत्र को काशी कसबे के रूप मे भी वर्णित किया गया है।[११] महाभारत मे इसे काशी पुरी भी कहा गया है।[१२]

---

[७] अग्नि पुराण, पूर्वोक्त, ३५/२०.

[८] जातक, हिन्दी अनु भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग, सवत २०१४, २/६४/३५

[९] जातक, पूर्वोक्त, ३/८६, ५/४१, ३/३०४,३६१.

[१०] .ए०एस० अल्तेकर, हिस्ट्री आफ बनारस, बनारस, १६३७,पू०१२.

[११] जातक संख्या २३६, २८३.

[१२] महाभारत, आलोचनात्मक संस्करण, भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्ट्टीयूट, पूनः, १६६६ भीष्म पर्व, ६ / १४ / ६ अनुशासन पर्व, १३/१५४/२३

काशी के विविध नाम

काशी खण्ड १३ मे काशी के पॉच प्रमुख नामो का उल्लेख प्राप्त होता है। १) काशी (The Luminous City), २) वाराणसी (The City between Varuna and Asi), ३) अवमुक्त (The Never Forsaken), ४) आनन्द कानन (The Forest of Bliss), ५) रूद्रवास (The Abode of Shiva) और ६) महाश्मशान (The Great Cremation Ground) काशी के विभिन्न नाम इसकी बहुआयामी सस्कृति, धार्मिक सत्ता और गुण व्यवस्था को प्रदर्शित करते है।[13] इनमे अधिकाश नाम सस्कृत महात्म्य और सम्बन्धित साहित्य के अन्तर्गत प्राप्त होते है। कभी उनका उपयोग इस पवित्र नगर को सम्बोधित करने के लिये कियाजाता है, तो कभी एक राज्य को इगित करने के लिये किया जाता है और कभी—कभी दोनो एक दूसरे के लिए (राज्य एव नगर) प्रयुक्त किये जाते है।

काशी (The Lumious City)

शब्द विज्ञान की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि काशी शब्द की उत्पत्ति काश (चमकना) धातु से उत्पन्न है। स्कन्दपुराण[14] में वर्णन मिलता है कि काशी इसलिए प्रसिद्व हुई कि यह निर्वाण के मार्ग मे प्रकाश फेकती है, इसलिये यहॉ अनिर्वचनीय ज्योति अर्थात देवशिव भासमान है। काशी खण्ड मे मोक्ष प्रकाशिका काशी का वर्णन है जहॉ इसे शिव के प्रकाश से प्रकाशित नगर के रूप में वर्णित किया गया है। काशी रहस्य मे काशी को काश नामक घास से सयुक्त किया गया है, जबकि एफ०ए०पार्जिटर ने इसका सम्बन्ध काश नामक राजा से जोड़ा है, जिसके वंश में आगे चलकर काशी के राजा दिवोदास हुए।[15] काशी का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद

---

[13] का०ख० २६/३४.

[14] क.ख. २६/६७.

[15] एफ० ए० पार्जिटरः एन्शियंष्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन, लन्दन, १९२२, पृ.२६५, दे. हरिवश पुराण अनु, मनमथनाथ दत्ता, कलकत्ता, १८९७, पृ० २६.

की पैप्पलाद शाखा मे आता है।[१६] शतपथ ब्राह्मण के अन्तर्गत भी काशी का उल्लेख आया है।[१७] कौषितिकी उपनिषद, बृहदारण्य उपनिषद, शखायन श्रोत सूत्र और गोपथ ब्राह्मण में काशी शब्द का उल्लेख एक राज्य के रूप मे प्राप्त होता है।[१८]

वाराणसी (City Between Varuna & Asi)

काशी की ही भॉति वाराणसी नाम भी प्राचीन साहित्य मे पाया जाता है। बौद्ध जातको और हिन्दू महाकाव्य मे वाराणसी शब्द का उल्लेख आया है। पाली साहित्य मे इसका उल्लेख बनारसी के रूप मे हुआ है जिसका अपभ्रश बनारस है। इस नगर को मुगल काल मे बनारस और ब्रिटिश भारत में बेनारस (Benares) के रूप मे व्यक्त किया गया। सामान्य प्रचलित मान्यता यह है कि काशी, बनारस एवं वाराणसी सभी समान भाव को इंगित करते है। वाराणसी की उत्पति कुछ पुराणो ने इस प्रकार की है कि यह वरूणा एवं असि दो धाराओं के बीच में है जो कम से इसकी उत्तरी एव दक्षिणी सीमाऍं बनाती है।[१९] पुराणों मे बहुधा वाराणसी एव अविमुक्त नाम आते हैं। जाबालोपनिषद मे गूढ़ार्थ के रूप मे अविमुक्त, वरणा, एवं नासी शब्द आये है अत्रि ने याज्ञवल्क्य से पूछा कि कोई अनिभिव्यक्त आत्मा को कैसे जाने? याज्ञवल्क्य ने व्याख्या की कि उसकी पूजा अविभुक्त मे होती है, क्योंकि आत्मा अविमुक्त मे केन्द्रित है। तब एक प्रश्न पूछा गया कि अविमुक्त किसमें केन्द्रित है या स्थापित है? तो उत्तर प्राप्त होता है कि अविमुक्त, 'वरणा' एवं 'नासी' के मध्य में अवस्थित है। वरणा

---

[१६] पैप्पलाद शाखा, ५/२/१४

[१७] शतपथ ब्राह्मण – वेबर अल्बेर्न (अनु.) गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, १९८८,१३/५४/१६

[१८] कौशीतिकी उपनिषद्, एक सौ आठ उपनिषद् सम्पा. श्री रामशर्मा, बरेली, १९६३ से उद्वत ४/१, बृहदारण्यक, आनन्दगिरि कृत टीका, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावलि, पूना, १९१४, ३/८/२, शंखायन श्रोतसूत्र (सम्पा. अलफर्ड) हिलेब्राण्ड, एशियाटिक सोसाइटी, १८८६, १६/१९/५, गोपथ ब्राह्मण, सम्पा, दीनके गास्त्र, इ०जे०ब्रिल, लिडेन, १९६१, १/२/६

[१९] पद्मपुराण, आनन्दाश्रम मुद्रालय, पूना, १८९३, ३३/४६, मत्स्य पुराण, पूर्वोक्त, १८३/६२, काशी खण्ड (स्कन्द पुराण), पूर्वोक्त, ३०—६६—७०, अग्निपुराण, पूर्वोक्त, ११२/६, वामनपुराण, भाषाटीका खेमराज श्री कृष्णराजा श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, श्लोक ३८

नाम इसलिए पडा कि यह इन्द्रियजन दोषो को दूर करती है और नासी इद्रियजन पापो को नष्ट करती है। तब एक प्रश्न पूछा गया कि इसका स्थान कहॉ है? उत्तर है कि यह भौहो एव नासिका का संयोग है, अर्थात अवमुक्त की उपासना का स्थान, भौहों (भ्रयुग्म) एव नासिक की जड के बीच है। इससे यह प्रकट होता है कि वरणा एव नासी नाम है (न कि वरणा एव असि)। इसका व्युत्पतिलब्ध अर्थ हुआ कि विभिन्न इन्द्रियो से उत्पन्न होने वाला दोष और पाप है, उसका नाश करने वाली जो नगरी है, वह वाराणसी है।[२०] काशी खण्ड वरूणा और असि को क्रमशः पिगला और इड़ा तथा वाराणसी को सुषुम्ना के रूप में वर्णन करता है। इस प्रकार वाराणसी एक व्यवस्थित शरीर संरचना के रूप में अभिव्यक्त होती है।

३.अविमुक्त (The Never Forsaken)

पुराणों के मतानुसार इस पवित्र स्थल का नाम अविमुक्त इसलिए पडा कि शिव (कभी–कभी शिव एव शिवा) ने इसे कभी व्यक्त नही किया।[२१] शिव पुराण अविमुक्त शब्द की व्याख्या 'सबको मुक्ति देने वाला' के रूप मे करता है। लिंग पुराण मे एक अन्य व्युत्पत्ति दी हुई है, अवि का अर्थ है 'पाप' अर्थात यह पाप से मुक्त नगरी है।[२२]

---

[२०] पाण्डुरंग वामन काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास भाग–३ (अनुवादक अर्जुन चौबे काश्यप) लखनउफ, (प्रथम संस्करण), १६६६, पू१३४३.

[२१] स्कन्द पुराण, पूर्वोक्त, २६/२७, नारायण भट्टः त्रिस्थली सेतु, आनन्दाश्रम सस्कृत ग्रथावलि ग्रथाक ७८, पूना, १६१५, पृ. ८६, लिंग पुराण, जीवनन्द विद्यासागर भट्टाचार्य सस्कृत प्रकाशन, कलकत्ता, १८८५, ६२/४५–४६,मत्स्य पुराण, पूर्वोक्त, १८०/५४ एवं १८१/१५, अग्निपुराण, पूर्वोक्त, ११२/२.

[२२] लिंग पुराण, पूर्वोक्त, ६६२/१४३.

रू॰: वास (The Abode of Shiva)

यद्यपि रूद्रवास नाम सामान्य प्रचलन मे नही है पर शिव यहाँ निवास करते है, इसलिए यह रूद्रवास नाम से ज्ञात है। काशी रहस्य मे इसे रूद्रवास के नाम से वर्णित किया गया है।[23]

आनन्द कानन (The Forest of Bliss)

पुराणों के अन्तर्गत वाराणसी नगर को आनन्द कानन के रूप मे वर्णित किया गया है, क्योकि शिव को वाराणसी बडी प्यारी है, यह उन्हे आनन्द देती है, अत यह आनन्द कानन या आनन्द वन है।[24]

महाश्मशान (The Great Cremation Ground)

पद्म पुराण, मत्स्य पुराण, काशी खण्ड में इस नगर का उल्लेख, महाश्मशान के रूप मे भी किया है।[25] मत्स्य पुराण ने विविध स्थलों पर वाराणसी को श्मशान कहा है। काशी खण्ड मे वर्णन है – यदि कोई महाश्मशान में पहुँच कर वहाँ मर जाता है, तो उसे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता है।

कीथ का अनुमान है कि 'काशी' शब्द के पूर्व 'वाराणसी' शब्द प्रचलन मे था। अथर्ववेद में वरणावती नदी का नाम आया है, जिसके नाम पर वाराणसी का नामकरण हुआ है।[26] वस्तुत. प्राचीन साहित्य मे दोनों नाम (काशी, वाराणसी) प्रयुक्त किये गये है महाभारत के भीष्मपर्व के अन्तर्गत 'काशी' नामक जाति का भी उल्लेख आया है। रामायण में 'काशी' शब्द प्रयुक्त हुआ है। बौद्व साहित्य के दीर्घ निकाय और विनयपिटक में काशी शब्द का ही उल्लेख है, जबकि पद्मपुराण, कुर्मपुराण, वामन

---

[23] काशी रहस्य, सम्पादक मनसुखरायमीर, कलकत्ता, १९५७, ७/२७, १४/४१

[24] स्कन्द पुराण, काशी खण्ड, पूर्वोक्त ३२/१११.

[25] पद्मपुराण, पूर्वोक्त, १/३३/१४, मत्स्यपुराण, पूर्वोक्त, पृ.३६, काशी खण्ड, पूर्वोक्त, ३१/३१०.

[26] ए०ए० मैकडोनेल और ए०बी०कीथ: वैदिक इण्डेक्स (हिन्दी अनुवाद) रामकुमार राय, वाराणसी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६२, प्रथम भाग, पृ० १५४.

पुराण, जावालोपनिषद् के अन्तर्गत वरूणा और असि नदियो के मध्य अवस्थित क्षेत्र को वाराणसी क्षेत्र के रूप मे इगित किया गया है। पौराणिक महात्म्य में इसे अविमुक्त, आनन्दवन, रूद्रवास महाश्मशान आदि के रूप मे इंगित किया है। मुगलकाल मे इस नगर का उल्लेख, विशेष रूप में भक्ति साहित्य के अन्तर्गत, काशी के रूप मे किया गया है। सल्तनत कालीन और मुगल कालीन अभिलेखों मे 'बनारस' शब्द प्रयुक्त हुआ है। काशी खण्ड, जो तत्कालीन काशी के उत्थान का साक्ष्य प्रस्तुत करता है, इसे काशी के रूप मे स्थापित करता है। नारायण भट्ट ने भी इसका उल्लेख काशी के रूप में किया है, तात्पर्य यह कि मध्य युग में यह नगर बनारस के रूप मे विख्यात था।

वाराणसी का ऐतिहासिक विकासक्रम

काशी की प्राचीनता का इतिहास वैदिक साहित्य से उपल्बध होता है। वैदिक साहित्य के तीनों स्तरो· संहिता, ब्राहमण एव उपनिषद मे वाराणसी के सम्बन्ध मे विवरण पाया जाता है। पैप्पलाद शाखा के अनुसार अर्थर्ववेद के एक मन्त्र (५/२२/१४) मे काशी के बहुवचनान्त रूप (काशयः) का प्रयोग मिलता है। काशय. का अर्थ काशी जनपद के निवासियों से है। इस मन्त्र मे तकमा (ज्वर) को संबोधित करते हुए कहा गया है कि वह कोशल, काशि और विदेह जनपदों में चला जाय। इससे स्पष्ट है ये तीनो ही उस काल में पार्श्ववर्ती क्षेत्र थे जहॉ आर्य निवास नही करते थे।

ब्राह्मण साहित्य में गोपथ ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण तथा बृहदारण्यक उपनिषद् मे काशिराज का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण[२७] में यह वर्णन मिलता है जिस प्रकार भरत ने सत्वत् लोगों के साथ व्यवहार किया था, उसी प्रकार सत्राजीत के पुत्र शतानीक ने काशि लोगों के पवित्र यज्ञीय अश्व को पकड़कर रख लिया था।

[२७] शतपथ ब्राहमण, पूर्वोक्त, १३/५/४/२१

शतपथ ब्राह्मण[२८] में ही धृतराष्ट्, विचित्र वीर्य को काश्य (काशी का रहने वाला) कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण मे काशी कोशल का समान रूप मे प्रयोग किया गया है। बृहदारण्यकोपनिषत्[२९] तथा कौषीतकी उपनिषद्[३०] मे वर्णन मिलता है कि बालाकि गार्ग्य बडा ही अहकारी पुरूष था। वह काशी के राजा अजातशत्रु (सुप्रसिद्व ऐतिहासिक राजा अजातशत्रु नही, जो मगध का राजा था) के पास ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देने के लिए गया था। इस पर राजा ने उत्तर दिया कि काशी मे आकर हमारे सामने ब्रह्म विद्या देने की बात आपने हमसे कही, उसी के पुरस्कार स्वरूप हम आपको एक सहस्त्र गायें देंगे, क्योकि आजकल लोग जनक कहते हुए मिथिला की ओर दौड़ते है।[३१] राजा का मूल कथन इस प्रकार है:

"सः हावाचाजातशत्रुः सहस्त्रमेतस्यां वाचि ह्मो जनको जनक इति वै जनाः धावन्ति"

इस कथन से ज्ञात होता है कि उस युग मे मिथिला का स्थान काशी से ऊँचा था, फिर भी आध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए, अपने ज्ञान की पिपासा की तृप्ति के लिए लोग काशी आया करते थे।

ऋग्वेद[३२] की सर्वानुक्रमणी में ऋषि प्रतर्दन को काशिराज कहा गया है। ऋग्वेद में राजा दिवोदास का वर्णन अनेक स्थानों मे हुआ है। ऋग्वेद[३३] मे यह विवरण मिलता है कि इन्द्र ने दिवोदास की ६० नगर को जीत लिया था। किन्तु बाद में इन्द्र ने दिवोदास को १०० नगर भी प्रदान किये थे।[३४] पातंञ्जलि के महाभाष्य[३५] मे काशि

---

[२८] वही, १४/३/१/२२.
[२९] बृहादरण्यक उपनिषद्, पूर्वोक्त,१/१/१,
[३०] कौशितिकी उपनिषद, पूर्वोक्त, ४/१,
[३१] बृहादरण्यक उपनिषद, पूर्वोक्त, २/१/१
[३२] ऋग्वेद, सायणकृत व्याख्या, श्रीराम शर्मा द्वारा सम्पादित, बरेली सस्कृति सस्थान, १९६२,१०/१७९/२.
[३३] वही, १/१३०/७.
[३४] वही. ४/३०/२०,

कोसलीया उदाहरण के रूप मे दिया गया है। इस ग्रन्थ मे मथुरा और काशी मे निर्मित समान लम्बाई–चौड़ाई वाले वस्त्र के मूल्य मे अन्तर बताया गया है। इससे स्पष्ट होता है ई०पू० दूसरी शताब्दी मे काशी अपने बारीक वस्त्रो के लिए प्रसिद्व थी। इन विवरणो से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि शतपथ काल के पूर्व से काशी एक देश या जनपद का नाम था और वही नाम पतञ्जलि के समय (ई०पू० द्वितीय शताब्दी) तक चलता आया था। सुप्रसिद्व चीनी यात्री फाहियान (३६६ई०–४१३ई०) काशी राज्य के वाराणसी नगर में आया था। इससे प्रकट होता है कि लगभग चौथी शताब्दी में भी काशी एक जनपद था और वाराणसी उसकी राजधानी थी।

वाराणसी की स्थापना

महाभारत के अनुशासन पर्व[३६] में राजा दिवोदास के पितामह हर्यश्व काशि लोगों के राजा कहे गये है जो गंगा यमुना के दोआब में बीतहव्यो द्वारा अत्यधिक परेशान किये गये थे और मारे गये थे। हर्यश्व का पुत्र सुदेव था, जो काशि का राजा बना और अन्त मे वह भी अपने पिता की गति को प्राप्त हुआ। इसके उपरात उसका पुत्र दिवोदास काशियो का राजा बना और उसने गोमती के तट पर सभी वर्णों के सकुल वाराणसी नगर को प्रस्थापित किया। इससे ज्ञात होता है कि काशी एक राज्य का प्राचीन नाम था। दिवोदास द्वारा काशियो की राजधानी वाराणसी की प्रतिष्ठापना हुई थी।[३७]

---

[३५] पाणिनी कृत अष्टाध्यायी सम्पादित एस०सी०बेस, चौखम्भा ओरियन्टल सीरीज, बनारस, १८६७, ४/७/५४ के वर्तिक पर ४ महाभाष्य देखें।

[३६] अनुशासन पर्व, सम्पादित व्यास कृष्ण दैपायम, लेखक द्वारका प्रसाद शर्मा,इलाहाबाद,१६३०, अध्याय

[३७] पाण्डुरंग वामन काणे: धर्मशास्त्र का इतिहास, पूर्वोक्त, तृतीय भाग, पृ० १३४०

हरिवंशपुराण[३८] ने दिवोदास एव वाराणसी के विषय मे एक विस्तृत किन्तु अस्पष्ट गाथा दी है–

[illegible] नृपो राजन् दिवोदास पितामहः।

हर्यश्व इति विख्यातों व भूव जयतां वरः।। (अनुशासन पर्व ३०/११)

इसने ऐल के एक पुत्र आयु के वश का वर्णन किया है। आयु के एक वंशज का नाम सुनहोत्र था, जिसके काश, शल एव गृत्समद नामक तीन पुत्र थे। काश से काशि नामक शाखा का प्रादुर्भाव हुआ। कतिपय पुराणो में काशी पर जिस वश का शासन था वह मनु के पुत्र पुरूरव द्वारा स्थापित किया गया था। इस वश का साातवॉ राजा काश हुआ जिसके नाम पर यह काशी राज्य कहलाया।[३९]

काश का वशज धन्वन्तरि काशि लोगो का राजा हुआ। दिवोदास धन्वन्तरि का पौत्र हुआ। उसने भद्रश्रेण्य के, जो सर्वप्रथम वाराणसी का राजा था, १०० पुत्रो को मार डाला। तब शिव ने अपने गण निकुम्भ को दिवोदास द्वारा अधिकृत वाराणसी का नाश करने के लिए भेजा निकुम्भ ने उसे एक सहस्त्र वर्ष तक नष्ट–भ्रष्ट होने का शार्प दिया। जब वह नष्ट हो गयी तो वह अविमुक्त कहलायी और शिव वहॉ रहने लगे। इसकी पुनः स्थापना (श्लोक ६८) भद्रश्रण्य के पुत्र दुर्दम द्वारा हुई (जिसे दिवोदास ने नही मारा था, क्योंकि वह बच्चा था) इसके बाद दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन ने उसे दुर्दम से छीन लिया। दिवोदास के पौत्र अलर्क ने, जो काशियो का राजा था, वाराणसी को पुन. बसाया। तात्पर्य यह कि प्राचीन काल मे निर्माणावधि में वाराणसी पर निरंतर आकमण होते रहे और इस पर कई वंशों का राज्य स्थापित हुआ। वायु पुराण (अध्याय ९२) एवं ब्रहमपुराण (अध्याय ११) में भी धन्वतरि, दिवोदास एव अलर्क तथा वाराणसी के विपर्ययों का उल्लेख मिलता है।[४०]

---

[३८] हरिवश पुराण, सम्पादित राम बिहारी मिश्र, वाराणसी, १९८३, १ अध्याय २९

[३९] पूर्वोद्धत

[४०] पाण्डुरंग वामन काणेः धर्मशास्त्र का इतिहास, पूर्वोक्त, तृतीय भाग, पृ० १३४०.

पुराणो में आये काशी के विवरण से कई बाते हमारे सामने आती है। काश्यो अर्थात काशीवासियो और हैहयो में बहुत समय तक युद्व होता रहा। काशी के राजवश मे दो दिवोदास हुए। प्रथम दिवोदास भीमरथ का पुत्र था दूसरा सुदेव का। दोनो दिवोदास के मध्य कम से कम तीन राजाओ ने राज्य किया। यथा अष्टरथ, हर्यश्व और सुदेव ने काशी पर राज्य किया। प्रतर्दन दिवोदास द्वितीय के पुत्र थे। दिवोदास प्रथम ने दूसरी वाराणसी की स्थापना की थी। हैहयों और काशीवासियों के परस्पर सम्बन्ध इस बात के परिचायक है कि मध्य देश के राजा काशी पर नजर रखते थे। ११वी सदी मे राजा गांगेय देव द्वारा काशी पर अधिकार जमा लेना इसी तथ्य का पोषक है।[४१]

महाभारत कालीन काशी

व्यास की शतसाहस्त्री सहिता में काशी का कई जगह उल्लेख आया है। काशीराज की पुत्री सार्वसेनी का विवाह भरत दौष्यन्त से हुआ था।[४२] भीष्म ने काशीराज की तीन पुत्रियो अम्बा, अम्बालिका और अबिका को स्वयवर मे अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए जीता था।[४३] भीष्म द्वारा काशिराज सुबाहु पर विजय पाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[४४] तथ्य यह स्पष्ट करते है कि काशिराज युधिष्ठिर के मित्र थे। काशिराज द्वारा कुरूक्षेत्र के युद्व मे पाण्डवो की सहायता करने का विवरण प्राप्त होता है।[४५] काशिराज का युद्व क्षेत्र में सुवर्ण माल्य विभूषित घोड़ों पर चढ़ने[४६] तथा शैव्य के साथ उनका पांडव सेना के बीच ३०,००० रथो के साथ उपस्थित रहने का उल्लेख

---

[४१] डा० मोतीचन्द्रः काशी का इतिहास, पूवोक्त, पृ० २५

[४२] महाभारत, एस०विष्णु सुकथानकार द्वारा सम्पादित, भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्सटीट्च्यूट, पूना,१९३३ से१९५९ से उद्वत आदिपर्व, अध्याय ९५.

[४३] उद्योग पर्व, १७२/९४

[४४] सभा पर्व, अ.३०

[४५] उद्योग पर्व, अ. ७२

[४६] द्रोण पर्व, २२/३८.

प्राप्त होता है।[४७] काशिराज को धनुर्विद्या मे बहुत प्रवीण माना गया है।[४८] युद्व क्षेत्र मे काशी, कारूष और चेदि की सेनाएँ घृष्टकेतु के नायकत्व मे थी।[४९]

महाभारत मे कृष्ण द्वारा वाराणसी के जलाये जाने का वर्णन है।[५०] विष्णु पुराण मे भी काशी के जलाये जाने का वर्णन मिलता है।[५१] सम्बन्धित कथानक के अनुसार "पौड्क नाम का एक वासुदेव था, जो लोगो की खुशामद से बहक कर अपने को सच्चा वासुदेव समझने लगा था। उसने वासुदेव के लक्षणों (प्रतीको) को भी अपना लिया। तदन्तर उसने असली वासुदेव के पास अपना एक दूत भेजा और उन्हे सम्बन्धित लक्षणो को उतार फेकने तथा अपनी अभ्यर्थना करने का आवाहन किया। कृष्ण ने हॅसकर दूत को वापस भेज दिया और पौड्क से कहलवा दिया कि वे अपने चिहन चक्र के साथ स्वय उसके पास आकर उपस्थित होंगे। इसके बाद कृष्ण ने पौड्क की ओर प्रस्थान किया। काशीराज अपने मित्र पौड्क की सहायता के लिए सेना के साथ उपस्थित हुए और स्वय सेना के पृष्ठभाग मे हो लिए। युद्व मे पौड्क और काशिराज दोनो ही मारे गये। कृष्ण द्वारका लौट गए। काशिराज के पुत्र को जब यह ज्ञात हुआ कि उसके पिता के घातक कृष्ण थे तो उसने शंकर की आराधना किया और उनके प्रसन्न होने पर कृष्ण को नष्ट करने का वर मॉगा। शिव ने कृत्या का सृजन किया और वह द्वारका जलाने दौड़ी। उसे नगर की ओर आते देखकर कृष्ण ने चक्र को उसे नष्ट कर देने की आज्ञा दी। चक्र को देखते ही कृत्या भागी। चक्र ने उसका पीछा किया। इस तरह दोनो वाराणसी पहुँचे। काशिराज ने अपनी सेना के साथ चक्र का सामना करना चाहा। पर चक्र ने उसे मार गिराया और

---

[४७] भीष्म पर्व, अ. ५०
[४८] द्रोण पर्व, अ. २५
[४९] उद्योग पर्व, १६८.
[५०] पूर्वोद्धत ४७/४०.
[५१] विष्णु पुराण, अनु एच. एच. विल्सन, लन्दन, १८४०, ५/३४, पृ० ५६७.

वाराणसी में जहॉ कृत्या छिपी थी, आग लगा दी। इस तरह वाराणसी आग की लपटों से पूरी तरह नष्ट हो गयी। यह कथा हरिवंश, भागवत और ब्रह्मपुराण मे कुछ परिवर्तन के साथ वर्णित है। ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन शैवो और वैष्णवो के मध्य शत्रुतापूर्ण सम्बन्ध थे। दूसरी ओर वाराणसी को जलाने का एक राजनीतिक उद्देश्य भी हो सकता है। पौंड्क अर्थात पौड् देश (उत्तरी बगाल) के राजा की काशिराज से मित्रता का सबंध था। सम्भवत· पौड्क जरासध का अनुयायी था। महाभारत के समय जरासंध मगध का राजा था, तथा मगध से कृष्ण की शत्रुता थी। इस शत्रुता का कारण कस का वध था। कस से जरासध की दो पुत्रियॉ ब्याही थी। जो भी हो महाभारत से तो यह पता चलता है कि जरासंध ने उत्तर के अनेक राजाओं को हराकर कृष्ण की राजधानी मथुरा को घेर लिया था। काशीराज का उस समय क्या दृष्टिकोण था, यह तो पता नहीं चलता, पर वे जरासध के सम्बन्धित रहे हो तो इसमे कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन राजनीतिक गुटबन्दी से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण ने बदला लेने के लिए वाराणसी का विनाश किया था।[५२]

महाभारत मे तीर्थ के रूप मे काशी का प्रथम वार वर्णन मिलता है। वनपर्व मे पाण्डवो के अज्ञातवास के समय उनके काशी आने का उल्लेख पाया जाता है।[५३] वनपर्व मे लिखा है

अविमुक्तं समासाद्य, तीर्थसेवी कुरूद्वह।

दर्शनात्‌देवदेवस्य मुच्यत ब्रह्महत्यया।।

ततो वाराणसी गत्वा ेवमच्य वृषध्वजम्।

कपिला हनदमुपस्पृश्य, राजसूयफलं लभेत्।।[५४]

---

[५२] डा० मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास, पूर्वोक्त,पृ० २६.

[५३] महाभारत, वनपर्व, पूर्वोक्त,८४/७८

[५४] वही, ८४/७६

इस निर्देश से पता चलता है कि उस समय काशी मे 'कपिला ह्नद' नामक तीर्थ बडा प्रसिद्व था। आजकल यह तीर्थ कपिल धारा के नाम से प्रसिद्व है, और काशी के भीतर न होकर पंचकोशी की प्रदक्षिणा के मार्ग मे अवस्थित है।

रामायण में काशी

बाल्मीकी रामायण में काशी के सम्बन्ध मे कतिपय उल्लेख होते है उदाहरणार्थ दशरथ ने अपने अश्वमेध यज्ञ मे काशिराज को आमन्त्रित किया था।[५५] अयोध्या कांड मे यह वर्णन मिलता है कि केकैयी के कोध को शान्त करने के लिए राजा दशरथ ने काशी राज्य मे उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ भी प्रस्तुत करने के लिए कहा था।[५६] किष्किन्धा काण्ड से पता चलता है कि सुग्रीव ने इस देश मे सीता को खोजने के लिए विनत को भेजा था। बाल्मीकि ने अन्य घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है.

> **'तद् भवानद्य काशेय। पुरी वाराणसी व्रज।**
> **रमणीयां त्वया गुप्तां सुप्रकारां सुतोरणाम्।।**
> **राघवेण कृतानुज्ञः काशेयो ह्मकुतोभयः।**
> **वाराणसीं यधौ तूर्ण राघवेण विसर्जित।।[५७]**

उत्तर काड मे काशीराज पुरूरवस का नाम आया है।[५८] उसी कांड मे ययाति के पुत्र पुरू को प्रतिष्ठान पर राज्य करते हुए काशी का भी राजा बतलाया गया है।[५९]

जैन ग्रन्थों में काशी

---

[५५] बाल्मीकी रामायण, सम्पादित ज्वाला प्रसाद मिश्र, खेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई, १६८५, १/१३/२३.

[५६] वही, २/१०/३७–३८

[५७] वही, ७/३८/१७,१६.

[५८] वही, ५६/२५

[५९] वही, ५६/१६.

जैन सूत्रो से ज्ञात होता है चतुर्थ काल के आरम्भ मे जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव ने काशी की स्थापना की थी, और वहॉ ही राजा अकम्पन ने अपनी पुत्री सुलोचना का स्वयम्बर करके व्यापक यश अर्जित किया था। सातवे तीर्थंकर श्री सुपार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी के राजा प्रतिष्ठ और उनकी पत्नी पृथ्वीषेणा के गर्भ से काशी (भदैनी) मे हुआ था। भदैनी मे सुपार्श्वनाथ का विशाल जैन मन्दिर अभी भी स्थित है।

जैन धर्म के आठवे तीर्थकर चन्द्रपभु[६०] का जन्म काशी मे हुआ था। ११वे तीर्थकर श्रेयासनाथ[६१] का जन्म सारनाथ में हुआ था। २२वें तीर्थकर श्रीनेमिनाथ और २३वे तीर्थकंर श्री पार्श्वनाथ के अवतार का श्रेय भी पुश्य भूमि वाराणसी की है। जैन अनुश्रुतियो के अनुसार प्रथम तीर्थकंर ऋषभदेव स्वयं राजा थे, जो अपने पुत्र भरत के लिए सिंहासन छोड़कर सन्यासी हो गये थे। जैनियो के कल्पसूत्र के अनुसार पार्श्वनाथ ही वाराणसी के राजा इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय अश्वसेन के पुत्र थे। इस दृष्टि से वाराणसी नगरी जैन धर्मावलम्बियों के लिए सदैव महत्वपूर्ण तीर्थ रही है।

काशी का उल्लेख ईस्वी दूसरी शताब्दी मे स्वामी समन्तभद्र[६२] से सम्बन्धित आता है। उनका भस्मक रोग वाराणसी के शिव मंदिर के भोग से अच्छा हुआ था। सम्बन्धित कथानक इस प्रकार है· "काशी के राजा शिवकोटी ने स्वामी जी से कहा कि तुम्हें शिव के पिण्डी की सार्वजनिक रूप में वन्दना करनी होगी। स्वामी जी का उत्तर था– मेरे नमस्कार की गुरूता यह पिण्डी नहीं झेल सकती और हुआ भी यही। सारी मेदनी के समक्ष स्वामी जी ने बैठकर 'सहस्त्रनाम' की रचना की। प्रत्येक श्लोक

---

[६०] १. श्री गणेश पसाद जैन: वाराणसी में जैन तीर्थ, सन्मार्ग पत्रिका, काशी विशेषांक, १९८६, पृ.२६३ से उद्धृत वन्द्रप्रभू का जन्म काशी क्षेत्र के अन्तर्गत चन्द्रपुरी (चन्द्रावती) मान्य है, जौ चौबेपुर के निकट है।

[६१] २. वही, पृ० २६३, से उद्वत श्रेयांश्पुरी का ही अपभ्रश सारनाथ, सिहपुर आदि है, उनकी स्मृति मे वहॉ जैन मन्दिर भी है।

[६२] २ वही, पृ० २६४.

के अन्त मे शिव पिण्डी के समक्ष जैन तीर्थंकरो को कम से नमस्कार कर रहे थे।"
आठवें श्लोक के अन्त में तीर्थकर श्री चन्द्रपभु को नमस्कार करते ही शिव पिण्डी फट गयी और उसमें चन्द्रप्रभु भगवान की स्फटिक की प्रतिमा प्रकट हुई। सारी मेदनी आश्चर्य से चकित हो गयी। बॉसफाटक पर दीपक सिनेमा के सामने बाये पटरी पर एक छोटे से शिव मन्दिर में वह शिव पिण्डी मध्य से फटी हुई दो टुकडो मे विद्यमान है। जनश्रुति है कि यही वह शिवपिण्डी है जिसमे चन्द्रप्रभु की प्रतिमा प्रकट हुयी थी— इसे फटहा महादेव के नाम से पुकारा जाता है। स्थानीय लोग उसे सामन्तज भद्रेश्वर महादेव भी कहते हैं।

बौद्ध ग्रंथों में काशी

प्राचीन बौद्ध ग्रथों से पता चलता है कि वाराणसी बुद्ध के जीवनकाल मे चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत एव कौशाम्बी जैसे महान एव प्रसिद्ध नगरो मे परिगणित होती थी।[६३] गौतम बुद्ध ने गया मे सम्बोधि प्राप्त करने के उपरान्त वाराणसी के मृगदाव अर्थात सारनाथ मे आकर धर्मचक्र प्रवर्तन किया। इस आधार पर कहा जा सकता है कि तत्कालीन काशी आर्यो की सस्कृति का केन्द्र बन चुकी थी।[६४] बुद्ध काल में काशी की विशिष्ट स्थिति को जानने के लिए त्रिपिटक तथा जातको मे दिये गये विवरणो का बड़ा महत्व है। बुद्ध के समय भारत षोडश महाजनपदो मे विभक्त था। काशी षोडश महाजनपदों में एक थी,[६५] और यहॉ ब्रह्मदत्त वंश का राज्य था। काशी की राजधानी वाराणसी थी जो वरूणा और असि के सगम पर बसी थी यह नगरी बारह योजन में विस्तृत थी तथा भारत की सर्वश्रेष्ठ नगरी थी। ब्रह्मदत्त वंश के

---

[६३] महापरिनिव्वान सुत्त एवं महासुदस्सन सुत्त का अंग्रेजी अनुवाद अनु राइसडेविड्स, ओल्डेनवर्ग, सम्पादितमैक्समूलर, सेकेड बुक आफ दि ईस्ट सीरीज, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, १९६८, भाग ११ पृ० ६६, २४७.

[६४] पाण्डुरंग वामन काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ० १३४१.

[६५] अंगुत्तर निकाय, पालि भाग ४, सहसम्पादक भिक्षु जगदीश कश्यप, बिहार, १९६०, पृ० २१३.

शासन काल मे काशी का सर्वागीण विकास हुआ था। महावग्ग मे भी काशी का उल्लेख है। वैभव, शिल्प, बुद्धि एव ज्ञान के लिए यह नगर बहुत प्रसिद्ध था। भोजाजानीय जातक में यह उल्लेख मिलता है कि काशी का राजा अत्यन्त समृद्ध था। सभी पडोसी राजा उससे द्वेष करते थे। काशीराज को परास्त करने के लिए सात राजाओं ने एक सघ का निर्माण किया और सातों ने मिलकर काशी के राजा पर आक्रमण किया, परन्तु विजयी नही हुए वे राजा संस्कृति तथा सम्यता मे काशी की तुलना नहीं कर सकते थे। अतः काशी पर इनकी गिद्ध दृष्टि सदा लगी रहती थी, परन्तु युद्ध में विजयश्री ने सदा काशी के राजा को ही वरण किया।[६६] मत्स्य पुराण[६७] के अनुसार ब्रह्मदत्त वंश के सौ राजाओ ने काशी पर राज किया। एक जातक मे उल्लेख है कि राजा ब्रह्मदत्त ने कुमार ब्रह्मदत्त को अपना उत्तराधिकारी बनाया।[६८] इससे यह भी ज्ञात होता है कि ब्रह्मदत्त वश का नाम था। गंगमाल जातक[६९] मे बनारस के राजा उदय को ब्रह्मदत्त कह कर संबोधन किया है।

जातक कथाओं से ज्ञात होता है कि काशी और कोसल मे अक्सर युद्व हुआ करता था, काशी राज्य की शक्ति इस सघर्ष के चलते दिन–प्रतिदिन कम होती गई और बाद में इसका पतन हो गया ई.पू. छठी सदी के आरम्भ मे काशी जनपद कोशल मे मिला लिया गया इसका श्रेय कौसल राजा कस को है,[७०] क्योकि इन्हें वाराणसिग्गहों अर्थात वाराणसी का विजेता कहा गया है। इस विजयके फलस्वरूप कोशल राज्य की दक्षिणी सीमा गंगा नदी तक पहुच गयी। काशी जनपद का उसमें विलय हो गया।[७१]

---

[६६] डा० एस०सी० रायचौधरी, पालिटिकल हिस्ट्री आफ एंसीएन्ट इंडिया, कलकत्ता, १९५३, ६वॉ एडीसन, पृ० ९८देखे भोजाजानीय जातक, नं० २३

[६७] मत्स्य पुराण, पूर्वोक्त, पृ० ५५६, ६७२.

[६८] जातक, (हिन्दी अनुवाद भदन्तकौसल्यायन) प्रयाग सं. १९४६–२०१४ तक,२/६०

[६९] गंगमाल जातक, पूर्वोक्त, ३/४५२.

[७०] सेयय जातक, २८२, तेसकुन जातक पूर्वोक्त, ५२१, राधाकृष्ण चौधरीः प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पटना, १९८९, पृ० ७–८.

[७१] श्री रामगोयलः नन्द मौर्य साम्राज्य का इतिहास, मेरठ, १९९२, पृ० ३४

काशी (कासि रट्ठ) जनपद प्राक बुद्ध युग का सम्भवत. सबलतम राष्ट्र था। कुछ जातक कथाओ मे काशी को कौसल पर विजय पाते दिखाया गया है[72] और कुछ जातक कथाओ में कौसल को काशी पर।[73] गुत्तिल जातक मे इसे जम्बुदीप का सर्वश्रेष्ठ नगर बताया गया है। यह अपने वाराणसेय्यक तथा कासिका नाम से प्रसिद्ध था तथा व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र था। यह स्थल मार्ग द्वारा राजगृह, श्रावस्ती व कौशाम्बी आदि से जुड़ा था। इसके समीप स्थित मृगदाव या सारनाथ स्थल बौद्व धर्म का प्रसिद्व केन्द्र बना।

हरितभात व वंड्ढकी सूकर जातकों के अनुसार कोसलराज प्रसेनजीत के पिता महाकोसल ने अपनी पुत्री कोसलादेवी का विवाह जब मगध नरेश बिम्बिसार से किया, तो कोसला देवी के काशी ग्राम की एक लाख आय 'स्नान चूर्ण' (उबटन) के व्यय के लिए दहेज में दी गई थी। इससे मगध का काशी प्रदेश पर प्रभाव स्थापित हुआ[74] पितृहन्ता कुणिक (बिम्बिसार का पुत्र) 'अजातशत्रु' की उपाधि धारण कर (४६१–४५६ ई पू) मगध की गद्दी पर बैठा। सर्वप्रथम अजातशत्रु का कोसल नरेश प्रसेनजीत के साथ युद्ध करना पड़ा। इस युद्ध का मूलकारण बिम्बिसार का वध था। पतिशोक मे महारानी कोसला देवी ने प्राण त्याग दिया था। प्रसेनजीत ने अजातशत्रु के व्यवहार से रूष्ट होकर दहेज में दिये गये काशी ग्राम पर अधिकार कर लिया। जिसके फलस्वरूप अजातशत्रु और प्रसेनजीत के बीच युद्ध छिड गया जिसमे प्रसेन जीत को तीन बार हार खानी पड़ी परन्तु चौथी बार अजातशत्रु को हराकर कैद कर लिया। अंत में दोनों के बीच सन्धि हो गयी जिसके फलस्वरूप अजातशत्रु सेना सहित न केवल मुक्त हुआ, वरन् प्रसेनजीत की पुत्री वाजिरादेवी के साथ उसका विवाह भी हो

---

[72] यथा कोसाम्बी जातक, कुणाल जातक, सोण जातक, में काशी नरेश मनोज कोसल के साथ अंग मगध को भी जीतता है।

[73] यथा महासीलव जातक, घट जातक, एकराज जातक, सेय्य जातक, तेसकुन जातक आदि,

[74] जातक २/४०३.

गया और पुनः दहेज के रूप मे काशी के महाग्राम की आय स्नान चूर्ण मूल्य रूप मे दे दी।[७५]

प्रसेनजीत के बाद काशी कोसल का राजा विडूडभ हुआ जिसने बदला लेने के लिए शाक्यो का समूल नष्ट कर दिया। विडूडभ के बाद कोसल के किसी राजा का नाम न मिलने से यह पता चलता है कि काशी कोसल की स्वतत्र सत्ता नष्ट हो चुकी थी और वह मगध के बढते हुए साम्राज्य मे मिला लिया गया था। डॉ० मोती चन्द्र लिखते है शायद यह घटना अजातशत्रु के अन्तिम दिनो मे घटी हो।[७६]

अजातशत्रु के पश्चात उसके उत्तराधिकारियों ने उदायीभद्द (४५६–४४३ ई.पू), अनुरूद्धमुण्ड (४४३–४३५ई पूर्व) और नागदासक (४३५–४११ ई पूर्व) ने शासन किया। काशी इनके प्रभाव क्षेत्र मे थी। महावश के अनुसार अजातशत्रु से नागदासक तक मगध के राजा पितृहन्ता थे। उनके इस अनाचार से क्रुद्ध होकर प्रजा ने नागदास के अमात्य शिशुनाग (जो बनारस का शासक था) को मगध के सिंहासन पर बैठाया।[७७] पुराणों के अनुसार शिशुनाग ने बनारस मे अपने पुत्र को नियुक्त किया और स्वय गिरिब्रज मे रहने लगा–'वाराणस्या सुत स्थाप्य श्रयिष्यति गिरिव्रजम'। इस प्रकार उसने मगध की राजधानी पाटलिपुत्र से हटाकर पुन. गिरिब्रज मे स्थापित किया।[७८] शिशुनाग ने अठारह (४११–३६३ ई.पू) वर्षो तक शासन किया इस काल मे उसका पुत्र कालाशोक वाराणसी का शासक था। सिहली परम्परा के अनुसार शिशुनाग के पुत्र एवं उत्तराधिकारी का नाम कालाशोक और पुराणों के अनुसार काकवर्ण था।

---

[७५] संयुत्त निकाय, पालि (सुत्तपिटक) सम्पादित भिक्षु जगदीश कश्यप, बिहार, १९५६, भाग १, पृ० ८४–८६, जातक, पृ० ३४२
धम्मपद अट्ठकथा, अंग्रेजी अनुवाद ई डब्ल्यू, बरलिंगम, लन्दन, १९६९, ३, २५६.

[७६] डा० मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ० ५०.

[७७] डी०आर०भण्डारकरः कार्माइकल लेक्चर्स, कलकत्ता, १९२१, पृ० ८०–८१.

[७८] हेमचन्द्र रायः परिशिष्ट पर्वण (सम्पादित) एच. जैकोबी, कलकत्ता, १९२१, ७, ८१, डा०एस०सी०राय चौधरी, पालिटिकल हिस्ट्री आफ एंसीएन्ट इंडिया, कलकत्ता, १९५३, ६वॉ एडीसन, पूर्वोक्त, पृ० २३४

शिशुनाग के पश्चात् कालाशोक मगध का शासक बना। इसने ३९३ ई पू से ३६५ ई पू तक शासन किया। पौराणिक सूची मे कालाशोक एव उसके उत्तराधिकारी दस पुत्रो ने या पुत्र नन्दिवर्धन के साथ शिशुनाग वश ने मगध का ६८ वर्षो तक शासन किया। इस काल में काशी नागवश की अधीनता मे ही रही।[७९]

नागवश के बाद मगध मे नन्दवश का उदय हुआ। नव नन्दो मे उग्रसेन (महापद्मनन्द) और उसके आठ पुत्रो ने मिलकर २२ वर्षो तक राज्य किया। महापद्मनन्द उग्रसेन बड़ा ही प्रभावशाली शासक था उसके समय मे अंग, वज्जि, काशी, वत्स, अवन्ति, कोसल के प्राचीन राज्य मगध साम्राज्य के अग बन चुके थे। महापद्मनन्द ने शिशुनाग के राजकुमार को अथवा उसके किसी उत्तराधिकारी को पराजित करके काशेयो को अधिकृत किया होगा। पालि साहित्य में नन्द को काशी का राजा प्रायः बताया गया है।[८०] ३२६ ई.पू मे जब सिकन्दर ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया उस समय नन्दवंश का अन्तिम शासक धनन्द मगध का शासक था।[८१]

मौर्यकालीन काशी

मौर्य कालीन काशी (३२५ ई.पू–१८५ ई.पू) सिकन्दर के लौट जाने के बाद मगध का राज्य ई.पू. ३२५में नन्दों के हाथ से निकलकर मौर्यशासको के हाथ में चला गया। चन्द्रगुप्त मौर्य को महावंसटीका में सकल जम्बूद्वीप का शासक बताया गया है। इस वंश के शासक अशोक (२७२–२३२ ई.पू.) के समय वाराणसी की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। अशोक ने स्वयं बौद्ध धर्म अपना लिया था। उसने इस मत का प्रचार भारत के विभिन्न भागों में तथा देश के बाहर भी करवाया। सारनाथ में अशोक ने अपना एक स्तम्भ स्थापित कराया। उस पर उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि अशोक ने बौद्ध संघ में बढ़ते हुए विग्रह को रोकने का प्रयास किया था। सारनाथ से

---

[७९] श्रीराम गोयलः नन्द साम्राज्य का इतिहास, मेरठ, १९९२, पृ० ४२.

[८०] प्रकाश स्टडीज पृ० १०६, उद्धृत श्रीराम गोयल, नन्द साम्राज्य का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ० ४१.

[८१] श्री राम गोयलः मागध सातवाहन कुषाण साम्राज्यों का युग, मेरठ, १९९३, पृ० २२९.

मिले अवशेषो से तत्कालीन वाराणसी की स्थिति पर प्रकाश पडता है। शंख जातक मे अशोक कालीन काशी की राजधानी को मोलिनी कहा है।[८२] सारनाथ से मौर्यकालीन कई अवशेष प्राप्त हुए है, जिनसे पता चलता है, कि अशोक के युग मे इसिपत्तन (सारनाथ) की बहुत उन्नति हुई और वहाँ भिक्षु और भिक्षुणियो के सघ स्थापित हो गये थे। अशोक ने सारनाथ में धर्मराजिक स्तूप भी बनवाया था।[८३]

शुंग कालीन काशी

पुराणों से ज्ञात होता है सेनापति पुष्पमित्र शुग ने अन्तिम मौर्य शासक सम्राट वृहद्‌थ को मारकर १८४ ई.पू. के लगभग मगध पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और १४८ ई.पू. तक मगध पर राज्य किया। पुष्पमित्र के शासन काल की मुख्य घटना वाल्हीक के यवन राजा डिमिट्रियस की भारत पर चढाई थी। यवनो ने सर्वप्रथम साकल (सियालकोट) जीता। उसके बाद उसकी सेना मथुरा और साकेत जनपदो को पार करती हुई लगभग १७५ ई.पू. में पाटलिपुत्र पहुँची। 'युग पुराण', 'महाभाष्य' तथा 'मालविकाग्निमित्र नाटक'[८४] से उक्त तथ्य की पुष्टि होती है। इस चढ़ाई का एक प्रमाण बनारस के पुरातात्विक अवशेषों मे भी मिलता है। १६३६ ई. मे आधुनिक राजघाट पर रेलवे स्टेशन का विस्तार करने के लिए खुदाई की गई। खुदाई में यूनानी देवी–देवताओं की आकृत्तियों से अंकित मिट्‌टी की मुद्राये मिली। इन मुद्राओं का संबंध डिमिट्रियस अथवा मिलिंद (मिनाण्डर) की पाटलिपुत्र की चढ़ाई से है। प्राचीन महाजनपथ, जिससे डिमिट्रियस की सेना मध्यदेश आयी, बनारस से होकर गाजीपुर से गंगा पार करके पाटलिपुत्र की ओर जाता था। सम्भवतः बनारस में

---

[८२] जातक, पूर्वोक्त, ४/१५.

[८३] वही २२ .

[८४] कालिदासः मालविकाग्निमित्रम, वाराणसी, चौखम्भा, १६८६, अंक ५.

डिमिट्रियस अथवा मिलिन्द की सेना ने पड़ाव डाला था, और इसी पडाव के प्रसग में कुछ यूनानी मुद्राये बच गयी।[८५]

काशी से शुगो का घनिष्ठ सम्बन्ध था। भागभद्र, (करीब ६० ई पू) अतिम शुग राजा के ठीक पहले हुए, की माता काशी की राजकुमारी थी।[८६] परन्तु काशी का राजा कौन था अज्ञात है। इलाहाबाद जिले में कौशाबी के समीप पभोसा से उपलब्ध एक लेख से ज्ञात होता है कि ई पू द्वितीय शती के मध्य मे वत्सजनपद का शासक वृहस्पति मित्र था। वह पचाल के शासक आषाढ़सेन का भाजा था। ये दोनों राज्य शुगों का अधिकार मानते थे। संभवत· वाराणसी कौशाम्बी के आधीन रही हो। इस सबध मे राजघाट से मिली दो मुद्राये उल्लेखनीय है। प्रथम मुद्रा जेठदत्त की है जिसे डॉ० अग्रवाल ई.पू पहली दूसरी शती का मानते है। मुद्रा पर नन्दिपद स्वांतक और वैजयंती के लक्षण है संभवतः ये वहीं जेठदत्त है जिनका एक सिक्का कार्लाइल को बनारस के पास बैरॉट से मिला था और जिस पर ई पू दूसरी शताब्दी की ब्राह्मी मे लेख है।[८७] मोती चन्द्र के अनुसार ये कौशाम्बी के राजा थे, और वाराणसी इनके अधीन थी।[८८] दूसरी मुद्रा फाल्गुनीमित्र की है। यह मुद्रा ई.पू. पहली शताब्दी की ब्राह्मी मे लेख है और उसकी बायी ओर वृषभ और सामने पताका है, या तो ये वाराणसी के राजा थे या कौशाम्बी के थे और वाराणसी इनके राज्य में था। बैरॉट से प्रायः इसी समय की लिपि वाले गोमित्र के दो सिक्के मिले हैं जो भारत कला भवन में है। ये संभवत· कौशाम्बी के राजा थे जिनका काशी पर अधिकार काफी समय तक रहा।[८९]

राजघाट की खुदाई से भी शुंग कालीन काशी के इतिहास पर कुछ प्रकाश पड़ता है। यहॉ से मिली अनेक वस्तुओं पर फल्गुनदिस लेख अंकित हाथी दॉत की

---

[८५] डा० मोतीचन्द्रः काशी का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ० ५६.
[८६] उल्जले हेगः कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, कैम्ब्रिज, १९२८, भाग ३ पृ० ५२२.
[८७] जे०एलनः क्वायंस आफ एंशियंट इंडिया, लन्दन, १९१४, प्लेट ४५.
[८८] मोतीचन्द्रः काशी का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ० ५८.
[८९] वही

एक नुद्रा और बलमितस नाम की एक मृणमुद्रा मिली है। फल्गुनदि और बलमित्र कौन थे इसका पता नही चलता है, पर शायद फल्गुनीमित्र और फल्गुनंदि से कोई संबध था। मित्र नामान्त वाले राजा संभवतः शुगो की किसी शाखा के शासक थे। दोनो मुद्राओं की लिपि शुग कालीन है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजघाट की खुदाई का पचम स्तर शुग कालीन है। इस स्तर से आहत सिक्कों के मिलने से भी इस बात की पुष्टि होती है।[६०]

भारत कला भवन, वाराणसी मे सग्रहित शुगकालीन कुछ व्यक्तियो की मद्राएँ है, यथाखुदपठ, गोपसेन, हथिसेन, जो संभवतः बड़े व्यापारियो की होगी। पुष्यमित्र वैदिक परंपरा के अनुयायी ब्राह्मण थे। वैदिक परम्पराओं के पुनरूत्थान का उन्होने हर संभव प्रयास किया, किन्तु वैदिक कट्टरता का वाराणसी पर कोई प्रभाव नही पडा। सारनाथ से मिले अवशेषों से सारनाथ में शुगकाल मे किसी तोड–फोड का कोई प्रमाण नही मिलता।[६१]

शुंगोत्तर से गुप्तकाल तक काशी

सातवाहनो का वाराणसी पर कभी वास्तविक राजनैतिक अधिकार नही रहा। शुगों के बाद नागो, कुषाणों और पुनः नागों का अधिकार काशी पर रहा, बाद के नाग ही भारशिव कहलाये।

सारनाथ से मिले वैदिक स्तभो और शीर्ष पट्टों के टुकडों पर के लेखो से जिनमें उज्जैन का नाम आया है, यह पता चलता है कि सॉची की आन्ध्रकालीन कला का सारनाथ की कला पर काफी प्रभाव था। इस युग में भी वाराणसी कौशाम्बी के राजनीतिक प्रभाव में थी। सारनाथ में अशोक के स्तम्भ पर उत्कीर्ण एक परवर्ती लेख से पता चलता है कि राजा अश्वघोष के चालीसवें राज्य संवत् तक बनारस उनके

---

[६०] एनुअल बिबलियोग्राफी ऑफ इंडियन हिस्ट्री एण्ड इण्डोलाजी, बम्बई भाग–३, १६४०, पृ० ४६–५१

[६१] डा० मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास, मूर्वोक्त, पृ०५६

अधिकार मे रहा।[७४] राजघाट से अश्वघोष की एक मुद्रा मिली है। डॉ० आल्तेकर ने भी इसी राजा का एक सिक्का प्रकाशित किया है, जिसमे अश्वघोष के नाम के ऊपर सिह की आकृति बनी है।[७५] डॉ० मोतीचन्द्र के अनुसार कनिष्क द्वारा मध्यदेश पर अधिकार करने के पहले अश्वघोष हुए होंगे।[६४]

ईसा की प्रथम शताब्दी के अंत में कुषाणो का मध्यदेश पर अधिकार हो गया था। सारनाथ से प्राप्त किये गये दो लेखों से पता चलता है कि कनिष्क के तीसरे राज्यवर्ष के पहले अर्थात ८१ ई.पू से पहले कनिष्क का अधिकार वाराणसी पर हो चुका था। ये दोनो अभिलेख भिक्षु बल द्वारा बनवायी गयी बोधिसत्त्व की प्रतिमा पर है।[६५] इन लेखो से ज्ञात होता है कि महाराज कनिष्क के तृतीय राज्य सवत्सर मे त्रिपिटज्ञ भिक्षुबल ने बोधिसत्व की प्रतिमा और छत्र–यष्टि की वाराणसी मे उस जगह स्थापना की जहॉ भगवान बुद्ध चंक्रमण करते थे। दूसरे लेख से जो प्रतिमा के पादपीठ पर है, पता चलता है कि भिक्षुबल ने महाक्षत्रप खर पल्लाण और क्षत्रप वनस्पर की मदद से यह प्रतिमा बनवायी। कनिष्क ने अपने विशाल साम्राज्य का प्रशासन क्षत्रपो और महाक्षत्रपों की सहायता से किया था। ये दोनों क्षत्रप सम्भवतः पिता पुत्र थे और कनिष्क साम्राज्य के पूर्वी भाग पर शासन कर रहे थे।[६६]

कौशांबी के मित्र राजवंश की द्वितीय और तृतीय शताब्दी की मुहरे और सिक्के राजघाट से मिले है। उनसे स्पष्ट होता है कि उस समय तक काशी वत्स जनपद के अधीन थी। कौशांबी पर उन समस्त मघ राजाओं का शासन था। काशी से सम्बन्धित मघ लोग भी नागों की एक शाखा थे जो उनके व नागों के मिलने वाले सिक्कों की

---

[७४] इपिग्राफिया इंडिका, वाल्यूमVIII, कतकत्ता, १६०६, पृ० १७१

[७५] द जनरल आफ नूमिस्मेटिक सोसायटी आफ इडिया, सम्पादित ए.एस. अल्तेकर, आरजी ग्यानी, वाल्यूम अंक I जून १६४२, बम्बई पृ० १४

[६४] डा० मोती चन्द्र, काशी का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ० ६५

[६५] इपिग्राफिया इंडिका, वाल्यूमVIII, कतकत्ता, १६०६, पृ० १७६

[६६] श्री राम गोयल, प्राचीन भारतीय अभिलेख, जयपुर, १६८२, पृ० ६६.

घनिष्ट समरूपता से प्रमाणित होता है। मघो ने भीटा (वाराणसी), कौशाम्बी (इलाहाबाद) और बाधोगढ (मध्यप्रदेश) मे थोडे–थोडे समय तक शासन किया। कौशाम्बी के कुछ राजाओ का परिचय मिलता है, परन्तु ताम्रपत्रो या शिलालेखो के अभाव मे कालक्रम निश्चित नहीं किया जा सकता। धनदेव–राजघाट की खुदाई मे इस राजा की बहुत सी मुद्राएँ मिली है जिन पर "धनदेवस्य राज्ञो" अकित है। इन मुद्राओ के बायी ओर वृषभ है जो यूप (स्तम्भ) और चैत्य के आगे खडा है। उसके पीछे भाला है। धनदेव के सिक्को से एलेन ने अनुमान लगाया है कि ये कौशाम्बी शासको की अन्तिम अवस्था के है। जो ईस्वी की प्रथम शती का है।[६७]

ज्येष्ठ मित्र इस राजा की मुद्रा पर 'ज्येष्ठ मित्रस्य' अकित है, जिसके अक्षर पहली शताब्दी के है। वृषभ बायी ओर अकित है। सम्भवत यह वही ज्येष्ठमित्र है, जिनके सिक्के कोसम से मिले है।[६८] संभव है ये कौशाम्बी के अन्तिम मित्र राजाओ मे रहे हो।

अभय कला–भवन वाली मुद्रा पर 'राज्ञा अभयस्य' लेख है और इस पर चक्र और कुत के लक्षण बने हैं। इलाहाबाद वाली इसी राजा की मुद्रा पर राजा के नाम के नीचे, बायीं ओर वृषभ है, उसके सामने चैत्य और यूप तथा पीछे त्रिशूल। वृषभ और चैत्य इस राजा का कौशाम्बी से सम्बन्ध प्रकट करते हैं। लेख की लिपि तृतीय शताब्दी की है। प्राप्त मुद्राओं, सिक्कों और लेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ईसा की दूसरी तीसरी शताब्दियों में कौशाम्बी पर मघ राजाओं का अधिकार था। इन मघ राजाओं में शिवमघ, भद्रमघ, वैश्रवण, भीमवर्मन, सतमघ, विजयमघ, पुरमघ, यज्ञमघ और भीमसेन के सिक्के मिले हैं। कौशाम्बी से तो इन राजाओं का सम्बन्ध विख्यात है पर अभी तक यह नहीं पता चला कि बनारस से इनका क्या सम्बन्ध था। भीमसेन, रूद्रमघ हरिषेण और कृष्णसेन की मुद्राएँ बनारस मे राजघाट से

---

[६७] जे एलन. क्वायन्स आफ एंशिएंट इंडिया, पूर्वोक्त, पृ० ६६.

[६८] जे. एलनः क्वायन्स आफ एंशिएट इंडिया, पूर्वोक्त, पृ० ६६.

मिली है, जिससे पता चलता है कि ईसा की दूसरी और तीसरी शताब्दियो मे सभवत बनारस कौशाम्बी के अधिकार में रहा होगा।[९९]

राजघाट, वाराणसी की खुदाई से कुछ और मुद्राये मिली है, जिनसे बनारस के द्वितीय और तृतीय शताब्दियो के इतिहास पर प्रकाश पडता है। पहली मुद्रा हरिषेण की है और राजघाट से काफी बडी संख्या में मिली है। दूसरी मुद्राएँ कृष्णषेण की है। मुद्राओ की लिपि कुषाण काल के अतिम युग की है। दोनो मुद्राओं के लक्षणो मे इतना मेल है कि ये दोनो राजे एक ही वश के लगते है। यद्यपि इनके लेख और सिक्के प्राप्त नही हुए है, लेकिन मुद्राये इतनी अधिक संख्या मे राजघाट मे मिली है कि यह मान लेने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए, कि दोनों बनारस में सभवत. द्वितीय शताब्दी के अंत या तीसरी शताब्दी मे राज्य करते थे। इनकी मुद्राओ के लक्षण (ऊपर अधिज्यधनु, बीच मे वेदिका से घिरा यूप, नीचे नदीपद, श्रीवस्त और स्वास्तिक) शिवमघ और भीमसेन की भीटा वाली मुद्रा से मिलते—जुलते है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनका उनसे दूर या नजदीक का संबध था। इनके नामों में षेण आने से यह कहा जा सकता है कि शायद वे भीमसेन के वंशधर रहे हों अगर हरिषेण और कृष्णषेण का इसके वंश से सबंध है तो उनका समय करीब १७० ई. और १८५ ई. के बीच होना चाहिए। यह भी संम्भव है कि भीमसेन के वंश की एक शाखा बनारस आ गयी हो और उसमें हरिषेण और कृष्णषेण रहे हो।[१००]

राजा नव की राजघाट से मिली मुद्रा पर **'राज्ञो नवस्य'** लेख दो लक्षणों यथा—बांयी ओर गड़ा हुआ भाला, और दाहिनी ओर वेदिका के अन्दर यूप, के बीच में हैं डॉ आल्तेकर का कथन है कि नव के सिक्के पूर्वी उत्तर प्रदेश और विशेषकर कौशाम्बी से मिले है। इन सिक्कों के लक्षण कौशाम्बी के सिक्को से मिलते हैं, इसलिए राजा नव सम्भवत· कौशाम्बी के राजा थे जो मघो के बाद २७५ ई० के करीब

---

[९९] डॉ० मोती चन्द्र, काशी का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ० ६७.

[१००] वही, पृ० ७०—७१

कौशाम्बी के शासक हुए।[१०१] डा० जायसवाल के अनुसार राजा नव पुराण के नवनाग वश के सस्थापक थे। १६५ ई० से १७६ ई० के बीच मे नव ने भारशिव वंश की स्थापना किया था। राजा नव पूरे उत्तर प्रदेश का शासक था उसके सिक्को पर आए संवतो से ज्ञात होता है कि उसने २७ वर्ष तक राज्य किया। उसके सिक्के पद्मावती विदिशा, मथुरा के वीरसेन के सिक्को से काफी साम्यता रखते है।[१०२] ये शासक शैव धर्म के उपासक थे। डा० जायसवाल का मत है कि इसी काल मे दशाश्वमेघ घाट पर भारशिवो ने दस अश्वमेघ यज्ञ किये। ये यज्ञ राजनीतिक और सनातन सस्कृति के पुनरूत्थान के सूचक थे। दस अश्वमेघ यज्ञ करने के बाद उन्होने गगा मे जिस घाट पर स्नान किया, उसी से वाराणसी के दशाश्वमेध घाट का नाम पडा।[१०३]

डा० आल्तेकर लिखते है कि मघो के बाद ही कौशाम्बी पर नागवश ने अपना अधिकार कर लिया और उसके बाद कुछ राजा इस वश के हुए होगे। सम्भवत गुप्त युग के आरम्भिक काल मे राजा नव के वशजों को हराकर शायद चन्द्रगुप्त प्रथम ने कौशाम्बी पर अधिकार कर लिया था।[१०४] डॉ० जायसवाल का कथन है कुषाण दूसरी शती के उत्तरार्द्ध में निश्चित रूप से अपना क्षेत्र नागों की नई शाखा के हाथो गवा बैठे। नवनागों का पहला शासक नवनाग हुआ। इस वंश के सात शासक हुए इनका समय १४० ई० से ३१५ ई० तक मानते हैं और अंतिम नाग शासक भवनाग था जिससे गुप्त शासको ने सत्ता छीनी थी।[१०५]

---

[१०१] भारत कौमुदी,(स्टडीज इन ऑनर आफ डॉ. राधकुमुद मुखर्जी), इलाहाबाद, १६४५, भाग १ पृ० १३–१८.

[१०२] के पी. जायसवालः हिस्ट्री आफ इंडिया, (१५० एडी. टू ३५० एडी.), मोतीलाल बनारसी दास, लाहौर, १६६३, पृ०१८–१६.

[१०३] "असंभारसंनिवेशित– शिव लिंगोद्वहन–सुपरितुष्ट समुत्पादितः राजवंशानां पराकमाधिगत– भागीरथ्यमल जलमर्धाभिषिक्तानां दशाष्वमेधावभृतस्नानानं भारशिवनाम्" (वाकाटक लेख), जे.एफ. फ्लीटः गुप्त इंसकिप्शंस, (अनु. गिरिजाशंकर मिश्र), जयपुर, १६७४, पृ० २४५–२४६.

[१०४] ए.एस.आर. १६११–१२ पृ० ३४ उद्वत मोती चन्द्र, काशी का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ० ७२

[१०५] जायसवाल, हि.ई. (१५०–३५०ई.) पूर्वोक्त, पृ० ३–६८.

गुप्त कालीन काशी

तीसरी सदी के चौथे चरण मे मगध मे गुप्त राज्यवश की सत्ता का उदय हुआ। गुप्त वंश के प्रथम शासक श्री गुप्त का अधिकार सम्भवत पटना के आस–पास तक ही सीमित था। परन्तु चन्द्रगुप्त प्रथम के अधिकार मे कौशाम्बी तक का क्षेत्र आ चुका था। इसका प्रमाण वायुपुराण के निम्न श्लोक से भी मिलता है, जिसमे आरम्भिक गुप्त युग की राज्य सीमा का वर्णन है–

अनुगंगा प्रयांग च साकेतं मगधंस्तथा

एताञ्जनपदान सर्वान् मोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजा ।[१०६]

उपर्युक्त श्लोक से पता चलता है कि शायद चन्द्रगुप्त प्रथम गगा की घाटी मे प्रयाग से लेकर पाटलिपुत्र तक राज्य करते थे और साकेत अथवा अवध के प्रदेश भी उनके राज्य मे शामिल था। अर्थात गुप्त राज्य मे चन्द्रगुप्त प्रथम के काल मे ही बनारस सम्मिलित हो चुका था।

चन्द्रगुप्त प्रथम (३०५–३२५ई.) के बाद समुद्रगुप्त (लगभग ३२०–३७५ई) सम्राट हआ। समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति लेख में कौशाम्बी या बनारस विजय का उल्लेख प्राप्त नही होता। सम्भवतः ये राज्य चन्द्रगुप्त के समय में ही उसके साम्राज्य का अंग बन चुके थे। डा० मोती चन्द्र का कथन है कि हो सकता है कि दक्षिण और मध्य प्रान्त की लड़ाइयों मे बनारस रसद पहुँचाने का अड्डा रहा हो, पर इसका कोई प्रमाण नहीं है।[१०७] इसके पश्चात् रामगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, कुमार गुप्त के शासन काल में (३८०–४१३ई.) बनारस का कोई राजनीतिक विवरण प्राप्त नहीं होता है, पर

---

[१०६] वायुपुराण (सम्पादक) गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, बम्बई, १९३३, २९/३८३

[१०७] मोती चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ० ८१

इस काल की सारनाथ की मूर्तियो और राजघाट से मिली मुद्राओ से यह पता चलता है कि बौद्ध और शैव धर्म इस युग मे बहुत तेजी से आगे बढ रहे थे। स्कन्द गुप्त विक्रमादित्य (४५५–४६७ई) का वाराणसी से घनिष्ट सम्बन्ध था। उनके राज्यकाल का सबसे महत्वपूर्ण लेख भितरी (गाजीपुर) से मिला है। गुप्तकाल मे शायद यह क्षेत्र बनारस में ही सम्मिलित था।[१०८] इस लेख से हमें पता चलता है कि स्कन्दगुप्त ने भीतरी में एक विष्णु की प्रतिमा स्थापित की और इसके आवश्यक व्यय हेतु एक गॉव दान कर दिया।[१०९] इस लेख से यह भी पता चलता है कि कुमार गुप्त के अन्तिम दिनों मे गुप्त साम्राज्यों को बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पडा जिसका वर्णन इस प्रकार है–

पितरि दिवमुपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मी

भुजबल विजितारियः प्रतिष्ठाय भूयः।

जितमिव परितोषान्मतरं साश्रुनेत्रां

हतरिपुखि कृष्णो देवकीमम्यु पेतः।।६।।

विचलित कुल लक्ष्मीस्तम्भनायोद्यतेन,

क्षिति तल शयनीये येननीता त्रियामा

स[illegible]दित बल कोशान पुष्य मित्रांश्च जित्वा,

क्षितिपचरणपीठे स्थापितो वामपा :।

पिता के दिवंगत हाने पर उसने शत्रुओं को अपने बाहुबल से जीत कर पुनः यह कहते हुए कि मेरी विजय हुई, वह हर्ष से साश्रुनेत्र अपनी माता के पास गया, जिस प्रकार कृष्ण शत्रुओं को मारकर देवकी के पास गये थे। विचलित कुल लक्ष्मी को रोकने के लिए उद्यत जिसे एक रात भूमिशयन कर रात काटनी पड़ी, बल कोश

---

[१०८] मोतीचन्द्र पूर्वोक्त, पृ० ८३

[१०९] फ्लीट, पूर्वोक्त, पृ० ५२–५४.

से सम्बन्धित पुष्यमित्रों को जीतकर उसने उनके राजा को पाद–पीठ बनाकर उस पर अपना बाया पैर रख दिया।

हुणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्म्याम धरा कंपिता।

भीमावर्तकरस्य.......... श्रोत्रेषु गुंगाध्वनिः।।[११०]

हूणो के साथ युद्ध मे उसकी दोनो भुजाओ के भयंकर आवर्तन से धरा कम्पायमान हुई और शायद स्कन्द गुप्त की सेना को कलकल शत्रुओ के कानो मे गंगाध्वनि की तरह लगने लगा।

हूणो को स्कन्द गुप्त ने अपने राज्य के प्रारम्भिक चरण में सम्भवत ४५६ ई० में पराजित किया। युद्ध के स्थान का पता नही चलता, परन्तु गगाघाटी का सकेत मिलता है। यह सम्भवत वाराणसी प्रयाग के बीच का क्षेत्र था, क्योकि कुल लक्ष्मी के कम्पित होने से संकेत मिलता है कि गुप्त साम्राज्य में काफी भीतर तक हूण आ गये थे। गुप्तकालीन मूलगंध कुटीबिहार (सारनाथ) के पर्याप्त टूट–फूट के बाद पुनः निर्माण का आभास सारनाथ के उत्खनन से लगता है। यह व्यापक टूट–फूट हूणों के आक्रमण से भी हो सकती है। राजघाट से स्कन्द गुप्त की मुद्रा मिली है, जो वाराणसी को गुप्त साम्राज्य का अंग प्रमाणित करती है।[१११]

स्कन्द गुप्त के पश्चात् कुमारगुप्त द्वितीय (४७३–४७७ ई.) के शासनकाल के दो उल्लेख मिले है, एक तो भितरी की मुद्रा और दूसरा सारनाथ का १५४ सवत् का लेख। इन दोनो लेखो के आधार पर वाराणसी और आस–पास के क्षेत्रो मे ४७३ ई० तक गुप्त शासन की पुष्टि होती है। कुमार गुप्त के बाद बुधगुप्त ४७७ ई० मे गद्दी पर बैठे जिन्होने ४९५ ई० तक शासन किया। बुधगुप्त का सारनाथ से पहला लेख

---

[११०] फ्लीट, पूर्वोक्त, पृ० ८३–८४

[१११] डॉ० मोती चन्द्र का इ, पूर्वोक्त, पृ० ८३

४७७ ई० का मिलता है।[112] इस लेख और राजघाट से मिले ४७७ ई० के एक दूसरे स्तंभोत्तकीर्ण लेख[113] पर महाराजाधिराज बुधगुप्त का नाम आने से यह निश्चित है कि उस अवधि में बनारस गुप्तों के अन्तर्गत ही था। इनके राज्यकाल का अन्तिम वर्ष चॉदी के सिक्को के आधार पर गुप्त सवत् १७५ (४६५ ई०) का माना जाता है। बुधगुप्त का राज्य शिलालेखों के आधार पर बंगाल से लेकर मध्य प्रदेश तक फैला था।

बुधगुप्त के बाद वैन्यगुप्त का नाम आता है, इनका राज्य काल ५००–५०८ ई० तक माना जाता है। वैन्य गुप्त के बाद भानुगुप्त हुए जो लगभग ५१०–५४४ ई० तक राजा रहे, इनका राज्य भी बगाल से मध्य प्रदेश तक था। काशी पर भी इनका अधिकार था। इस वश का अन्तिम राजा वज्र था जिसके बाद गुप्तवश का राज्य समाप्त हो गया इस प्रकार राजघाट से प्राप्त मुद्राओं और लेखो के आधार पर यह कहा जा सकता है। बनारस छठी शताब्दी के आरम्भ तक गुप्त राज्य के अन्तर्गत था।

ई. ५५० से ई. १००० तक काशी

छठी शताब्दी के मध्य मे गुप्त साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया। अनेक स्वतत्र राजवश उत्तरी भारत मे शासन करने लगे। इसी युग मे बनारस का राज्य मौखरियो के हाथ में चला गया। गुप्तों और मौखरियों के मध्य शत्रुता चलती रही। इन गुप्त शासकों में कुमारगुप्त का नाम उल्लेखनीय है। इसने मौखरी ईशान वर्मा को पराजित किया। ईशान वर्मा के हड़टा से प्राप्त लेख के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कुमार गुप्त द्वितीय का शासन काल ६०० ई० के आस–पास रहा होगा। कुमार गुप्त की मृत्यु प्रयाग मे हुई। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इसने ईशान वर्मा को पराजित कर प्रयाग सहित बनारस उससे छीन लिया होगा। आगे चलकर

---

[112] ए.एस.आर भाग–२, पृ० १२५.
[113] द जनरल आफ गंगानाथ झॉ रिसर्च इंस्टीटच्यूट, इलाहाबाद, १९४५, वाल्यूम ३ पृ० १–५.

ईशान वर्मा के पुत्र सर्ववर्मा ने कुमार गुप्त के पुत्र दामोदार वर्मा को पराजित कर मार डाला। इसका राज्य विस्तार बिहार तक फैल गया था, अर्थात पुन बनारस मौखरियो के अधिकार मे चला गया।

मौखरियों के अन्तिम राजा ग्रहवर्मा के साथ थानेश्वर के शासक प्रभाकर वर्धन ने अपनी पुत्री राज्यश्री का विवाह किया था। मालवा के राजा देवगुप्त ने ग्रहवर्मा को मार डाला। बाद मे राज्यश्री के भाई हर्षवर्धन ने देवगुप्त को पराजित कर दिया। हर्ष ने मौखरी राज्य को भी अपने राज्य मे मिला लिया। उस समय मौखरी राज्य कन्नौज से लेकर काशी तक विस्तृत था।

हर्ष वर्धन के समय (६०६–६४७ ई०) में वाराणसी की सामाजिक एव धार्मिक स्थिति के सम्बन्ध मे चीनी यात्री ह्वेनसाग[११४] के यात्रा विवरणों से बृहद् प्रकाश पड़ता है। तत्कालीन वाराणसी की राजधानी का पश्चिमी किनारा गगा तक था। शहर में मुहल्ले पास–पास थे। शहर की आबादी धनी थी। लोग सम्पन्न थे। यहॉ के निवासी शिष्ट थे तथा शिक्षा में रूचि रखते थे। अधिकाश लोग वैदिक धर्म के मानने वाले थे। बौद्ध धर्म के अनुयायियो की संख्या अपेक्षाकृत कम थी। काशी में देवमन्दिर बडी संख्या में थे। इनमें अधिकांश शैव मन्दिर थे। ह्वेनसाग ने सारनाथ का भी वर्णन किया है। इसमे वरूणा नदी के पश्चिम में अशोक द्वारा निर्मित एक स्तूप, स्तम्भ मृगदाव, विहार आदि है। ह्वेनसांग ने तीन तालाबों का भी वर्णन किया है जो बौद्धो की दृष्टि में अत्यन्त पवित्र थे। ह्वेनसांग के वर्णन से स्पष्ट है कि सारनाथ में बौद्ध स्तूपों और विहारों की प्रधानता थी।[११५]

हर्ष की मृत्यु के बाद कन्नौज मे अराजकता फैल गयी। लगभग साठ–सत्तर वर्ष तक वह मत्स्य न्याय (अराजकता) का केन्द्र बना रहा। सम्भवतः इसी का लाभ उठाकर परवर्ती गुप्त शासक आदित्यसेन ने अपने राज्य क्षेत्र का पुनः विस्तार किया।

---

[११४] एस. बील्सः ट्रेवल्स ह्वेनसांग, वाल्यूम ३, कलकत्ता, १९५८, पृ० ३१९–३२०.

[११५] मोती चन्द्र, का.इ. पृ० ९९–१००.

यद्यपि इसका निश्चित क्षेत्र का प्रमाण नही मिलता है। परन्तु पटना से काशी की समीपता और कन्नौज राज्य का अधिकाश क्षेत्र अधिगृहीत करने से काशी पर इसका अधिकार मानना उचित होगा। उसका राज्यकाल लगभग ६४८ से ६७१ ई० तक था।[११६] आदित्यसेन के बाद देवगुप्त द्वितीय व विष्णु गुप्त के समय भी काशी इनके अधीन ही थी। देववरनाक लेख से ज्ञात होता है कि मगध के गुप्त राजा जीवित गुप्त द्वितीय का पूर्वी भारत से लेकर बिहार तक आधिपत्य था, जिसमें वाराणसी भी सम्मिलित थी। परवर्ती गुप्तो के राजा का आठवी सदी के आरम्भ मे ही अन्त हो जाता है।[११७]

आठवी शदी के आरम्भ मे कन्नौज के राजा यशोवर्मा (लगभग ७२५–७५२ई) ने परवर्ती गुप्तो को पराजित किया। इसकी विजय यात्रा का विवरण प्राकृत काव्य गौडवाहों मे आता है। गुप्त शासक जीवितगुप्त को हराकर यशोवर्मा गौडदेश का शासक बन गया। काशी भी उसके अधिकार में आ गयी थी।[११८] यशोवर्मा के शासन काल में कन्नौज ने पुनः प्राचीन वैभव प्राप्त किया, किन्तु आठवीं शताब्दी के मध्य में आयुध शासको के शिथिल शासन के कारण वहॉ अव्यवस्था फैल गयी और उसने पुरानी प्रतिष्ठा को खो दिया।[११९]

यशोवर्मन की पूर्व की विजय दी्ˆका्ालक नहीं रही, क्योंकि उसे कश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तापीड़ के हाथो पराजय का सामना करना पडा।[१२०] वाराणसी के मुरारी लाल केडिया को राजघाट में ललितादित्य के सिक्को का भारी भण्डार मिला है

---

[११६] राधाकृष्ण चौधरी प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सास्कृतिक इतिहास, पटना, १९६०, पृ० २६६–२६७.

[११७] वही, पृ० २६८.

[११८] रामाशंकर त्रिपाठीः हिस्ट्री आफ कन्नौज, पूर्वोक्त, पृ० १६७–१६८.

[११९] वही, २१२–२१८.

[१२०] डॉ० विशुद्धानन्द पाठकः उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, लखनऊ, १९८२, पृ० १६२.

जो उसके वाराणसी मे अस्थायी स्कन्धावार बनाने का सकेत करता है। इससे ज्ञात होता है कुछ समय के लिए वाराणसी ललितादित्य के आधीन रही।

आठवी सदी के उत्तरार्ध मे काशी पर बंगाल के पालवश का आधिपत्य स्थापित हुआ। धर्मपाल इस वश का प्रमुख शासक था। बगाल के धर्मपाल का शासन (७७० से ८१०ई०) तक के मध्य माना जाता है। धर्मपाल ने कन्नौज के साथ–साथ वाराणसी पर भी अधिकार किया। अल्तेकर ने धर्मपाल की सेना का मुख्य केन्द्र वाराणसी को बताया है।[१२१] धर्मपाल की मृत्यु के पश्चात् देवपाल शासक बना। उसने अपने साम्राज्य का विस्तार मालवा तक किया। सभवत बनारस पर भी इसका अधिकार था। परन्तु प्रतिहारो की प्रगतिशील शक्ति ने उसके विस्तार पर विराम लगा दिया। ८५६ ई० तक सम्भवतः सम्पूर्ण पूर्वी उत्तर प्रदेश उसके हाथ से निकलकर प्रतिहारों के अधीन आ गया था।[१२२]

पालो के पश्चात् ९वीं शताब्दी के आरम्भ मे प्रतिहार वंश के शासक नागभट्ट द्वितीय (८०५–८३३ ई०) ने कन्नौज के राजा चक्रायुद्ध को पराजित कर अपना राज्य स्थापित किया। कन्नौज पर अधिकार हो जाने से लगभग ८५० ई० में वाराणसी पर प्रतिहारो का अधिकार हो गया।[१२३] १०वीं शताब्दी के अत तक प्रतिहारों का अधिकार शिथिल पड़ गया था।

१०वीं शताब्दी मे चन्देल शक्ति अपने उत्थान पर थी। जैजाकभुक्ति के चन्देल शासक धंग (९५०–११०२ ई०) ने दसवीं शताब्दी के अन्त में काशी पर अधिकार कर लिया था। धंग की उत्तरी पूर्वी राज्य सीमाएँ प्रयाग और काशी के प्रसिद्ध तीर्थो को छूती थी। उसके १०५५ वि.स. अर्थात ९९८ ई. के हमीरपुर जिले में स्थित नन्यौरा

---

[१२१] ए.एस.अल्तेकर, हिस्ट्री आफ बनारस, पूर्वोक्त, १९३७, पृ० ७.

[१२२] रामाशंकर त्रिपाठी, हिस्ट्री आफ कन्नौज, पृ० २३०–३६.

[१२३] वही, पृ० २३६.

नामक गॉव से प्राप्त एक अभिलेख से ज्ञात होता है[१२४] कि उस वर्ष चन्द्रग्रहण के अवसर पर उसने काशी मे भट्ट यशोधर को युलि नामक गॉव दान मे दिया था।

महमूद गजनवी के आकमणो से उत्तरी भारत मे जो अव्यवस्था फैली उसका लाभ चेदिवश के शासक गागयदेव ने उठाया। ११वी शताब्दी के दूसरे दशक मे कन्नौज कलचुरियो के अधिकार मे चला गया। कलचुरियो की कई शाखाये थी। गागेयदेव त्रिपुरी शाखा का था। इस शाखा का संस्थापक वामराजदेव (लगभग ६७५–७००ई०) था। बीच मे इस वश ने कई उत्थान पतन देखे। कोक्कल द्वितीय के पुत्र गागेयदेव (१०१५–१०४० ई.) ने विकमादित्य की उपाधि धारण की। वह अपने वश के सर्वाधिक शक्तिशाली एवं योग्य राजाओ मे एक था। अपने पराक्रम और विजय द्वारा अपने वश को भारत के प्रमुख राजवंशो की कोटि मे ला दिया था। ई० १०२६ और १०३३ ई० के मध्यान्तर मे वाराणसी के सारनाथ से प्राप्त एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि गागेयदेव ने वाराणसी के आस–पास का प्रदेश पालराज प्रथम महीपाल के अधिशासकों से १०२६ ई० में छीना था। इस अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि उसकी आज्ञा से काशी मे सैकड़ो धार्मिक कार्य किये गये थे।[१२५] गांगेयदेव के समय की मुख्य घटना अहमद नियाल्तगीन द्वारा १०३३ ई० में वाराणसी की लूट थी। यद्यपि इस आकमण की विश्वनीयता संदिग्ध है, और राजबली पाण्डेय जैसे इतिहासकार इसे असत्य मानते हैं। परन्तु यदि आक्रमण हुआ भी है तो भी लगता है कि गांगेयदेव उस समय वाराणसी से बहुत दूर थे। पजाब के मुस्लिम अधिशासक अहमद नियाल्तगीन के १०३३ ई० में बनारस पर किये गये आक्रमण के संदर्भ में तारीखे बैहाकी का उल्लेख है कि उस समय वहॉ का राजा गांगेयदेव था। १०३३ ई की ग्रीष्म ऋतु मे अहमद नियाल्तगीन अपनी सेना के साथ लाहौर से चलकर बनारस पहुॅचा। मुस्लिम

---

[१२४] एपिग्राफिया इंडिका, भाग–१, पृ० १३५ उद्धत डॉ विशुद्वानन्द पाठक, पूर्वोक्त, पृ० ३६७.

[१२५] राजकुमार शर्मा (सम्पादक) कलचुरि राजवंश और उनका युग, नई दिल्ली, १९९८, पृ० ५८.

सेना इस स्थान तक कभी नही पहुँची थी।[१२६] यह नगर दो वर्ग पर सग था इसमें जल की विपुलता थी, परन्तु वहॉ पर सेना प्रात-काल से सायकाल अजान तक ही ठहर सकी, क्योकि वहॉ पर बड़ा खतरा था। कपडे वाले, गन्धियो और जौहरियो के बाजार लूट लिये गये, परन्तु इसके अतिरिक्त कुछ भी नही किया जा सका। सैनिक लोग धनी बन गये, क्योकि वे सोना, चॉदी, जवाहरात और इत्र लेकर सुरक्षित रूप से वापस लौट गये थे।[१२७]

यह आकस्मिक आक्रमण एक लूट का धावा मात्र था। लूटेरे वाराणसी मे आधे दिन से अधिक नहीं रूके। ऐसा प्रतीत होता है कि गांगेयदेव की सैनिक शक्ति का उन्हे पूरा ज्ञान था।[१२८] गागेयदेव शैव धर्मानुयायी था कलचुरी वश के अन्य राजाओ की तरह शिव मन्दिरों की उसने स्थापना की।

गागेयदेव के बाद उसका पुत्र लक्ष्मीकर्ण (१०४१–१०८१ई०) शासक बना। यह कलचुरी वंश का सबसे शक्तिशाली शासक हुआ। अपने राज्यारोहण के समय उसे विशाल राज्य और प्रतिष्ठित सास्कृतिक परम्परा विरासत मे मिली, जिसका उसने विस्तार किया। उसके शासन काल के आठ अभिलेख उसकी विस्तृत रूप से यश गाथा उपस्थित करते है। अपने शासन के प्रारम्भिक बीस वर्षो तक प्राय· सभी दिशाओ में विजय प्राप्त कर वह सर्वाधिक शक्तिशाली सम्राट बन गया। कर्ण केवल एक सैनिक विजेता और राजनीतिक महत्वाकांक्षी मात्र नहीं था, वह अनेक सांस्कृतिक कार्यो के लिए भी वह अनुश्रुत है। वाराणसी के कर्णमेरू नामक उत्तुंग शिवालय[१२९] प्रयाग में गंगा के किनारे कर्णतीर्थ घाट और कर्णवती नामक नगर का उसने निर्माण

---

[१२६] इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग–१४, पृ० १३६, उद्धृत राजकुमार शर्मा, पृ० १७०

[१२७] अब्दुल फजल अल बेहकीः तारीखुस सुबुक्तगीन, उद्वत इलियट एवं डाउसन (मूल सम्पादक) भारत का इतिहास अनुवादक, मथुरा लाल शर्मा, भाग–२, आगरा, १९७४, पृ० ६०.

[१२८] विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर भारत का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ० ६२०.

[१२९] वासुदेव विष्णु मिराशीः कार्पस इंस्किप्सन्स इण्डिकेरम, जिल्द ४, नागपुर १९५५, पृ० २६३ (कर्ण का बनारस लेखः श्लोक १३), मेरूतुंगः प्रबन्ध चिन्तामणि (अनु हजारी प्रसाद द्विवेदी) अहमदाबाद, १९४०, पृ० ६२.

कराया। साथ ही उसके समय सारनाथ के बौद्व बिहारो मे बौद्वौ को अन्य धर्मावलम्बियो के समान ही सुविधाए प्राप्त थी और उन्हे अपने साहित्य की रक्षा और विकास का पूरा अवसर प्राप्त था।[130] वाराणसी और प्रयाग उसके प्रिय नगर थे, जहॉ वह प्राय· धार्मिक कार्यो को सम्पादन किया करता था। कर्ण को वाराणसी से विशेष अनुराग था। वह उसकी दूसरी राजधानी के समकक्ष हो गया था। काशी मे ही प्रसिद्व कश्मीरी कवि बिल्हण उसके पास कुछ दिनो रहा था। डॉ ग्रियर्सन ने काशी मे कर्ण डाहरिया (डाहलिया) के दान की प्रचलित कथाओ का उल्लेख किया है। सम्भव है कि उसकी दानशीलता से और गुण–ग्राहकता से आकृष्ट होकर बिल्हण, बल्लभ, नाचिराज कर्पूर, कनकामर और विद्यापति जैसे कवि उसके राजदरबार मे रहने लगे।[131]

वाराणसी से कलचुरि राजसत्ता का पराभव: यश: कर्ण (१०७३–११२३ ई०) : १०७२ ई० मे कर्ण की हूणवंशोदमवा रानी आवल्लदेवी से उत्पन्न पुत्र यश· कर्ण राजा हुआ। यश·कर्ण कलचुरि राज्य की कर्ण द्वारा प्रस्थापिक राजनीतिक और सैनिक महत्ता की रक्षा नही कर सका। यशःकर्ण की प्रतिष्ठा और राज्य सीमा पर सबसे प्रमुख आघात कन्नौज की गाहडवाल सत्ता ने पहुॅचाया।[132]

गाहडवाल कालीन वाराणसी: १०वी एव ११वीं सदी के उथल–पुथल भरे युग में गाहडवाल ने काशी को स्थायित्व दिया और लगभग १०० वर्षो तक उसे भारतवर्ष का अग्रणी राज्य बनाये रखा। कर्ण की मृत्यु के बीस वर्ष के अन्दर ही गंगा– यमुना के दोआब में एक नयी राज्यशक्ति का उदय हुआ जिसने १०८६ ई० के लगभग बनारस से लेकर कन्नौज तक अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।[133]

---

[130] कार्पस, पूर्वोक्त, जिल्द ४ पृ० २७६.

[131] कार्पस, पूर्वोक्त, जिल्द ४ पृ० २७६.

[132] इंण्डियन ऐण्टीक्वेरी, भाग–१४, पृ० १०३ उद्वत, डॉ० विशुद्वानन्द पाठक, पूर्वोक्त, पृ० ६३१.

[133] वही, भाग ८, पृ० १८, उद्वत, डॉ० विशुद्वानन्द पाठक, पूर्वोक्त, पृ० ३४८

चन्द्रदेव (१०८६–११०४ ई०)

महीचन्द्र का पुत्र चन्द्रदेव गाहड़वालो की स्वतन्त्र सत्ता का वास्तविक सस्थापक था। उसके चार अभिलेख प्राप्त हुए है।[१३४] ये सभी अभिलेख चन्द्रदेव के दानमात्र की चर्चा करते हैं, किन्तु उनसे यह स्पष्ट है कि काशी और अयोध्या जैसे प्रमुख नगरो सहित गगा और सरयू (घाघरा) नदियो के किनारों के प्रदेश उसके अधिकार मे थे। तत्कालीन उत्तर भारत तुर्की आक्रमणो से अत्यधिक ग्रस्त था। तुर्क कई अवसरो पर बनारस तक लूटपाट मचा चुके थे। चन्द्रदेव ने इस परिस्थिति का अन्त कर काशी कुशिक (कान्यकुब्ज), उत्तर कोसल (अयोध्या), और इन्द्रस्थानीय (दिल्ली इन्द्रपस्थ) के सभी पार्श्ववर्ती क्षेत्रो पर अधिकार कर लिया।

मदनपाल (लगभग ११०४–१११४ ई०):

चन्द्रदेव का पुत्र मदनपाल बहुत कम समय तक राजा रहा। इनके समय के प्राप्त पॉच अभिलेखों से ज्ञात होता है कि शासक के रूग्ण होने अथवा किसी अन्य कारण से शासन का दायित्व मदनपाल की ओर से एक संरक्षक समिति के हाथों में था। उसके समय में हुए तुर्क आक्रमणों को युवराज गोविन्द चन्द्र ने विफल कर दिया था। तत्कालीन अभिलेख में गोविन्द चन्द्र के बार–बार (मुहुर्मुह.) वीरता प्रदर्शित करने का जो उल्लेख है उससे लगता है कि तुर्क आक्रमणकारियों के साथ उसका संघर्ष

---

[१३४] एपिग्राफिया इण्डिका, भाग–६, पृ० ३०२–३०५, इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली, सं. रामानन्द विद्याभवन एन.एन. ला. दिल्ली, १६४६, पृ० ३१–३७, उद्धृत डॉ. विशुद्धानन्द पाठक, पूर्वोक्त, पृ० ३४८

बहुत लम्बा रहा। युवराज काल में गोविन्दचन्द्र के सभी युद्ध प्रतिरक्षात्मक रहे। उसके पिता मदनपाल के समय गाहडवाल राज्य की सीमाओ मे कोई कमी नही होने पायी।

गोविन्दचन्द्र (लगभग १११४–११५४ ई०)

गाहडवालो का सबसे प्रतापी राजा गोविन्दचन्द्र हुआ। वह तुर्की के आक्रमण को विफल करने के लिए सदा सन्नद्ध रहा। उसे इस कार्य के लिए विष्णु का अवतार कहा गया है। गोविन्दचन्द्र के पचास से अधिक अभिलेख मिले है, जो क्षेत्र की विशालता, सुख–शान्ति व धर्मप्रचार के द्योतक है। गोविन्द्र चन्द्र के महासन्धिविग्रहिक लक्ष्मीघर भट्ट ने भी गोविन्दचन्द्र की प्रशस्ति मे तुर्को के साथ युद्व का उल्लेख किया है।[१३५] इस युद्ध में तुर्को की पराजय हुई। युद्ध मे बचे हुए सैनिक, स्त्रियॉ और बच्चे शरणागत हुए और बाद में शहर में बस गये। आगा मेहदी हुसैन के अनुसार सलार मसूद ने १११८ ई० के आस–पास गोविन्दचन्द्र के राज्य पर आक्रमण किया था, शरणागत हुए मुसलमानो ने बनारस के राजा की सेना मे नौकरी कर ली जिन मुहल्लो मे वे रहते थे वे आगे चलकर सालारपुरा एवं अलवीपुरा के नाम से विख्यात हुए।[१३६]

गाहडवाल लेखो में तुरूष्कदण्ड कर का उल्लेख मिलता है जो कि गोविन्दचन्द्र ने उन बचे हुए मुसलमानों पर जजिया कर की तरह लगाया था, जो उसके राज्य मे बस गये थे। कामिलउत्तवारीख[१३७] से ज्ञात होता है कि गाहडवालो के राज्य मे पहले से ही कुछ मुसलमान बसे थे। गोविन्दचन्द्र के राज्य में बनारस के एक

---

[१३५] लक्ष्मीधर. कृत्यकल्पतरू (तीर्थविवेचन खण्ड)ओरियन्टल सिरीज, बड़ौदा १९४२, पृ० ४८–४६.

[१३६] इब्नबतूताः किताबुल रेहला, (सम्पादक आगा मेहदी हुसैन), बडौदा, १६५३, पृ० १६५३–२३६

[१३७] इब्न–असीर कृत कामीलुत–तवारीख, उद्वत इलियट एण्ड डाउसन, पूर्वोक्त, भाग–२, पृ० १८१

मुहल्ले गोविन्दपुरा कलॉ को दलेलखॉ ने बसाया था। दलेलखॉ के पुत्र हुसैन खॉ ने विजयचन्द्र के राज्य मे हुसैनपुरा बसाया और सैयद तालिब अली ने जयचन्द्र के राज्य मे गढवासी टोला मुहल्ला बसाया।[१३८] लक्ष्मीधर भट्ट ने कृत्यकल्पतरू मे उनकी महती प्रशस्ति गायी है। उक्ति व्यक्ति प्रकरण के रचयिता दामोदर भी गोविन्दचन्द्र की प्रशासात्मक प्रशस्ति देते है।[१३९] प्रशस्ति मे कहा गया है कि उन्होने शौर्य से कीर्ति अर्जित की वे धनवान प्रतापी और बुद्धिमान थे। गोविन्दचन्द्र के समय कन्नौज का दरबार विद्या सस्कृत और साहित्यिक कियाकलापो का केन्द्र था।[१४०]

विजय चन्द्र (लगभग ११५५–११६६ ई०)

विजयचन्द्र का नाम विजयपाल और मल्लदेव भी था। ११६८ ई० के कमौली अभिलेख से विजयचन्द्र और तुर्को के बीच युद्व का उल्लेख मिलता है, जिसमे विजयचन्द्र की विजय हुई। लेकिन इस आकमण का उल्लेख किसी मुस्लिम लेखक ने नहीं किया है। सम्भवत तुर्क उसमे पराजित हुए। इसी कारण मुस्लिम लेखक इस युद्ध के बारे में मौन है। इस आकमण में उलझे होने के कारण पूर्वी सीमा पर लक्ष्मणसेन ने आकमण किया किन्तु साम्राज्य के किसी भाग मे क्षति नही पहुॅची।

विजयचन्द्र के समय पश्चिम में गाहडवालों के प्रभाव में ह्रास हुआ। दिल्ली के तोमर जो गाहड़वालों के अधीनता में थे अब शाकम्भरी के विग्रहराज ने उन पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

जयचन्द्र (११७०–११९४ ई०) जयचन्द्र के शासनकाल के १६ अभिलेख प्राप्त होते हैं, किन्तु उनसे राजनीतिक महत्व की बहुत कम बाते मिलती हैं, चन्द्रवरदायी

---

[१३८] ईशा बसन्त जोशी. (सम्पादक) गजेटियर आफ इण्डिया, उत्तर प्रदेश, वाराणसी, इलाहाबाद, १९६५, पृ० १९०.

[१३९] दामोदर भट्टः उक्ति व्यक्ति प्रकरण, (सम्पादक जिन विजय मुनि), बम्बई १९५३, पृ० २५.

[१४०] पूर्वोद्धत

कृत पृथ्वीराजरासों विद्यापति कृत पुरूष परीक्षा और मेरूतुंग कृत प्रबन्ध चिन्तामणि जैसे साहित्यिक ग्रन्थो में उसके अनेक उल्लेख प्राप्त होते है।

जयचन्द्र के शासन काल की प्रमुख घटना पृथ्वीराज चौहान और जयचन्द्र के बीच शत्रुता थी, वे एक दूसरे को हटाकर राजनीति में प्रमुख स्थान पाना चाहते थे ऐसी स्थिति मे संयोगिता के स्वयवर मे पृथ्वीराज को आमन्त्रित न किया जाना स्वाभाविक था। किन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक क्षेत्र का प्रतिस्पर्द्धी जयचन्द्र अपमानित होकर पृथ्वीराज का शत्रु बन गया। उत्तर भारत के उन दो प्रमुख राजाओ के आपसी वैमनस्य से विदेशी आक्रमणकारी शिहाबुद्दीन गोरी की बन आयी। मुहम्मद गोरी ने ११६२ ई० में तराइन के द्वितीय युद्ध मे पृथ्वीराज चौहान को पराजित किया। पुरातन प्रबन्ध[१४१] से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज के मृत्यु का समाचार सुनकर जयचन्द्र ने अपनी राजधानी में दिवाली मनायी। तत्कालीन अविवेकपूर्ण हिन्दू नीति की यह हीनतम परिणति थी।

शिहाबुद्दीन गोरी का आक्रमण और गाहडवाल राज्य का पतन (११६३–६४३ ई.)

सन् ११६३ ई० में मुहम्मद गोरी ने कन्नौज पर आक्रमण किया। यह सम्भव है कि गाहडवाल सेनाओ के सीमान्त सैनिकों से प्रारम्भिक झडपो में वे पराजित हुए हो, जिसका संकेत जिनप्रभूसूरि कृत विविध तीर्थ कल्प में मिलता है। ११६४ ई० में अपने ५० हजार शस्त्र कवचधारी घुड़सवारों के साथ शिहाबुद्दीन गोरी ने उस पर तीखा आक्रमण किया। यह युद्ध वर्तमान फिरोजाबाद के पास चन्दावर नामक स्थान पर हुआ। प्रारम्भ मे जयचन्द्र की विशाल सेना से मुस्लिम सेना भयभीत रही, परन्तु कुतुबुद्दीन का तीर ऑख में लगने से जयचन्द्र हाथी से गिर गया और अततः मारा गया। जयचन्द्र की सेना पराजित होकर पलायन कर गयी। तुर्क सेना ने 'असनी' पर

---

[१४१] पुरातन प्रबन्ध संग्रहः जिनविजय द्वारा सम्पादित, कलकत्ता. १६३६, पृ० ८८–६०

अधिकार कर वहाँ रखे गये राज्य के समस्त कोष पर कब्जा भी कर लिया। आक्रामक सेना ने आगे बढकर बनारस को लूटा, और वहाँ एक हजार मन्दिरों को धराशायी कर कुछ स्थानो पर मस्जिदे खडी कर दी।[142] इस प्रकार हिन्दुओ का अन्तिम गढ भी ढह गया।

जयचन्द्र की चदावर मे हार और मृत्यु से गाहडवाल राज्य की प्रतिष्ठा तो धूल मे मिल गयी, किन्तु उसकी पूर्ण समाप्ति नही हुयी। गोरी की सेना ने इधर–उधर लूटपाट की, पर कन्नौज पर अधिकार स्थापित करने का कोई प्रयास नही किया।[143] जौनपुर के पास मछली शहर के लेख[144] से पता चलता है कि जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र का ११९४ ई० के बाद मे भी बनारस के आस–पास अधिकार था। ११९७–९८ ई. तक मिर्जापुर, वाराणसी, जौनपुर के क्षेत्रों मे हरिश्चन्द्र के अधिकार का विवरण मिलता है। किन्तु इस तिथि के बाद उसकी अथवा कन्नौज, काशी के गाहडवाल राज्य के अन्य किसी भी प्रतिनिधि का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

सन् ११९८ ई० में कुतुबुद्दीन द्वारा दूसरी बार बनारस पर आक्रमण करने का उल्लेख मिलता है।[145] इस विजय के बाद वाराणसी और अवध के फौजदार मलिक हिसामुद्दीन उगलबक बना दिये गये। इस प्रकार वाराणसी मुस्लिम शासन सत्ता के नियन्त्रण में आ गयी, जिससे इस नगर के इतिहास का स्वरूप बदला और उसमें नये आयाम जुडे।

---

[142] हसन निजामी कृत ताजुलम आसिर उद्धृत इलियट एण्ड डाउसनः पूर्वोक्त, भाग–२ पृ० १६२–६३.

[143] रोमा नियोगीः द हिस्ट्री आफ द गाहडवाल डाइनेस्टी, कलकत्ता. १९५९, पृ. ११५–११६

[144] एप्रिग्राफिया आफ इण्डिका, भाग–१० कलकत्ता, १९१०, पृ० ९३–१००.

[145] ए.बी.एम. हबीवुल्लाः फाउण्डेशन आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, इलाहाबाद १९६१, पृ० ६७–६८.

सारांश

इस अध्याय के अन्तर्गत प्राचीन वाराणसी की राजनीतिक, धार्मिक एव सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध मे सकलित तथ्यो का विवेचन किया गया। वैदिक युग से लेकर १२वी शताब्दी तक वाराणसी के इतिहास के सम्बन्ध मे संकलित तथ्यो के विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ है कि यह नगरी समय–समय पर विभिन्न राज्यवशो के आधीन रही। गंगा के तट पर अवस्थित होने के कारण इसके सृजन के साथ ही धार्मिक विशिष्टता भी इससे सम्बद्ध रही है। मत्स्य पुराण मे काशी और शिव के सम्बद्ध होने की एक कथा का विवरण प्राप्त होता है। काशी खण्ड और तीर्थ कल्पतरू मे काशी मे संस्थापित शिवलिंगों की सूची पायी जाती है। राजघाट की खुदाई से प्राप्त मुहरों से २०० ई० से लेकर ८०० ई० तक के इतिहास का विवरण प्राप्त हुआ है। अविमुक्तिेश्वर, गोमतेश्वर, श्रीसारस्वत, योगेश्वर, पीतकेश्वर, भृग्वेश्वर, बटुकेश्वर स्वामी, कलसेश्वर, कर्दमकरूद्र और श्री स्कन्द रूद्र स्वामी शिवलिंगों की मुहरे प्राप्त हुई है। काशी को विभिन्न नामों से पुकारा जाता था। इनमे एक नाम ब्रह्मवड्ढ़न भी मिला है जिसका तात्पर्य ज्ञानपुरी है। जातक युग मे ही काशी को प्रसिद्धि प्राप्त हो गयी थी, लेकिन इसका पूर्ण विकास गुप्तकाल के स्वर्णयुग में हुआ। जातको और बौद्ध साहित्य में इसकी प्रसिद्धि का मूल कारण इसकी व्यापारिक उन्नति थी। सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्रो के साथ सुगंधित द्रव्यों का व्यवसाय प्रधान था। यह व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र था। यह स्थिति १२वीं शताब्दी तक बनी रही। अशोक के शासन काल से वाराणसी के सांस्कृतिक इतिहास का कमबद्ध विवरण प्राप्त होता है। सातवाहनों से गुप्त काल तक नगर कला, धर्म और व्यापार का अभिकेन्द्र बना रहा। गुप्तकाल में वाराणसी की पवित्रता का विश्वास दृढ़ हो चला था। इस काल मे वैष्णव धर्म का भी प्रसार हो चुका था। श्री हर्ष के शासनकाल मे वाराणसी अत्यन्त घनी आबादी वाला क्षेत्र था जिसमें बहुत धनवान लोग निवास करते थे। नागरिक शिष्ट थे

और शिक्षा के प्रति उनमे अत्यधिक अनुराग था। तत्कालीन वाराणसी मे १०० फुट ऊँची कासे की बनी एक देवमूर्ति थी। जीवितगुप्त द्वितीय के उपरान्त यह नगर कन्नौज के राजा यशोवर्मा के अधिकार मे आ गया था। तत्पश्चात् यह धर्मपाल, देवपाल आदि के अधिकार मे रहा। राष्ट्रकूटो और प्रतिहारो के शासन काल मे नगर की धार्मिक संरचना मे विशेष परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता। यह नगर शैव धर्म प्रधान बना रहा। आठवी सदी में यह नगर ज्ञान के उच्च्च शिखर पर था। शंकराचार्य को भी अपने मत की पुष्टि यहॉ के विद्वानो से करानी पड़ी थी। वज्रयान का भी प्रभाव बढ़ रहा था और देवी–देवताओं की पूजा भी प्रारम्भ हो चुकी थी। शैव, शाक्त तथ वज्रयान के मध्य भेदभाव भी कम हो गया था।

मुस्लिम शासन के पूर्व यह नगर गाहडवालों के अधिकार में अत्यत उन्नत स्थिति मे था। १०७०ई० से इनका शासन प्रारम्भ हुआ। वाराणसी इनकी राजधानी थी। इनकी सत्ता चन्द्रदेव से प्रारम्भ होकर जयचंद्र तक बनी रही। सन् ११६४ ई० मे गाहडवालों का शासन समाप्त हो गया और मुसलमानों ने नगर पर ११९७ ई० के पूर्व अधिकार स्थापित कर लिया। इस पृष्ठभूमि में सल्तनत कालीन वाराणसी के सम्बन्ध में संकलित तथ्यों का विश्लेषण अगले अध्याय में दिया गया है।

अध्याय द्वितीय

(प्रथम खण्ड)

सल्तनतकालीन बनारस (१२०६–१५२६)

इस अध्याय के अन्तर्गत सल्तनत काल मे बनारस के सम्बन्ध मे संग्रहित ऐतिहासिक तथ्यो का विवरण दिया गया है। तथा बनारस के तत्कालीन प्रशासनिक परिवर्तन के विविध पक्षो का तथ्यसंगत विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

तुर्की वंश के स्थापना के पूर्व भारत पर महमूद गजनवी के आक्रमण के पश्चात जो हमे पहली सूचना बनारस की मिलती है इतिहासकार बैहाकी द्वारा दी गयी, जिसके अनुसार १२वी शताब्दी के प्रारम्भ मे अहमद नियल्तगीन बनारस तक गया था।[1] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि गोरियो द्वारा उत्तरी भारत पर विजय के लगभग पचास वर्ष पूर्व मुसलमानों के अलग–अलग पडे सांस्कृतिक समुदायो ने देश में अपने पैर जमा लिए थे। बनारस के विषय मे इब्ने असीर लिखता है उस प्रदेश में महमूद पुत्र सुबुक्तगीन के समय से मुसलमान रहते हैं, जो निरतर इस्लाम धर्म के नियमों के प्रति निष्ठावान रहे और नमाज पढ़ने और धार्मिक कर्मों में दृढ़सकल्प रहे है।[2]

बनारस के संदर्भ में अल्तेकर का कथन है कि इस अवधि में बनारस के पतन के लिए दो कारण उत्तरदायी थे। प्रथम, यह मूर्तिपूजा का केन्द्र था। द्वितीय, यह पूर्व की ओर जाने वाले मार्ग से जो कि कन्नौज, अयोध्या, जौनपुर, गाजीपुर से होकर जाता था, दूर पड़ता था।[3]

---

[1] बैहाकी गनी और फैयाज द्वारा सम्पादित पृ० ४०२

[2] इलियट एण्ड डाउस भाग २ पृ० २५१

[3] ए, एस, अल्तेकर, हिस्ट्री आफ बनारस, कल्चर पब्लिकेशन हाउस बनारस, १९३७, पृ० २४३

मुइ‍ज्जुद्दीन का बनारस अभियान

११९२ ई० के पश्चात मुइजुद्दीन, गहड़वाल सत्ता का उन्मूलन करने के उद्देश्य से भारतवर्ष आया। उसने दिल्ली मे भी सैनिको की भर्ती की और फिर बनारस की ओर कूच किया।[४] ऐबक तथा सि[illegible] ईजुद्दीन हुसेन बिन खर्मेल सेना के अग्रिम दल के सरदार नियुक्त किये गए। ११९४ ई० मे चन्दवार के निकट युद्ध हुआ। इस युद्ध में गहडवाल शासक ने राजा जयचन्द्र को पराजित कर बनारस पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित की। मिनहाज ने इस विजय मे चाहे अन्य जो लाभ देखा हो किन्तु वह बड़े उल्लास से लिखता है कि, "तीन सौ और कुछ हाथी मुईजुद्दीन के अधिकार मे आए।" किन्तु वास्तव मे विजय का इससे कही अधिक महत्व था। यद्यपि समस्त गहडवाल राज्य पर अधिकार नही किया जा सका किन्तु उसने अनेक स्थानो पर सैनिक चौकिया स्थापित करना सुलभ कर दिया जैसे बनारस और अस्नी।[५]

तत्कालीन इतिहासकार हसन निजामी ने लिखा है कि "बनारस का राजा जयचन्द्र मूर्तिपूजक तथा विशाल सेना का स्वामी था। उसकी सेना रेत के कणों की भॉति अत्यधिक थी। बनारस के राजा जयचन्द्र को अपनी सेना और हाथियो पर गर्व था। वह ऊँचे हौदे पर बैठा हुआ था, उसको घातक बाण लगा, जिसके कारण वह हौदे से गिर पड़ा। उसके सिर को भाले पर टॉगकर सेनापति के पास ले जाया गया। उस देश से मूर्तिपूजा की गन्दगी तलवार के पानी के द्वारा धो डाली गयी और भारत वर्ष अन्धविश्वास और व्यसन से मुक्त कर दिया गया। लूट का माल इतना था कि दर्शको की ऑखें थक जायें। इसमें ३०० हाथी भी शामिल थे। फिर शाही सेना ने असनी के दुर्ग पर अधिकार कर लिया, जहॉ राजा जयचन्द्र का कोष रखा जाता था।

---

[४] मिनहाज, १४० जैसा कि हबीबुल्ला 'फाउंडेशन', ६७ में उद्धृत है

[५] वही, तथा इलियट एण्ड डाउसन (सम्पादक) भारत का इतिहास (अनु: मथुरा लाल शर्मा), शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, (प्रथम संस्करण), १९७४, भाग– २, पृ० १६२–१६३, तथा बनारस गजेटियर, पृ०–४०,

यहाँ विजेताओ को और भी अधिक मूल्यवान कई प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त हुई। उस स्थान से शाही सेना ने बनारस की ओर प्रस्थान किया जो भारत का केन्द्र था। यहाँ पर मुसलमानो ने मन्दिरो को तोड़ा और उनके आधार पर मस्जिदे बनायी। दीनार और दिरहम पर सुलतान का नाम और उपाधियाँ लिखी गयी। भारत के राय और सरदार अधीनता स्वीकार करने के लिए आये, तब उस देश की सरकार उन्ही में से एक प्रसिद्ध और उच्च राजसेवक के सुपूर्द कर दी गयी। उद्देश्य यह था कि यह लोगो के साथ न्याय करेगा और मूर्तिपूजा का दमन करेगा।"[६] इस प्रकार मुइजुद्दीन ने ११९४ ई० में बनारस में मुस्लिम शासन की नींव डाली तथा यहा का इक्तादार जमालुद्दीन को नियुक्त किया। इसने बनारस मे अपने नाम का एक मुहल्ला जमालुद्दीनपुरा बसाया। जो आज भी उसके नाम से प्रसिद्ध है।[७] जमालुद्दीन ने बनारस से मूर्ति पूजा समाप्त करने का प्रयास किया। अनेक मन्दिर गिराये गये तथा मन्दिरो के अवशेषों से मस्जिदों का निर्माण किया गया। इसमें प्रमुख मस्जिद है अढाई कगुरे की मस्जिद।[८] राजघाट पर मस्जिद में एक दालान १५० फुट लम्बी और २५ फुट चौडी है। इसके खम्भे गाहड़वाल युग के या इससे भी पहले के है। राजघाट पर ही पलंग शहीद के एक ढूहे पर चार खम्भों वाली एक इमारत है, जिसकी छत पर मूर्तियाँ बनी हुई हैं।[९] स्थानीय प्रशासनिक दुर्व्यवस्था और सत्ता में परिवर्तन के कारण ११९७ ई० मे कुतुबुद्दीन ऐबक को दूसरी बार फिर बनारस पर अधिकार करना पड़ा।

---

[६] इलियट एण्ड डाउसन, भारत का इतिहास, (अनु मथुरा लाल शर्मा), शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, (प्रथम संस्करण) १९७४, भाग–२ पृ०– १६२–१६३,

[७] बनारस गजेटियर, पृ०–४४, तथा मुरक्कये बनारस, पृ०–१११, तथा इलियट एण्ड डाउसन भाग–२, पृ० २२२–२४, तथा डा० मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास, वि० वि० प्र० वाराणसी, १९८६ पृ० १८१, तथा आदि तुर्क कालीन भारत (१२०६–१२९०) S.A.A Rizvi, अलीगढ वि० वि० अलीगढ, १९५६, पृ० ७

[८] बी, भट्टाचार्या: वाराणसी रिडिस्कवर्ड, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, १९९९, पृ०–२१४

[९] एच, आर, नेविल: बेनारस: ए गजेटियर, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर आफ द यूनाइटेड प्राविन्स आफ आगरा एण्ड अवध, वाल्युम २४, इलाहाबाद, १९०९, पृ०– २५२,२५४,२५५,

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि बनारस कुछ ही दिनो बाद मुस्लिम आधिपत्य सं स्वतत्र हो गया था, किन्तु यह स्वतत्रता स्थायी सिद्ध नही हुई। १२०६ ई० मे मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली सल्तनत का सुल्तान बना। यही से भारत मे सल्तनत कालीन शासन का प्रारम्भ होता है।

़ कोवंश

बनारस में १२०६ ई० से १२६० ई० तक प्रारम्भिक तुर्कीवंश के शासको का शासन था। इसके प्रारम्भिक अवधि में १२०६–१२१० ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक का शासन था। इस काल में बनारस का इक्तादार मुहम्मद बाकर था। अतः ऐसा ज्ञात होता है कि मुहम्मद बाकर के नाम से बनारस मे एक मुहल्ले का नाम बकराबाद पडा। इस काल में बनारस के हिन्दुओ पर प्रतिबध लगाये गये।[10] इसके बाद १२१० ई० मे इल्तुतमिश सुल्तान बना। इसके शासन काल में (१२१७–१८ ई०) अवध तथा बनारस एक बार स्वतंत्र होने का प्रयास किये लेकिन इल्तुतमिश ने इसे असफल कर दिया।[11] क्योंकि इसके शासन काल में ज्ञात होता है कि हिन्दू धर्मावलम्बियो का प्रभाव बढ़ गया था। क्योंकि गुजरात के प्रसिद्ध दानी वास्तुपाल द्वारा बनारस मे विश्वनाथ की पूजा के लिए एक लाख भेजने का उल्लेख मिलता है।[12] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि बनारस के हिन्दू अपने धार्मिक विश्वासों को बनाये रखने के लिए न केवल प्रयत्नशील थे, अपितु मन्दिरो का भी निर्माण कार्य करवाते रहे।[13]

इल्तुतमिश के शासन के पश्चात उसकी पुत्री रजिया शासिका बनी। उसने सन् १२३६–४० ई० तक शासन किया। इसके शासन काल के बारे मे ऐसा प्रतीत

---

[10] डॉ० मोतीचंद्र काशी का इतिहास, पूर्वोक्त पृ० १८१, तथा बनारस का गजेटियर, पृ०–४४,

[11] बनारस गजेटियर, पृ० ४५, तथा आदि तुर्क कालीन भारत (१२०६–१२६० ई०) S.A.A. Rizvi, अ० मु० वि० वि० अलीगढ, १९५६, पृ० ७, इ० एण्ड डा० भा. २, पृ० १८१, मिनहाज–१७०–१७१

[12] राजशेखर सूरि :प्रबन्ध कोश, सम्पादक, जिन विजय, शान्ति निकेतन, कलकत्ता १९३५, परिशिष्ट –१, पृ० १३२,

[13] वही,

होता है कि विश्वनाथ मन्दिर के बगल मे सुलतान रजिया की मस्जिद बनाई गई थी, जो अभी भी यथावत है।[१४] इस प्रकार इल्तुतमिश के दुर्बल उत्तराधिकारियो के बाद दिल्ली के गद्दी पर बलबन का सिहासनारूढ हुआ। गियासुद्दीन बलबन (सन् १२६५–१२८७ ई०) के शासन काल मे बनारस का प्रशासक हाजी इदरीस था। इसने बनारस में शिक्षा के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कार्य किये। हाजी इदरीस ने १२६६ ई० मे हज से लौटते समय शीराज (ईरान) से शेख सादी की प्रसिद्ध रचनाएँ, गुलिस्तां और बोस्ता अपने साथ बनारस लाये थे। इसके बाद बनारस मे और इस देश मे इन पुस्तको को पढ़ने में रूचि पैदा हुई, और फारसी की शिक्षा भी प्रदान की जाने लगी।[१५] इनके नाम पर ही बनारस मे एक मुहल्ले का नाम हाजीदारास पडा।[१६]

इस प्रकार बलबन की मृत्यु के बाद इसके उत्तराधिकारियो ने तुर्कीवश की सत्ता को बनाये रखने मे असफल रहे। परिणामत· चार वर्षो के अन्तराल में एक के बाद दूसरा शासक गद्‌दी पर बैठता रहा, तथा इन शासको के कार्यकाल के अन्तराल मे बनारस के इतिहास के विषय मे कुछ विशेष पता नही चलता।[१७] अंतत सेनापति जलालुद्दीन खिलजी ने सत्ता पर अधिकार कर लिया औ एक नए वंश का शासन प्रारम्भ हुआ।

खलजी वंश (१२९०–१३२० ई०)

इस वंश का सबसे महान सुल्तान अल्लाउद्दीन खलजी था। इसके शासन काल में बनारस का गर्वनर अजीजुद्दीन था।[१८] ऐसा प्रतीत होता है कि अल्लाउद्दीन खलजी के शासन काल में बनारस में निवास करने वाले हिन्दू धर्मावलम्बियों का धार्मिक विश्वास

---

[१४] पं कुबेरनाथ सुकुलः वाराणसी वैभव, पटना, १९७७, पृ० १३६,

[१५] इस्तियाक हुसैन : काशी का मुस्लिम समाज, सम्पादितः वैद्यनाथ सरस्वती, भोग–भोक्ष समभाव काशी का सामाजिक सांस्कृतिक स्वरूप, डी. के. प्रिष्ट वर्ड प्रा. लि. नई दिल्ली, प्रथम सस्करण, २०००, पृ० ५१,

[१६] बनारस गजेटियर, पृ०–४५,

[१७] डा. मोतीचन्द्र,: का इ. पूर्वोक्त, पृ० १८२,

[१८] बनारस का गजेटियर, पृ० ४५,

अटूट रहा, परिणाम स्वरूप मुस्लिम शासन सत्ता के रहते हुए भी यहाँ के लोग मदिरो के पुननिर्माण एवं नवनिर्माण को बनाये रखने मे प्रयासरत रहे।[19] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि १३वी शताब्दी ई० तक बनारस में कई मंदिरो का निमार्ण किया जा चुका था। इसका प्रमाण अलाउद्दीन खलजी (१२९६) के शासन काल के समय पद्म साधु द्वारा बनारस मे पद्मेश्वर नामक विशाल मंदिर का निर्माण और विरेश्वर नामक व्यक्ति द्वारा मणिकर्णकेश्वर नामक मदिर का निर्माण कराये जाने से मिलता है।[20] इसके अतिरिक्त उपरोक्त मदिर निर्माण की जानकारी हमे जौनपुर के लाल दरवाजा मस्जिद से मिले एक लेख से भी ज्ञात होती है।

तस्या[illegible]जः शुचिर्धीर पद्मसाधुरयं भुवि,

काश्यां [illegible] द्वारि [illegible]द्रिशिखरों पमं। पद्मोंभूरस्य देवस्य प्राकारमकरोत्सुधी,

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे द्वादश्याम्बुधवासरे।।

लिखते में स[illegible]याति प्रशस्तिं [illegible] संवत–१३५३।।

अर्थात् पद्मसाधु ने काशी विश्वनाथ मंदिर के सामने पद्मेश्वर का मन्दिर बनवाया। जबकि लाल दरवाजा मस्जिद १४४७ ई० में बनी। इससे ज्ञात होता है कि १२९६ ई० से १४४७ ई० तक पद्मेश्वर का मदिर बनारस मे बना रहा। बनारस से मिले एक अन्य लेख से भी ज्ञात होता है कि विरेश्वर नाम के व्यक्ति ने मणिकर्णकेश्वर नामक मंदिर की स्थापना संम्वत् १३५९ आषाढ़ बदि ११ भौमवार (मगलवार २४ जुलाई १३०२) को किया था।[21] १३वीं सदी में विश्वेश्वर का शिवायतन प्रसिद्ध था। एपिग्राफिया कर्नाटिका[22] से ज्ञात होता है कि कर्नाटक के होयसल राजा नृसिंह तृतीय ने १२७९ ई० में एक दानपत्र पर लिखा था, जिसमें उन्होंने एक ग्राम की आय (६४५

---

[19] ए. फ्यूहरर इ शर्की आर्किटेक्चर आफ जौनपुर, कलकत्ता, १८९६, पृ० ५१

[20] वही

[21] जनरल आफ द यूनाइटेड प्राविन्सेज हिस्टोरिकल सोसाइटी, लखनऊ, १९३६ वाल्युम ९, पृ० २१,

[22] इपिक्तापिया कर्नाटिका, रिकार्ड आफ द आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया, एच. लूडर्स (इडि.) कलकत्ता, १९१२, वाल्यूम १४, नं. २९८, पृ० ७१–७८,

निष्क) कर्णाटक, तिलंगाना, तुलू, तिरहुत, गौड़ इत्यादि के निवासियो को काशीयात्रा समय तुरुष्कदण्ड (जजिया) देने तथा विश्वेश्वर की सेवा के लिए दिया था। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि काशी के प्रधान शिव लिग के रूप मे उस समय विरेश्वर ही प्रसिद्ध थे।

तुगलक वंश (१३२०—१४१४ ई०)

इस वंश का प्रथम शासक गियासुद्दीन तुगलक (१३२०—१३२५ ई०) के शासन काल मे बनारस का प्रशासक जलालुद्दीन अहमद था, जिसने जलालुद्दीनपुरा मुहल्ला बसाया।[२३] इसके बाद इस वंश का दूसरा प्रसिद्ध शासक मुहम्मद बिन तुगलक (१३२५—१३५१ ई०) था। इसके काल मे बनारस की स्थिति का विवरण समकालीन स्रोतो मे नहीं प्राप्त होता है— लेकिन जैन सन्त जिनप्रभुसूरि के ग्रथ विविध तीर्थकल्प से तत्कालीन बनारस के विषय मे पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है।[२४] जिनप्रभु एक प्रसिद्ध श्वेताम्बर जैन आचार्य थे। मुहम्मद बिन तुगलक उनसे प्रभावित था। जिनप्रभु ने जैनतीर्थो की यात्रा की थी जिनमें काशी भी थी। बनारस के सम्बंध मे विविध तीर्थ कल्प मे उल्लेख है कि सुवर्ण रत्नो से समृद्ध उत्तरवाहिनी गगा से घिरी हुई बनारस नगरी में बड़े अद्भुत लोग रहते थे। विविध तीर्थ कल्प से तत्कालीन बनारस के समृद्ध होने का भी विवरण मिलता है।[२५]

इस प्रकार विभिन्न कलाओं में विख्यात कलाकार, विद्वान तथा तपस्वी यहॉ निवास करते थे। यहॉ धातुवाद, रसवाद, खन्यवाद तथा मंत्रविद्या में निपुण लोग यहॉ निवास करते थे। शब्दानुशासन, तर्क, नाटक, अलंकार और ज्योतिष के महान विद्वान यहॉ थे।[२६]

---

[२३] बनारस का गजेटियर, पृ० ४५

[२४] जिनप्रभुसूरि, विविधतीर्थ कल्प, सं. जिनविजय, कलकत्ता, १६३४, पृ० ७२—७३,

[२५] वही,

[२६] वही, पृ०—७२—७४,

अमृतलाल शास्त्री ने '१४वीं सदी का वाराणसी जैन ग्रन्थो मे' काशी के तत्कालीन इतिहास का विवरण प्रदान किया है।[२७] १४वीं शताब्दी के पाडदेव के कवि हस्तिमल्ल के "विक्रांत–कौरवम" नामक नाटक से उपलब्ध विवरण के आधार पर तत्कालीन बनारस की सामाजिक दशा पर प्रकाश पडता है। तदनुसार बनारस भारतवर्ष का अत्यंत प्राचीन नगर था। यह हिन्दू, जैन और बौद्ध, धर्मावलम्बियो का तीर्थ स्थान था। यहॉ के निवासी सादगी से जीवन व्यतीत करते थे। वे प्रायःगुणो को ही अपना आभूषण समझते थे। दान देकर धन का सदुपयोग करते थे। यहॉ सस्कृत विद्या का अच्छा प्रचार था।[२८]

इसके अतिरिक्त चुनार के संवत १३६० सन् (१३३३ ई०) के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि बनारस का शासक स्वामी राज का सहराज नामक मंत्री था जिसने मुहम्मद बिन तुगलक की सेवा ग्रहण करके लगभग स्वायत्त शासक के रूप में एक सैन्य गवर्नर के विभिन्न अधिकारों को प्राप्त कर लिया था।[२९]

सहराज ने मालिक शिहाबुद्दीन के नेतृत्व में बनारस के राजा स्वामीराज पर आक्रमण करने के लिये एक सेना भेजी। स्वामीराज पराजित हुआ और भेट देकर वह किले से बाहर भाग जाने मे सफल हुआ। कुछ समय पश्चात उसने शत्रु पर आक्रमण किया, किन्तु फिर पराजित हुआ। तब उसने माता अन्नपूर्णा से प्रार्थना की, उसे आर्शीवाद प्राप्त हुआ और वह बिना कठिनाई से राज्य करने लगा।[३०] उसका राज्य ५ अगस्त १३३३ ई० को मलिक शिहाबुद्दीन के आधिपत्य से मुक्त हो गया। इस शिला लेख में १४वीं सदी के बनारस के तीन शासकों के नाम क्रमशः मिलते हैः–

---

[२७] श्री अमृतलाल शास्त्रीः चौदहवी सदी का भारत जैन ग्रन्थों में, सम्पादित, विश्वनाथ मुखर्जी, 'यह वाराणसी है', वाराणसी, १९७८, पृ० २०–२६,

[२८] वणिजों जित्वरी माहुः सत्य वाराणसी पमिमाम्। पदेनया व्यजयिन्त विश्वान्य नगरश्रिय.।। विक्रान्त कौरवम, अंक–३, पृ० ४५,

[२९] द जनरल आफ द एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता, १८३६, वाल्यूम ५, पृ० ३४२–४३, शिलालेख परिशिष्ट–२ में दिया गया है

[३०] वही,

१ सेवक, २ चन्द्रगन जिसे विश्वेश पुरपालक अर्थात बनारस का रक्षक कहा गया है।

२ स्वामी राजचन्द्रगन का छोटा भाई (अनुजस्तस्य)।[31]

किन्तु अन्य किसी वृत्तान्त अथवा इतिहास मे इन राजाओ के नामो का कोई उल्लेख नही है। अन्य किसी प्रमाण के उपलब्ध न होने से यह निष्कर्ष निकालना भी उचित नही होगा कि सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने अथवा उसके हिन्दू मत्री सहराज ने शिहाबुद्दीन को बनारस पर आक्रमण करने के लिए भेजा था। यह अवश्य है कि मुहम्मद बिन तुगलक के समय मे शिहाबुद्दीन नाम का एक सिपह–सालार था। तारीखे फरिश्ता के अनुसार मुहम्मद तुगलक ने इसे मलिक इफ्तिखार की उपाधि तथा नौसारी की जागीर प्रदान की थी। इसी व्यक्ति को सन् १३४२ ई० में नुसरत खॉ की उपाधि देकर बेदर का इक्तादार बनाया गया था।[32]

फिराजशाह तुगलक (१३५१–१३८८ ई०)

दिल्ली के सुल्तानों मे यह पहला सुल्तान था, जिसने इस्लाम के कानून और उलेमा वर्ग को राज्य के प्रशासन मे प्रधानता दी। फिरोज शाह तुगलक के अतिरिक्त अन्य शासको ने भी इस्लाम धर्म का समर्थन किया और अपनी बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा के प्रति असहिष्णुता की नीति अपनायी परन्तु उन्होंने उसे स्पष्ट रूप से शासन के सिद्धान्त रूप में स्वीकार नहीं किया था।[33] वह पहला सुल्तान था जिसने हिन्दू ब्राह्मणों पर जजिया कर लगाया था। इस कर के विरोध मे ब्राह्मणों ने सुल्तान के महल के सामने आत्महत्या करने की धमकी भी दी थी।[34] लेकिन उसके बावजूद फिरोज शाह तुगलक ने इस कर से ब्राह्मणों को मुक्त नहीं किया। फुतहाते फिरोज

---

[31] पूर्वोद्धत,

[32] वही,

[33] आगा मेहदी हुसेनः तुगलक डायनेस्टी, कलकत्ता, १९६८, पृ० ४२६,

[34] वही

शाही मे फिरोज ने लिखा है कि "मैंने अपनी काफिर प्रजा को पैगम्बर का धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया और यह घोषणा की कि जो भी अपने धर्म को छोडकर मुस्लिम बन जायेगाा उसे जजिया कर से मुक्त कर दिया जायेगा।" अनेक स्थलो पर उसने हिन्दू मन्दिरो को नष्ट करने, हिन्दू मेलो को भग करने, हिन्दुओं को मुसलमान बनाने अथवा उनका वध करने का वर्णन किया है।[३५] डॉ० मोतीचन्द्र का विचार है कि ब्राह्मणो के भूखे रहकर सुल्तान के महल पर धरना देने का प्रभाव सुल्तान पर तो नहीं पडा। लेकिन हिन्दुओं पर इसका प्रभाव अवश्य पड़ा और उन्होने ब्राह्मणो पर लगी जजिया कर का भार भी उठाया। इसी प्रकार का विचार हमे उज्जले हेग के इतिहास मे भी मिलता है।[३६]

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि फिरोज शाह तुगलक ने बनारस मे मन्दिर को तोडकर एक मस्जिद का निर्माण किया, जिसका नाम बकरिया कुण्ड मस्जिद है।[३७] शेरिंग का कथन है कि कुण्ड के उत्तर–पार्श्व मे एक ऊँचा टीला था, उस पर प्रस्तर की भग्न प्रतिमा और कलश आदि मिले हैं। यह सब सामग्री एक बौद्ध मठ के ध्वंसावशेष हैं। कुण्ड के पूर्व ओर भी इष्टक का एक बृहद स्तूप है। स्तूप के पूर्व की ओर योगी वीर नामक स्थान है। यहीं पर किसी योगी ने समाधि ली थी। कुण्ड के दक्षिण पश्चिम मे एक दरगाह है। वह भी प्राचीन भित्ती पर स्थापित है। दरगाह के पूर्व की ओर २५X१३ हाथ की तीन पक्ति पाषाण स्तम्भ पर स्थापित एक छोटी सी मस्जिद है। यह मस्जिद भी पुरानी है। उसकी बनावट को देखने से ज्ञात होता है कि बौद्धों के मठों के प्राचीरों पर ही बनायी गयी है। यहाँ पर १३७४ ई० की फीरोज शाह तुगलक की शिला लिपी है।[३८]

---

[३५] आगा मेंहदी हुसेनः तुगलक डायनेस्टी, कलकत्ता, १६६८, पृ० ४२६,

[३६] उल्जले हेगः द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, तृतीय भाग, कैम्ब्रिज १६२८,पृ० १८८,

[३७] जनरल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, भाग २४ एवं ४२, कलकत्ता, १८५५, १८७३ पृ० १६३

[३८] एम. ए. शेरिंगः द सेक्रेड सीटी आफ द हिन्दूज, लन्दन, ट्रबनर एण्ड कं, पृ० २७१, ८७,

शेरिंग का अनुमान है कि ह्वेनसाग ने जिन ३० बौद्ध विहारो का उल्लेख किया है उनमे से कुछ कुण्ड के किनारे बने हुए थे। इनमे से अनेक के चिन्ह आज भी मिलते है। पुरातात्विक अभिलेखो के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि इनका निर्माण गुप्त युग मे हुआ था। अत ज्ञात होता है कि फिरोज तुगलक ने इस ऐतिहासिक मन्दिर को तोडा था।[३९]

ऐसा प्रतीत होता है कि फिरोज शाह तुगलक के शासन काल मे ही बगाल के शासक हाजी इलियास द्वारा किये गये आकमण और बनारस की लूट का वर्णन मिलता है। बंगाल के शासक हाजी इलियास ने अपनी सीमाओं का विस्तार करने के लिए तिरहुत और बहराइच पर आकमण किया था। इस अभियान मे वह बनारस भी आया था।[४०]

शर्कीवंश

बनारस के उत्तर–पश्चिम में ३४ मील दूर जौनपुर नगर के निर्माण मे फिरोजशाह तुगलक ने विशेष रूचि दर्शायी। इस प्रकार नगर के रूप में जौनपुर सुलतान फिरोजशाह तुगलक द्वारा स्थापित किया जा चुका था, परन्तु राज्य के रूप मे इसे स्थापित करने का कार्य फिरोज तुगलक के एक हिजड़े (ख्वाजा सरा)मलिक सरवर ने किया।

इस प्रकार यह राज्य शर्कीराज वंश के नाम से प्रसिद्ध था। जिसने लगभग ७५ वर्ष तक स्वतंत्र सत्ता बनाये रखी। इसी समय १३६४ ई० से १४७६ ई० तक बनारस जौनपुर के शर्की सुलतानों के अधीन रही।[४१] यही से बनारस के इतिहास का

---

[३९] पूर्वोद्धत,

[४०] सीरते फीराजशाही, १५–ए, १७–बी, तथा जेमिनी मोहन बनर्जी हिस्ट्री आफ फिराजशाह तुगलक, देहली, १६६७, पृ २६

[४१] सैय्यद एकबाल अहमद जौनपुरी, शर्की जाज्य जौनपुर का इतिहास, प्रकाशन, जौनपुर, १६६८ पृ ११४

एक नया अध्याय आरम्भ होता है। फिरोजशाह तुगलक के शासन काल मे जौनपुर को विशेष स्थान प्राप्त हो गया जिससे बनारस का इक्तादार अब जौनपुर मे रहने लगा तथा बनारस का ऐतिहासिक, राजनीतिक महत्व जो जौनपुर के स्वतत्र होने के पहले था, सीमित हो गया। इस समय बनारस का शासक सैय्यद जियाउद्दीन था।[४२]

मलिक सरवर सुलतान–उश्शर्क (१३६४ से १३६६)

सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने मलिक सरवर ख्वाजा सरा, जिसे सुल्तान महमूद शाह, ख्वाजा–ए–जहा की उपाधि प्रदान की थी।[४३] को सुल्तानुश्शर्क की उपाधि से विभूषित कर जौनपुर मे प्रशासन करने के लिए भेजा।[४४] समकालीन अभिलेखों मे उसके आरम्भिक जीवन का कोई उल्लेख नही मिलता परन्तु समकालीन इतिहासकार अफीफ ने उसे शाही "जवाहर खाने" का अधीक्षक बताया है।[४५] मुहम्मद विहामिद खानी उसे फिरोज शाह के शासन काल मे "शहनाए शहर" बताया है।[४६] परन्तु फिरोजशाह तुगलक के शासन काल मे उसका ठीक स्थान निर्धारित नही हो सका है। फिरोजशाह की मृत्यु के पश्चात उत्तराधिकार के संघर्ष मे उसने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

सुलतान अबूवक्र शाह के समय तक मलिक सरवर "शहनाए शहर" बना रहा।[४७] उसे सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के छोटे पुत्र मुहम्मद शाह तुगलक से सहानुभूति थी जिसे फिरोजशाह ने अपने जीवन काल मे ही सुल्तान की उपाधि सहित समस्त शासन का प्रमुख बना दिया।[४८]

---

[४२] पूर्वोद्धत,
[४३] तबकाते अकबरी, पृ० २७३ तथा, बनारस गजेतियर, पृ० ४६
[४४] वही।
[४५] अफीफ, पृ० १४८, ४६
[४६] तारीखे मुहम्मदी, रोटोग्राफ, पृ० ४१६ बी
[४७] तारीखे मुबारक शाही, पृ० १४६
[४८] वही, पृ० १३८, १३६

इस प्रकार ऐसा ज्ञात होता है कि जौनपुर व उसके निकटवर्ती प्रदेशो मे विप्लव के चिन्ह उभरने लगे तब सुल्तान महमूद ने उस क्षेत्र मे शान्ति स्थापित करने के लिए मलिक सरवर को चुना। रजब ७६६ / मई १३६४ ई० को मलिक सरवर जौनपुर का गवर्नर नियुक्त किया गया तथा सुल्तानुश्शर्क की विरूद धारण की, जो उसे पहले सुल्तान मुहम्मद से प्राप्त हुआ था पुन· सुल्तान महमूद द्वारा पुष्टि की गयी।[४९]

अत पॉच वर्ष व छ मास के शासन के पश्चात नवम्बर १३६६ ई० में मलिक सरवर का निधन हो गया।[५०] मलिक सरवर की मृत्यु के बाद उसका दत्तक पुत्र मलिक मुबारक करनपाल अमीरो और मलिको के समर्थन से सिहासन पर बैठाया गया।[५१] वह सैय्यद वश के सस्थापक खिज्र खॉ का भतीजा था।[५२] इसने मुबारक शाह की उपाधि धारण की। सिहासनारोहण के तुरन्त बाद उसे दिल्ली के एक आक्रमण का सामना करना पड़ा। दिल्ली के सुल्तान नुसरत शाह को सिहासनाच्युत करने के बाद जब मल्लू इकबाल खॉं को यह ज्ञात हुआ कि करनपाल ने मुबारक शाह की उपाधि धारण कर ली है तो उसने १४०० ई० मे जौनपुर पर अधिकार करने के लिए अपने सैनिकों के साथ कूच किया।[५३]

जब वह आबेसिपाह (काली नदी) के किनारे पहुँचा तो उस प्रदेश के जमीदारो ने उसे ललकारा और उसका विरोध किया किन्तु वे पराजित हुए और इटावा तक उनका पीछा किया गया।[५४] इसके बाद मल्लू इकबाल खॉ कन्नौज की ओर बढ़ गया

---

[४९] पौंगसन, हिस्ट्री आफ जौनपुर, पृ० ८ तथा तबकाते अकबरी, पृ० २७३ तथा तारीखे फरिश्ता (सातवां मकाला) पृ० ३०४ तथा तारिखे मुहम्मदी, पृ० ४२६

[५०] तारीखे मुबारक शाही, पृ० १५६

[५१] तबकाते अकबरी, पृ० २७४, तथा तारीखे मुबारक शाही, पृ० १६६

[५२] तबकाते अकबरी, पृ० १८१, १८२

[५३] तबकाते अकबरी, पृ० २७४

[५४] तारीखे मुबारक शाही, पृ० १६६

और गगा नदी के किनारे डेरा डाला।[55] मुबारक शाह शर्की राजपूतो, अफगानो, मगोलो व ताजिकों की एक विशाल सेना सहित तीव्रगति से आगे बढा तथा मल्लू को आगे बढने से रोका और गगा के दूसरे किनारे पर अपना डेरा लगाया।[56] दो मास तक दोनों सेनाये दोनो किनारो पर डटी रही। अन्त मे दोनों ने अभियान त्याग दिया।[57] इसके कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

इब्राहिम शाह शर्की (१४०१–१४४० ई०) : सुल्तान मुबारक शाह शर्की की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई सुल्तान इब्राहिम शाह शर्की की उपाधि धारण कर सिहासन पर बैठा। इसके समय मे बनारस का गवर्नर मुहम्मद खालिस था।[58] इस प्रकार ऐसा ज्ञात होता हैं कि इसी समय बनारस में एक प्रसिद्ध मुस्लिम संत मकदुम अशरफ जहॉगीर सीमानी भी था।[59] इब्राहिम शाह शर्की के योग्यता के कारण राज्य में शान्ति स्थापित हुई, तथा आमिल (मुस्लिम विद्वान) तथा सम्मानित व्यक्ति जो देश की अव्यवस्था के कारण कष्ट में थे, जौनपुर जो कि दारूल अमान (शान्ति का घर) था, पहुँच गये।[60] यह राजधानी आमिलो के चरणो के आशीर्वाद से दारूल उलूम (विद्या का केन्द्र) बन गयी।[61] उसके नाम पर अनेक पुस्तको तथा पत्रिकाओ की रचना हुई।[62] उदाहरणार्थ हाशये हिन्दी, बहरूल मव्वाज, फतवाये इब्राहिम शाही, इरशाद आदि।[63] बुद्धिमान अमीर एवं वजीर उसके दौलत खाने मे एकत्र हुए और उसके दरबार को इरानी सुल्तानो के दरबार के समान सम्मान प्राप्त हो गयी।[64]

---

[55] तबकाते अकबरी, पृ० २७४ तथा तारीखे मुबारक शाही, पृ० १७०
[56] दो गुलशन–ए–इब्राहिमी, पृ० ३०४, तथा तारीखे मुबारक शाही, पृ० १७०
[57] वही, पृ० ३०५
[58] बनारस का गजेटियर, पृ० ४६
[59] वही
[60] तबकाते अकबरी, पृ० २७५ तथा गुलशन–ए–इब्राहिमी, पृ० ३०५
[61] वही,
[62] वही
[63] वही
[64] गुलशने इब्राहिमी, पृ० ३०५

इब्राहिम शाह शर्की की मृत्यु के बाद उसका सबसे बडा पुत्र महमूद शाह शर्की १४४० ई० मे सिहासन पर बैठा।[६५] आसारे बनारस से ज्ञात होता है कि महमूद शाह शर्की ने बनारस की एक महिला राज बीबी से विवाह किया था, जो सैयद तालिब अली उर्फ ताल्हन की पुत्री थी। सैयद ताल्हन एक बार राजा जय चन्द्र की ओर से बनारस का शासक रहा था। किन्तु यदि ताल्हन राजा जयचन्द्र की ओर से बनारस का शासक था तो फिर राजबीबी का उसकी पुत्री होना तथा महमूद शाह शर्की से विवाह करना ऐतिहासिक दृष्टिकोण से त्रुटिपूर्ण हो जाता है।[६६] वास्तव में राजबीबी दिल्ली के सैयद सुल्तान मुहम्मदशाह की बहन थी।[६७]

महमूद शाह शर्की ने गुलाम अम्बिया को अपने शासन काल मे बनारस का हाकिम बनाकर भेजा था। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि गुलाम अम्बिया ने बनारस मे एक बाजार अपने नाम पर 'अम्बिया मण्डी' बनवाई।[६८] महमूद शाह शर्की के नाम से रेशमी वस्त्रों मे एक नवीन ढग का कपड़ा बनने लगा था। जो महमूदी के नाम से अब भी कही–कहीं प्रसिद्ध है।[६९] इस प्रकार ऐसा ज्ञात होता है कि राजबीबी की एक सहेली फीरोज खानम थी जिसे एक मलका नामक महिला ने उसे गुलबदन की पदवी दी। वह बहुत योग्य थी, तथा उसके नाम से भी बनारस में रेशमी वस्त्र मिलने लगा। इसके अतिरिक्त राजबीबी द्वारा बनारस चौक के पास एक मस्जिद के निर्माण कराये जाने का भी प्रमाण मिलता है।[७०]

महमूदशाह शर्की के समय बनारस के पद्‌मेश्वर मन्दिर को तोड़ने तथा जौनपुर की लाल दरवाजा मस्जिद १४४७ ई० मे बनवाये जाने का वर्णन मिलता है। इसका

---

[६५] बनारस गजेटियर पृ० ४६ तथा तबकाते अकबरी, पृ० २७६ तथा गुल्शने इब्राहिमी, पृ० ३०७
[६६] मौलवी अब्दुस्सलाम नोमानी, आसारे बनारस, (उर्दू) वाराणसी, पृ० १६
[६७] किशोरी शरन लाल, टवालाइट आफ दि सल्तनत, बम्बई, १६६३ पृ० १३८
[६८] बनारस गजेटियर, पृ० ४६
[६९] सैयद एकबाल अहमद जौनपुरी, पूर्वोक्त, पृ० १६८
[७०] वही, तथा बनारस गजेटियर, पृ० ४६

प्रमाण बनारस के पद्मेश्वर के १२६६ ई० के लेख के मिलने से यह पता चलता है कि १४४७ ई० के आसपास ही बनारस का यह मन्दिर टूटा था।[७१]

सुल्तान महमूद शाह शर्की की मृत्यु के पश्चात उसकी पत्नी बीबी राज ने जौनपुर दरबार के अमीरो तथा उच्च अधिकारियो के परामर्श से शाहजादा भीकन को सुल्तान महमूद शाह की उपाधि देकर सिहासनारूढ़ किया।[७२] ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्गीय सुल्तान महमूद शाह शर्की की भी यही इच्छा थी क्योकि उसने अपनी मृत्यु के दो वर्ष के पूर्व ही अपने पुत्र भीकन के नाम से सिक्के प्रचलित कर दिये थे।[७३] सिहासनारोहण के समय ही सुल्तान महमूद शाह शर्की की माता बीबी राजी ने दिल्ली के सुल्तान बहलोल लोदी से सन्धि कर यह प्रतिज्ञा करवा ली थी कि "शाह महमूद शर्की का राज्य मुहम्मद शाह शर्की के अधिकार मे रहे और जो भाग सुल्तान बहलोल लोदी के अधिकार में है, वह उसी के अधिकार में रहे।[७४] इससे यह ज्ञात होता है कि इसके भी शासन काल मे बनारस का शासक अम्बिया था, जो बनारस में शान्ति व्यवस्था कायम रखी।[७५]

सुल्तान मुहम्मद शाह शर्की की मृत्यु के पश्चात सुल्तान हुसैन शाह शर्की १४५८ ई० में गद्दी पर बैठा इसका प्रमुख समस्या के रूप में दिल्ली का सुल्तान बहलोल लोदी अभी मौजूद था। सुल्तान हुसैन शाह शर्की ने उससे सन्धि की तथा दोनों सुल्तानों ने चार वर्षों तक युद्ध न करने का निश्चय किया।[७६]

---

[७१] बनारस गजेटियर, पृ० ४६ तथा ए फुहरर द शर्की आर्किटेक्चर आफ जौनपुर, कलकत्ता, १८६६, पृ० ५१

[७२] तारीखे फरिश्ता पृ० ३०८

[७३] नेल्सन राइट, कैटलाग आफ क्वायस इन दि इडियन म्यूजियम (आक्सफोर्ड १९०७) भाग २, पृ० २०७

[७४] तारीखे फरीश्ता, पृ० ३०८

[७५] बनारस गजेटियर, पृ० ४६

[७६] तारीखे फरिश्ता, पृ० ३०६

हुसैन शाह शर्की के शासन काल में बनारस का फौजदार गुलाम अमीन था, जिसके नाम पर अमीनाबाद मण्डी अभी भी बसी है।[७७]

बनारस के किले का निर्माण

तारीखे फरिश्ता से ज्ञात होता है कि १४६५–६६ ई० मे हुसैन शाह शर्की ने बनारस के दुर्ग की मरम्मत करवायी तथा वहाँ दुर्ग में रक्षक सेना भी नियुक्त किया।[७८] निजामुद्दीन अहमद द्वारा रचित तबकाते अकबरी में भी इसी प्रकार का विवरण मिलता है। बनारस का किला जो काल चक्र के कारण नष्ट हो गया था, उसकी मरम्मत करायी गयी।[७९]

लोदी वंश

दिल्ली मे लोदी वश की स्थापना के साथ ही दिल्ली और जौनपुर के मध्य सत्ता सघर्ष आरम्भ हो गया। लोदी वश के सस्थापक बहलोल लोदी ने एक लम्बे सघर्ष के बाद १४७६ ई० मे जौनपुर पर अधिकार कर लिया। जौनपुर का शासक हुसैन शाह शर्की पराजित होकर बिहार भाग गया। बहलोल लोदी ने अपने पुत्र बरबक शाह को जौनपुर का गवर्नर नियुक्त किया।[८०] इस प्रकार १४७६ ई० मे जौनपुर से शर्की राज्य वश का अन्त हुआ और बनारस पर केन्द्रीय शासन सत्ता (लोदी वंश) की स्थापना हुई।[८१]

सिकन्दर लोदी (१४८९–१५१७) के समय जौनपुर पुनः आन्तरिक कलह का केन्द्र बन गया। सिकन्दर लोदी ने अपने बड़े भाई जौनपुर के शासक बरबक शाह से केवल यह मॉग की कि वह उसकी आधीनता को स्वीकार कर ले, जिससे राज्य का विभाजन न हो किन्तु उसके इन्कार करने पर सिकन्दर ने जौनपुर पर अपना

---

[७७] बनारस गजेटियर पृ० ४६

[७८] अत्तहर अब्बास रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, अलीगढ, १९५९, भाग २, पृ० १०

[७९] वही

[८०] बैनहार्ड डौर्न, मखजाने–ए–अफगानी (अग्रेजी अनुवाद), कलकत्ता, १९१३, पहली जिल्द, पृ० ५४

[८१] वही

अधिकार स्थापित कर लिया। इसके पश्चात दूसरा सघर्ष हुसैनशाह शर्की से हुआ। हुसैन शाह शर्की ने भटगोरा (रीवा) के राजा भेदचन्द्र की सहायता से जौनपुर पर पुन अधिकार करने का प्रयास किया, किन्तु इसमें उसे सफलता प्राप्त नही हुई। राजा भेदचन्द्र भी अपने राज्य की सीमाओ को प्रयाग से बनारस तक बढाना चाहता था।[८२] किन्तु सिकन्दर लोदी के सुदृढ़ शासन के रहते यह सम्भव नही था। इसलिए उसने हुसैन शाह शर्की को सहायता प्रदान की। हुसैन शाह शर्की कटघर (रायबरेली जिला) के युद्ध मे पराजित होकर बिहार चला गया। परिणामत· राजा भेदचन्द्र की इच्छा पूर्ण न हो सकी। कुछ समय पश्चात वह सिकन्दर लोदी की सेना द्वारा पराजित हुआ और सरगुजा की ओर भाग गया, जहॉ उसकी मृत्यु हो गयी।[८३]

राजा भेदचन्द्र के सिंहासन के दो दावेदार थे –

१ राजा लक्ष्मी चन्द्र (भेद चन्द्र का पुत्र) जो हुसैन शाह शर्की का समर्थक था।

२ राजा शालिवाहन (भेदचन्द्र का भाई) जिसे सिकन्दर लोदी ने अपनी ओर से मिला लिया था। इस प्रकार लक्ष्मी चन्द्र ने हुसैन शाह शर्की को पुन· आकमण के लिए प्रोत्साहित किया।[८४]

इस प्रकार सन् १४६५ ई० मे हुसैन शाह शर्की और सिकन्दर लोदी की सेनाएं बनारस के निकट आकर युद्ध के लिए तैयार हो गयी। हुसैन शाह शर्की का साथ राजा लक्ष्मी चन्द्र दे रहे थे, और राजा शालिवाहन सिकन्दर के साथ था। इस युद्ध में हुसैनशाह शर्की पराजित हुआ और बिहार की ओर भाग गया।[८५]

---

[८२] ए०बी० पाण्डेय, दि फर्स्ट अफगान इम्पायर इन इण्डिया, कलकत्ता, १६५६, पृ० १२२

[८३] वही, पृ० १२२

[८४] सैयद अतहर अब्बास रिजवी, उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग २, अलीगढ वि० वि० १२५६ पृ० २१४

[८५] वही, पृ० २१४

चूँकि सिकन्दर लोदी उसे समाप्त करना चाहता था, इसलिए उसने बिहार मे भी हुसैन शाह शर्की का पीछा किया। वहाँ से भागकर हुसैनशाह शर्की बगाल पहुँचा किन्तु वहाँ के शासक हुसैनशाह ने उसे सहायता प्रदान नही किया। कुछ समय पश्चात १५०० ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी। डा० मोतीचन्द्र लिखते है कि "सिकन्दर लोदी कट्टर मुस्लिम शासक था। मुस्लिम इतिहासकार उसे कट्टर गाजी मानते थे।"[८६]

इस प्रकार सल्तनत कालीन बनारस की राजनीतिक स्थिति में भी बनारस के हिन्दू और मुस्लिम आपसी साम्यता बनाये रखे।

---

[८६] डा० मोतीचन्द्र का इतिहास, पूर्वोक्त पृ० १८८

मुगल कालीन बनारस (द्वितीय खण्ड)

(१५२६ ई० से १७६१ ई० तक)

मुगल वंश के संस्थापक बाबर ने पानीपत के प्रथम युद्ध मे (अप्रैल १५२६ ई०) इब्राहिम लोदी के हार के उपरान्त अफगान सरदारों ने मिलकर दरिया खॉ लोदी के पुत्र बहादुर खॉ को अपना नेता चुना और उसे सुल्तान मुहम्मद की पदवी देकर भारत का शासक घोषित कर दिया।[1] इब्राहिम लोदी की मृत्यु का समाचार मिलते ही वे सब कन्नौज से आगरा की तरफ बढे। अफगानो का मुख्य उद्देश्य केन्द्रीय सत्ता को शक्तिहीन बना देना था। उनके नेता मुहम्मद नोहानी ने ५०,००० सैनिको को एकत्र किया और जौनपुर से लेकर कन्नौज तक का सम्पूर्ण प्रदेश अपने अधिकार मे कर लिया। हुमायूॅ ने पूर्व की ओर बढते हुए अफगानों के संकट का सामना करने की योजना बनाई। बाबर ने उसे स्वीकृति प्रदान की।[2] बाबर ने अहमद कासिम, महदी ख्वाजा तथा मुहम्मद सुल्तान मिर्जा को हुमायूॅ की सहायता करने का आदेश दिया।[3] अतः बाबर के आदेश पर हुमायूॅ ने आगरा से वृहस्पतिवार, १३ जीकाद, ९३४ हिजरी; २१ अगस्त १५२६ ई० को पस्थान किया। इस समय अफगान जाजमऊ के निकट पड़ाव डाले हुए थे। लेकिन जब मुगल सेनाओ के आगमन की सूचना मिली तो वे वहॉ से भाग गये। हुमायूॅ ने जाजमऊ को अपने अधिकार मे कर लिया, और शत्रुओं का पीछा करते हुए हुमायूॅ जौनपुर पहॅुचा। वहॉ उसने अफगानों को पराजित किया और जौनपुर को अपने अधिकार में कर लिया। इसके पश्चात हुमायूॅ गाजीपुर की और बढ़ा, हुमायूॅ के बढ़ने की सूचना पाते ही गाजीपुर के गर्वनर ने अन्य

---

[1] बाबरनामा, भाग १, (अनुवाद श्रीमती ए. एस. बेब्रिज) लन्दन, १९२१, पृ० ५३०, एस. ए. ए. रिजी, 'मुगल कालीन भारत' (बाबर) अ० वि० वि० अलीगढ, १९६०, पृ० २१०, अहमद यादगार के अनुसार मिर्जा कामरानको अमीर कुली बेग के साथ अफगान के विद्रोहियों को दबाने के लिए भेजा गया "तारीखे सलातीने अफगाना" रिजवी, मुगलकालीन भारत (बाबर), पृ० ४५५

[2] वही,

[3] बाबरनामा, भाग–१, पूर्वोक्त, पृ० ५३१, रिजवी (मुगलकालीन भारत) (बाबर), पृ० २११

अफगान अमीरों के साथ सरयू नदी को पार किया और बलिया मे शरण ली। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि हुमायूँ ने गाजीपुर से बलिया तक का प्रदश अपने अधिकार मे कर लिया।[४] अभी हुमायूँ जौनपुर में ही था कि उसे अपने पिता के आदेश प्राप्त हुए कि वह शीघ्र से शीघ्र आगरा लौट आये।[५] इस प्रकार आगरा वापस होने से पूर्व हुमायूँ ने पूर्वी क्षेत्रो मे मुगलो के अधीन प्रदेशो को सुरक्षित करने का प्रबन्ध अपने पिता के आदेशानुसार किया। उसने शाह मीर हुसैन तथा जुनैद बरलास को जौनपुर का संयुक्त गर्वनर नियुक्त किया तथा फिरोज खान सारंग खानी, महमूद खान, काजी अब्दुल जब्बार आदि व्यक्तियों को आदेश दिया कि वे मुगलो के अधीन प्रदेशो को अफगानो से रक्षा करे।[६]

इस प्रकार १५२७ ई० मे हुमायूँ ने पूर्वी प्रदेशो पर अधिकार कर बनारस को भी बाबर के साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। लेकिन हुमायूँ के आगरा लौटते ही अफगानों ने मुगल सिपाहियों को बनारस से बाहर कर दिया। परिणामत. १५२८ ई० में बाबर को पुनः इस नगर पर विजय प्राप्त करने की योजना बनाई और २० जनवरी १५२६ ई० को बाबर ने आगरा से पूर्व की ओर प्रस्थान किया।[७] २६ जनवरी १५२६ ई० को बाबर को ज्ञात हुआ कि सुल्तान महमूद लोदी ने १०,००० अफगान एकत्र कर लिया है और उसने मुगल सेनाओं पर बनारस और चन्देरी की ओर से आक्रमण करने की योजना बना रहा है।[८] उसने शेख वायजीद तथा बिबन को एक विशाल सेना के साथ रखर (गोरखपुर) की ओर भेज दिया है, और स्वयं वह फतह खान सरवानी के

---

[४] बाबरनामा,भाग–२, (अनुवाद, श्रीमती ए० एस० बेब्रिज), १६२१, पृ० ५४४, रिजवी, 'मुगलकालीन भारत' (बाबर) पृ० २३३–३४

[५] बाबरनामा, भाग–२, पूर्वोक्त, पृ० ५४४; अकबरनामा (अनुवाद– एच० बेब्रिज), कलकत्ता, १६१२, भाग–२, पृ० २५७,

[६] बाबरनामा, भाग–२ पूर्वोक्त, पृ० ४५४, अकबरनामा, भाग–१, पृ० १०५, रिजवी, मुगलकालीन भारत, (बाबर) पृ० २२४

[७] वही, पृ० ६४०

[८] वही, पृ० ६५१, रिजवी, मुगलकालीन भारत (बाबर) पृ ३०६,

साथ नदी के किनारे–किनारे चुनार की ओर बढ़ रहा है। शेर खॉ सूर जो मुगलों के साथ था, वह भी विद्रोही अफगानों के साथ मिल गया, और उसने गगा नदी को पार कर लिया है तथा वह भी बनारस की ओर बढने लगा।[९]

कुछ ही समय पश्चात बाबर को यह भी सूचना मिली कि शेर खॉ ने मुगलो द्वारा नियुक्त प्रशासक जलालुद्दीन शर्की तथा उसके अफसरो को बनारस से भगा दिया है और बनारस को अपने हाथो मे ले लिया है तथा स्वय सुल्तान महमूद से युद्ध करने के लिए नदी के किनारे–किनारे जा रहा है।[१०] इस उपरोक्त घटना से ऐसा प्रतीत होता है कि शत्रु की गतिविधियो पर ध्यान रखते हुए तथा उसकी योजना को देखकर बाबर ने सतर्कता पूर्वक आगे बढने का निश्चय किया। बाबर तथा अस्करी की सेनाएँ नदी के दोनों तटो पर साथ–साथ बढ़ रही थी। अतः १ मार्च १५२६ ई० को दुगदुगी से चलकर वह कड़ा पहुॅचा, जहॉ अगले तीन चार दिनों तक सुल्तान जलालुद्दीन शर्की ने उसका आतिथ्य सत्कार किया। कर्डा मे रूककर बाबर ने शत्रु के बारे मे जानकारी प्रप्त की। ५ मार्च १५२६ ई० को सुल्तान महमूद बख्शी ने उसे सूचित किया कि सुल्तान महमूद की सेनाओ ने पहले चुनार पर आक्रमण किया, किन्तु दुर्ग को जीतने में उन्हें तनिक भी सफलता नही मिली है, और उसकी सेना तितर–बितर हो गई है।[११]

सुल्तान मुहम्मद बख्शी ने बाबर को यह भी बताया कि जिस समय अफगान बनारस के निकट गंगा नदी को पार कर रहे थे, उनकी अनेक नौकाएं गंगा नदी में डूब गयी और बहुत से आदमी भी डूब गए।[१२] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि ५ मार्च १५२६ को बनारस पुनः बाबर के अधिकार में आ गया। कुछ अफगान सरदारों ने बाबर को आत्म समर्पण के लिए पत्र लिखा, इससे क्रुद्ध होकर बाबर ने अफगान

---

[९] बाबरनामा (अनुवाद) भाग–२, पूर्वोक्त पृ० ६५२,

[१०] वही, पृ० ६५२

[११] वही, पृ० ६५३, रिजवी, मुगलकालीन भारत (बाबर) पृ० ३११,

[१२] वही, पृ० ६५२, वही, पृ० ३११,

सरदारो का दमन करने के लिए चुनार से नदी द्वारा गाजीपुर और बिहार की ओर कूच कर दिया। बाबर ने इन प्रदेशो को जीतने के बाद अपना प्रभुत्व तो स्थापित किया, किन्तु इन प्रदेशो के शासन का उत्तरदायित्व स्थानीय सरदारों को ही सौंप दिया। बाबर ने स्थानीय सरदारो को असन्तुष्ट करना उचित नही समझा, क्योंकि वे अपनी जागीरों मे बहुत अधिक शक्तिशाली एवं प्रभावशाली बन चुके थे। साथ ही साथ उसने उन स्थानो को जीतकर स्थानीय अमीरो को वापस कर दिया, किन्तु वहॉ मालगुजारी वसूल करने के लिए अपना शिकदार नियुक्त किया।[१३]

इसी प्रकार की व्यवस्था उसने बनारस मे भी की। बनारस मे हुसैन शर्की को जागीरदार बनाया गया, जिसका मुख्य कारण हुसैन शर्की का लम्बे समय से बनारस मे निवास करना था।[१४]

सन् १५३० ई मे बाबर की मृत्यु के पश्चात हुमायूँ बादशाह बना। हुमायूँ के प्रबल शत्रु अफगान थे। अफगानो मे शेरखॉ हूमायूँ का प्रबल प्रतिद्वन्दी था, तथा अत्यधिक महत्वाकांक्षी था।[१५] उसने सन् १५३० ई० मे चुनार के शक्तिशाली किलेदार ताजखॉ की विधवा पत्नी लाडमलिका से विवाह करके न केवल चुनार के शक्तिशाली किले पर अधिकार किया, बल्कि बहुत सी सम्पत्ति भी प्राप्त कर ली।[१६] इस प्रकार ऐतिहासिक साक्ष्यो से यह स्पष्ट होता है कि वैवाहिक गठबंधन के बाद लाडमलिका ने अपने पति शेरखॉ को १५० नग बहुमूल्य जवाहरात, ७ मन मोती और १५० मन सोना भेट किया था।[१७] विवाह के उपरान्त शेरखॉ के प्रभाव मे वृद्धि हुयी और चुनार के किले के निकट सुदृढ़ दुर्ग और बनारस के निकटवर्ती क्षेत्रो पर अधिकार करने के

---

[१३] डा० राधेश्याम, मुगल सम्राट बाबर, पटना,१९७४, पृ० ३९२—९३,

[१४] निजामुद्दीन अहमद— तबकाते अकबरी, अनुबाद बी० डे, कलकत्ता, १९३६, भाग—१ पृ० ३२०, अब्दुल्ला, तारीखे दाऊदी, अलीगढ़ १९५४, पृ० ९९

[१५] अब्बास शरवानी : तारीख—ए—शेरशाही, अनुवाद, राजाराम अग्रवाल, लखनऊ, प्रथम संस्करण, १९८३, पृ० ७८

[१६] वही,

[१७] वही,

उपरान्त शेरखॉ को जो सम्पदा प्राप्त हुई उससे उसकी स्थिति काफी सुदृढ हो गयी। अपने प्रभाव क्षेत्र में विस्तार के लिए शेरखॉ ने इस धन का उपयोग अपनी सेना को सुदृढ एव सगठित करने के लिए किया।[१८] इसी अन्तराल मे दूसरी ओर अफगानो ने महमूद लोदी के नेतृत्व मे जौनपुर तक अपना अधिकार कर लिया था। अफगान अवध में भी अपनी शक्ति सुदृढ़ कर रहे थे। हुमायूँ ने अफगानो की बढ़ती हुई शक्ति से चिन्तित होकर सन् १५३२ ई० में पूर्वी भागो की ओर सैनिक अभियान प्रारम्भ किया। दोहरिया नामक स्थान पर अफगानों से उसका सामना हुआ। इस युद्ध मे शेरखॉ ने महमूद लोदी का साथ छोड़ दिया, क्योंकि वह महमूद लोदी की शक्ति से ईर्ष्या करता था और स्वयं अपने नेतृत्व मे अफगानो को संगठित करना चाहता था। ऐसी स्थिति मे महमूद लोदी की सेना दोहरिया के युद्ध मे पराजित हुई और दूसरी ओर शेरखॉ को मुगलो की सहानुभूति भी प्राप्त हुई।[१९] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पश्चात हुमायूँ ने चुनार गढ का घेरा डाला। चुनार का किला न केवल सुदृढ बल्कि सामरिक एवं सैन्य रूप से महत्वपूर्ण भी था। हुमायूँ ने उसे शेरखॉ के हाथों से लेने का प्रयास किया। चारमाह के घेरे के पश्चात भी किला जीता न जा सका।[२०] इसी बीच गुजरात के शासक बहादुर शाह का दबाव राजस्थान की ओर बढ़ रहा था। ऐसी स्थिति का शेरखॉ ने परिस्थिति का लाभ उठाया, और अपने एक प्रतिनिधि को हुमायूँ की सेवा में एक प्रार्थना–पत्र लिखकर भेजा कि "मै हजरत बादशाह का तुच्छ सेवक हूँ, यदि चुनार के किले को बादशाह इस पुराने सेवक (शेरखॉ) से ले लेना चाहे तो ले लें, परन्तु किले का प्रबन्ध किसी न किसी व्यक्ति को तो अवश्य सौंपना ही होगा। मैं भी आपका ही सेवक हूँ, यदि चुनार का किला आप मुझे प्रदान कर दें तो मैं अपने पुत्र कुतुब खॉ को आपकी सेवा में भेज दूँगा, यदि मेरी यह प्रार्थना

---

[१८] पूर्वोद्धत, पृ० ७८

[१९] अब्बास शरवानी, पूर्वोक्त, पृ० ८२–८३

[२०] वही, पृ० ८५

स्वीकार कर ली जाय तो आप इस क्षेत्र के शासन प्रबन्ध से निश्चिन्त हो जायेगें। किन्तु इस बात का मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आपका यह सेवक या अन्य अफगान व्यक्ति कोई ऐसा अनुचित काम करें जो राज्य के अहित मे हो तो आपकी सेवा मे मेरा पुत्र है, आप ऐसा दण्ड दें जो दूसरों के लिए शिक्षाप्रद हो।"[२१]

इस प्रकार जब हुमायूँ ने शेरखॉ के उक्त प्रार्थना पत्र को स्वीकार कर लिया और उसके वकील का उत्तर दिया कि चुनार के किले का प्रबन्ध शेरखॉ को मै इस शर्त पर दे सकता हूँ कि वह जलालखॉ को मेरे साथ भेज दे। शेरखॉ के अनुरोध पर हुमायूँ ने जलालखॉ के स्थान पर कुतुब खॉ को अपनी आधीनता मे रखना स्वीकार कर लिया।[२२] तत्पश्चात हुमायूँ स्वय आगरा की ओर कूच कर गया ताकि गुजरात के सुल्तान बहादुर शाह के मुकाबले के लिए समय रहते तैयारी मे लग जाये।

शेरखॉ ने इस अवसर का पूरा लाभ उठाया। बिखरे हुए अफगानो को सगठित कर एक शक्तिशाली सेना को संगठित किया इसी सुअवसर पर शेरखॉ ने 'हजरत–ए–आली की उपाधि ग्रहण की।[२३] इधर हुमायूँ १५३५–३६ ई० के मध्य गुजरात और मालवा मे बहादुरशाह के साथ व्यस्त था। इसी बीच शेरखॉ ने १५३६ ई० में बगाल के महमूद शाह को पराजित किया। महमूद शाह ने १३ लाख दीनार देकर शेरखॉ से सन्धि कर ली, लेकिन एक वर्ष बाद १५३७ ई० में शेरखॉ ने पुन. बंगाल पर आक्रमण किया। इस बार महमूद शाह अपनी रक्षा न कर सका और अपनी राजधानी गौड़ की ओर भाग गया। इसी समय जुलाई १५३७ ई० मे हुमायूँ पुन. शेरखॉ की शक्ति को दबाने के लिए पूर्व की ओर बढा। अक्तूबर १५३७ ई० मे

---

[२१] पूर्वोद्धत, पृ० ८५

[२२] अब्बास शरवानी, पूर्वोक्त, पृ० ८६

[२३] वही

चुनारगढ़ का घेरा डाला। ६ मॉह पश्चात् १५३८ ई० मे किले पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार एक बार फिर बनारस हुमायूॅ के अधिकार मे आ गया।[*]

तारीखे–ए–शेरशाही में चुनार विजय के पश्चात् घटना का उल्लेख इस प्रकार मिलता है, कि, जब हजरत हूमायूॅ बादशाह ने चुनार के किले पर अधिकार जमा लिया तो वे बनारस पहुॅचे और वहॉ आनन्द मंगल मे समय व्यतीत करने लगे। कुछ समय तक उसने बनारस मे विश्राम किया और यही से बिहार विजय की योजना बनाई।[२५] इन्होंने अपना वकील शेरखॉ के पास भेजा कि वह मेरे सेवा में उपस्थित हो जाये। तत्पश्चात् जब शेर खॉ को हुमायूॅ का सदेश मिला तो शेर खॉ ने कहलवाया कि मै भय के कारण उनकी सेवा में उपस्थित नही हूॅगा, किन्तु मेरे पास राजभक्ति के अतिरिक्त कोई उपाय नही है, मुझे आप जो चाहे पद प्रदान करे। मै उपेक्षा नही कर सकता। मेरे पास अफगानो की एक बहुत बडी सख्या एकत्र हो गयी है। आपके दास के पुत्र ने गौड़ के किले को विजित कर लिया है, उन्हे एक ऐसा स्थान प्रदान हो जाए जहॉ वे कुछ दिन व्यतीत कर सके। जिस सेवा का उन्हे आदेश होगा वे सम्पन्न करेंगे। यदि गौड़ व बंगाल मुझे प्रदान हो जाए तो मैं समस्त बिहार प्रदेश छोड़ दूॅगा, जिसे भी आप चाहे उसे बिहार दे दे।[२६]

हर साल बंगाल प्रदेश से १० लाख रूपया हम आपको भेजते रहेंगे। वकील हजरत हुमायूॅ के पास पहॅुचा और जो कुछ शेर खॉ ने निवेदन किया था वह सभी बातें उसको बताया। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि हुमायूॅ ने शेरखॉ की बात को स्वीकार कर लिया। इसके बाद हुमायूॅ ने शेरखॉ के पास वकील भेजकर खास खिलअत प्रदान की ताकि वह शेरखॉ को दे दे और उसे सान्त्वना देकर उससे कहा जो तूने प्रार्थना की वह स्वीकार कर ली गई, तू पहॅुचने में विलम्ब न कर। जब हुमायूॅ

---

[*] पूर्वोद्धत, पृ० ८६

[२५] सैय्यद अत्तहर अब्बास रिजवीः मुगल कालीन भारत (हुमायूॅ) प्रकाशन, अलीगढ वि०वि० अलीगढ, १९६१, पृ०–५४,

[२६] वही,

का वकील शेरखॉ के पास पहुॅचा और खिलअत देकर जो कुछ हुमायूॅ ने कहा था, कहा। शेरखॉ प्रसन्न हो गया और कहा कि जब तक मै जीवित हूॅ मुझमे और हजरत हुमायूॅ पादशाह में शत्रुता उत्पन्न न हो। इस प्रकार हुमायूॅ और शेरखॉ के बीच एक समझौता हो गया, जिसमे यह निश्चय हुआ कि बिहार हुमायूॅ को और मुगलो की अधीनता मे बगाल शेरखॉ को दे दिया जायेगा। शेरखॉ हुमायूॅ को प्रतिवर्ष १० लाख रूपया देगा। इस पर शेरखॉ ने इन शर्तो को स्वीकार कर लिया।[२७]

बनारस पर अपनी सत्ता को सुनिश्चित करने के उपरान्त हुमायूॅ ने कुछ समय के लिए बनारस प्रवास किया। इसी प्रवास के दौरान वह सारनाथ के चौखण्डी स्तूप को भी देखने गया। इस प्रकार तारीखे शेरशाही मे बनारस मे हुमायूॅ के आगमन का जो विवरण ज्ञात होता है, उससे स्पष्ट होता है कि हुमायूॅ इस नगर पर शेरखॉ के प्रभाव को समाप्त करना चाहता था और अपनी सत्ता सुनिश्चित करना चाहता था।[२८]

इस सदर्भ मे यह भी विवरण मिलता है कि बनारस प्रवास काल में हुमायूॅ ने बनारस के जगमवाड़ी मठ के देखभाल के लिए ३०० बीघा जमीन दान मे दी थी। यह भूमि चुनार मे तत्कालीन तिलसी परगना में से प्रदान की गयी थी। हुमायूॅ द्वारा अनुदान के सम्बन्ध मे जारी किया गया फरमान जगमवाडी मठ मे अभी भी उपलब्ध है, किन्तु जीर्णशीर्ण स्थिति के कारण पठनीय नही है।[२९] लेकिन अकबर द्वारा इस फरमान का उल्लेख करते हुए महल अर्जुनमल जंगम में ४८० बीघा अनुदान दिये जाने को स्पष्ट किया गया है, किन्तु इससे सम्बन्धित भूमि के विषय मे विवरण प्राप्त नहीं होता है। लेकिन अकबर ने बनारस में १५० बीघा और चुनार में ५० बीघा जमीन

---

[२७] पूर्वोद्धत, पृ०–५४,

[२८] वही,

[२९] रिकार्ड इन द कोर्ट आफ द एडिशनल सबार्डिनेट जज आफ बनारस, नं०–६३, जजमेंट–२७ नवम्बर, १६३३, पृ०–३२८–३२६, हुमायूॅ तथा अन्य मुगल शासकों द्वारा जगम को भूमि अनुदान के सम्बन्ध में दिये गये फरमान अभी जगम मठ में मौजूद है, जिसकी छाया प्रति परिशिष्ट में दी गयी है।

का अनुदान कम कर दिया था। बनारस मे दी गई भूमि का स्पष्ट विवरण नही प्राप्त हो पाया है। लेकिन अकबर के समय में परगना हवेली बनारस में जंगम के अधिकार मे १७८ बीघा भूमि का स्वामित्व स्वीकार किया गया था। इसका तात्पर्य यह था कि हुमायूँ द्वारा चुनार के साथ–साथ बनारस में भी जंगम को भूमिदान मे दी गयी थी।[30] इस सम्बन्ध में मठ से प्राप्त किये गये फरमान परिशिष्ट मे दिये गये हैं।

इसके फलस्वरूप हुमायूँ और शेरखॉ के साथ समझौते (१५३८ई०) के तीसरे दिन बगाल के शासक सुल्तान महमूद का राजदूत हुमायूँ की सेवा मे आया और अपने सुल्तान महमूद की ओर से निवेदन किया कि अफगानों ने गौड का दुर्ग छीन लिया है, परन्तु अधिकाश प्रदेश अभी भी मेरे अधिकार मे है। बादशाह, शेरखॉ की बातो पर विश्वास न करे और गौड़ की ओर कूच करे। अफगान लोग शक्ति सम्पन्न न हो, इससे पहले ही उन्हे यहॉ से निकाल दे।[31] अत हुमायूँ ने शेरखॉ से किये गये समझौते को तोड दिया और बगाल अभियान का निश्चय कर लिया तो जौनपुर और उस क्षेत्र के स्थान को मीर हिन्दु बेग को जो सम्मानित अमीरो मे था, प्रदान किया। चुनार बेग मीरक को प्रदान किया गया। इस व्यवस्था के उपरान्त हुमायूँ की सेना ने बंगाल की ओर कूच कर दिया।[32]

हुमायूँ के बनारस से जाने के बाद इस पर शेरखॉ ने पुन अधिकार कर लिया। तजकिरातुल वाकेआत मे दिये गये विवरण से यह स्पष्ट होता है कि जिस समय हुमायूँ बगाल में था, शेरखॉ ने बनारस पर अधिकार कर लिया और मीर

---

[30] पूर्वोद्धत,

[31] सैय्यद अब्बास ए रिजवी, (मुगलकालीन भारत) हुमायूँ, भाग–१, प्रकाशन अलीगढ वि०वि०अलीगढ, १९६१, पृ०–५५,

[32] वही,

फरजीन की ७०० मुगलों सहित हत्याकर दी। अन्तत शेरखॉ के अधीन अफगानों ने चुनार, जौनपुर और कन्नौज पर अधिकार कर लिया।[33]

उपरोक्त घटना का वर्णन करते हुए अब्बास खॉ सरवानी ने लिखा है कि– "जिस समय हुमायूँ बंगाल मे था, शेरखॉ बनारस जा पहुँचा और वहॉ के हाकिम को पकड लिया। इस नगर का हाकिम खान–ए–खान युसूफ खेल था। यह वही व्यक्ति था जो बाबर को काबुल से हिन्दुस्तान लाया था। खान–ए–खान को बन्दी बना लिया गया। इस प्रकार बनारस पर अफगानो ने अपना अधिकार फिर कर लिया। शेरखॉ ने हैबत खॉ नियाजी, जलाल खॉ जलू, सरमस्त खॉ शरवानी को बहराइच में नियुक्त कर दिया और निकटवर्ती स्थानो से मुगलों को एक–एक कर बाहर निकाल दिया। इसके फलस्वरूप सम्भल का किला और कन्नौज तक के प्रदेश अफगानो के नियन्त्रण में आ गए।"[34]

इतिहासकार अब्बास खॉ शरवानी बनारस के हाकिम का नाम खान–ए–खाना उल्लेख करता है, जिसे शेरखॉ ने कैद कर लिया था। दूसरी ओर अकबरनामा मे बनारस के तत्कालीन हाकिम का नाम मीर फरजीन दिया है, जिसकी शेरखॉ ने हत्या कर बनारस पर अधिकार कर लिया।[35] तात्पर्य यह कि हुमायूँ के अल्प शासन काल मे बनारस पर उसका अधिकार अत्यन्त सीमित अवधि के लिए ही था। परिणामत. बनारम अधिक समय तक अफगानों के अधिकार में ही रहा। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि बनारस पर पुन अधिकार प्राप्त करने के लिये हुमायूँ का प्रयास असफल रहा और उसे शेरखॉ से परास्त होकर भाग जाना पड़ा।[36]

---

[33] रिजवीः 'मुगल कालीन भारत' (हुमायूँ), पूर्वोक्त, पृ०–६०१, तवारीख–ए–शेरशाही, पूर्वोक्त, पृ०–१०६,

[34] तवारीख–ए–शेरशाही, पूर्वोक्त, पृ०–१०६–११०,

[35] वही,

[36] वही,

इस प्रकार चौसा और कन्नौज के युद्ध मे हुमायूँ को परास्त कर शेरखॉ १५४० ई० में स्वयं सुल्तान बन गया और भारत में द्वितीय अफगान साम्राज्य की नीव डाली। शेरशाह की उपाधि धारण कर उसने १५४० ई० से १५४५ ई० तक शासन किया और इसके उत्तराधिकारियो का शासन १५५५ ई० तक रहा।[३७]

अत. शेरशाह और उसके पुत्रो के शासन काल में भी बनारस अफगानो के अधिकार क्षेत्र मे बना रहा ऐसा विवरण समकालीन स्रोतो से प्राप्त होता है।[३८]

इस प्रकार १५५६ ई० में पानीपत के द्वितीय युद्ध में आदिलशाह के हिन्दू सेनापति हेमू को पराजित कर अकबर ने सत्ता की स्थिरता सुनिश्चित की इसके तीन वर्ष बाद उसने पूर्वी क्षेत्रो पर अधिकार करने के प्रयास में १५५६ ई० मे बनारस पर अपना अधिकार स्थापित किया, इसका दायित्व खान–ए–जमा को प्रदान किया गया था। लेकिन खान–ए–जमा द्वारा अकबर के विरूद्ध विद्रोह करने के कारण अकबर को दो बार बनारस आना पड़ा[३९] अतः तबकाते अकबरी से ज्ञात होता है कि –१५६५ ई० और १५६७ई० मे दो बार अकबर के बनारस आने का उल्लेख प्राप्त होता है।[४०]

---

[३७] पूर्वोद्धत,

[३८] वही,

[३९] ख्वाजा निजामुददीन अहमदः तबकाते अकबरी, नामी प्रेस द्वारा प्रकाशित, लखनउफ, १८७५, पृ०–२८०–३२२, तथा इलियत एण्ड डाउसन, भाग–५, पृ०–३२२,

[४०] वही,

इस प्रकार उसके दूसरे बार बनारस (१५६७ई०) आगमन के समय खान–ए–जमा की हत्या कर दी गयी। इसके बाद यहाँ का प्रशासक मुनीम खाँ को बनाकर अकबर राजधानी वापस लौट गया।[५१] बदायूँनो लिखता है कि अकबर ने मुनीम खाँ व खान–ए–खाना को आगरे से बुलाकर बहादुर खाँ और खानजमाँ की जागीरे सुपुर्द कर दी। ये जागीरें जौनपुर, बनारस, गाजीपुर, जमनियाँ और चुनार के किले तक फैली थी।[५२] तत्कालीन अन्य इतिहासकारो के विवरण से ज्ञात होता है कि १५७५ई० में अकबर ने राज्य में जागीर प्रथा समाप्त कर दी और अधिकारियो, सैनिको को राजकोष से नकद वेतन दिया जाने लगा। भूमिकर और अन्य करो की वसूली जागीरदारों के हाथ से लेकर राजस्व विभाग के अधिकारियो को दे दी गयी। इन सुधारों से जागीरो की भूमि खालसा मे परिवर्तित कर दी गयी। इस प्रकार प्रथम परिवर्तन अगस्त, सितम्बर १५७४ई० में मुनीम खाँ के नियंन्त्रण मे हुआ, जिसमे जौनपुर, बनारस, चुनार और कर्मनाशा नदी तक का प्रदेश सम्मिलित था।[५३]

पूर्वी क्षेत्र मे अपनी सत्ता को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए अकबर ने १५७४ ई० में अफगान राज्य को समाप्त करने के लिए बंगाल पर आकमण की योजना बनायी। उसकी सेनाएँ नावो पर सवाल होकर २५ रबी–उल–अव्वल को बनारस पहुँची तो अकबर ने शेर बेग तवाची को रवाना कर मुनीम खाँ को बादशाह के आगमन की सूचना देने के लिये भेजा। इस समय अकबर ने बनारस मे तीन दिन तक विश्राम किया।[५४] ऐसा प्रतीत होता है कि इसी समय अकबर, सारनाथ के चौखण्डी स्तूप को देखने गया। अकबर ने इस स्थान पर अपने पिता के आगमन के उपलक्ष्य में अरबी

---

[५१] पूर्वोद्धत

[५२] बदायूनीः मुंतखब उत्तवारीख (डब्ल्यू.एच लो द्वारा अनुदित) भाग–२, कलकत्ता, १६२४, द्वितीय संस्करण,

[५३] तबकाते अकबरी, पूर्वोक्त, भाग–२, पृ०–२६६, अब्दुल बाकी निहाबन्दी कृत मासिर–ए–रहीमी भाग–१, कलकत्ता १६१०, पृ०–८२४–२५,
मुहम्मद आरिफ कन्धारी कृत तारीख–ए–अकबरी, रामपुर रिजा–पुस्तकालय हस्तलिपि, पृ०–३११,

भाषा में एक लेख खुदवाया जो आज भी यथावत है।[४४] इसके बाद बगाल पर अधिकार करने के उपरान्त अकबर ने मुनीम खॉ को बगाल का प्रशासक बना दिया और जौनपुर, बनारस, चुनार का प्रबन्ध स्वय अकबर ने स्वीकार किया और उनके सहायक मिर्जा मीरक रजवी और शेर इब्राहीम सीकरीवाल नियुक्त हुए।[४६] १५७६ई० मे बनारस का दूसरा प्रशासक मुहम्मद मासूम खॉ फरनखुदी हुआ।[४७] इसके फलस्वरूप ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर ने १५८०ई० मे सम्पूर्ण साम्राज्य को प्रशासनिक सुविधा के दृष्टिकोण से १२ सूबों मे विभाजित कर दिया। जिसमे इलाहाबाद सूबे के अर्न्तगत बनारस सरकार का प्रशासन चलता रहा।[४८]

जिस समय बनारस सरकार के रूप मे इलाहाबाद के सूबे मे सम्मिलित कर लिया गया, उस समय बनारस का (फौजदार) चीन किलीच खॉ को नियुक्त किया गया। मिर्जा चीन किलीच खॉ १५९६ई० तक बनारस का फौजदार रहा।[४९] इनके आगरा जाने के बाद इनके पुत्र चीन किलीच जौनपुर और बनारस के फौजदार बने।

अकबर ने अपने शासन का मूल आधार 'सुलह–ए–कुल' की नीति को बनाया। सुलह कुल का अर्थ है, 'सबके साथ शान्ति' (Peace with all) उसकी इस नीति का प्रभाव शीघ्र ही बनारस के पुनः हिन्दू धर्म और शिक्षा के उन्नत केन्द्र के रूप मे दिखाई देने लगा। उसकी नीति में परिवर्तन का कारण उसके गुरू अब्दुल लतीफ का प्रभाव, तथा तत्कालीन परिस्थितियॉ और हिन्दुओं का शासन प्रबन्ध में संलग्न होना था। जिसमें राजा भगवान दास, मानसिंह, राजा टोडरमल आदि का नाम उल्लेखनीय

---

[४४] इलियत एण्ड डाउसन, भाग–७, पूर्वोक्त, पृ०–३७५,
[४५] ए.एस. अल्तेकर, हिस्ट्र आफ बनारस, पूर्वोक्त, पृ०–२४,
[४६] बदायूनी, पूर्वोक्त, भाग–२, पृ०–१८५,
[४७] वही,
[४८] आइने अकबरी, खण्ड–३ पृ०–१५१,
[४९] ब्लाकमैन, आइन–ए–अकबरी, कलकत्ता, १९३६, पृ०–५६१,

है।[50] तात्पर्य यह है कि हिन्दू राजाओ ने अकबर की नीतियो मे सकारात्मक परिवर्तन की पृष्ठभूमि तैयार करने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति का आरम्भ १० अप्रैल १५६२ई० को एक नवीन आज्ञा के प्रसारण से हुआ, जिसके अनुसार युद्ध बन्दियो को गुलाम बनाने और उन्हें बल पूर्वक इस्लाम स्वीकार करने की मनाई कर दी गयी।[51] १५६३ई० में सम्पूर्ण राज्य में तीर्थ यात्रा कर वसूल न करने के आदेश दे दिये गए।[52] १५मार्च १५६४ई० को जजिया कर की समाप्ति का आदेश जारी किया गया।[53] इससे परम्परागत राजनीति मे मौलिक परिवर्तन हुआ। हिन्दू और मुस्लिम दोनो वर्गो के लोगो मे समान भाई–चारे की भावना विकसित हुई। इसके अतिरिक्त अकबर ने सार्वजनिक पूजा गृहों के लिए भवन निर्माण पर लगे हुए प्रतिबन्ध भी हटा दिया। फलस्वरूप हिन्दू तीर्थ स्थानों पर मन्दिरों का निर्माण भी हुआ।[54]

१५८५ई० में अकबर का राजस्व मंत्री राजा टोडरमल की सहायता, नारायण भट्ट, जो कि अपनी विद्वता के कारण 'जगदगुरू' की उपाधि से विभूषित थे, ने विश्वनाथ जी के मन्दिर को पुनः बनवाया। इस मन्दिर का निर्माण व्यय पैतालीस हजार दीनार मुगल खजाने से दिया गया था तथा मन्दिर पॉच वर्षों में बनकर पूरा हुआ था।[55] १५८६ई० में उन्होंने द्रौपदी कुण्ड की स्थापना की। टोडरमल का बनारस से सीधा सम्बन्ध नहीं था, जो कुछ भी धार्मिक कार्य उनके द्वारा सम्पादित हुए उसका श्रेय उनके पुत्र गोबरधन, गोबरधनधारी अथवा धरू को है। गोबरधन के इतिहास की

---

[50] डॉ० मोतीचन्द्र, का. ई. पूर्वोक्त, पृ०–१८५,
[51] अकबरनामा, पूर्वोक्त, खण्ड,२ प०–१५६–६०,
[52] वही, पृ०–१६०,
[53] वही, पृ०–२०३–४,
[54] वही,
[55] काशी विश्वनाथ मन्दिर, ज्ञान मण्डल लि. वाराणसी, पृ०–६, दे,–सीताराम चतुर्वेदीः 'यह बनारस है' से उद्धत,

सामग्री श्रीयुत जगीर सिह ने एकत्रित की है।[५६] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि राजा टोडरमल के पुत्र गोबरधन ने सारनाथ स्थित चौखण्डी स्तूप पर ६६६ हिजरी मे एक अठपहला गुम्बद बनवाया था।[५७]

जयपुर के राजाओ और बनारस से सम्बन्ध की शुरूआत राजा मानसिह के समय से होती हैं। राजा मानसिह बिहार के सूबेदार रहे। इन्होने बनारस मे एक मान मन्दिर का निर्माण (१५८७ई० से १६०५ई०) के बीच कराया। गहरे गुलाबी पत्थरो से बने इस भवन के मूल का कुछ अश शेष है।[५८], इसके अतिरिक्त बनारस में जयपुर के राजाओं की एक और महान कृति ज्योतिष यन्त्रालय है, जो महाराजा जयसिह द्वितीय की देन है।[५९] बनारस में अनुश्रुति है, कि अकबर का विशेष कृपापात्र आमेर के राजा राजा मानसिंह ने एक दिन मे १००० मन्दिर बनवाने का निश्चय किया था। इस प्रकार बहुत से गढ़े पत्थरों पर मन्दिरो के नक्शे खोद दिये गये, और इस तरह राजा मानसिंह का दिया हुआ वचन पूरा हुआ। शेरिंग के समय तक मानसिह के बनवाये मन्दिर बनारस में मिलते हैं।[६०] मानसिंह ने पॉच लाख रूपये व्यय करके वृन्दावन और बनारस में एक मन्दिर बनवाया। इन मन्दिरो के भवन सौन्दर्य के सम्बन्ध मे एक मुस्लिम यात्री ने अपने यात्रा डायरी में लिखा है कि अच्छा होता यदि ये भवन हिन्दू धर्म की अपेक्षा इस्लाम की सेवा के लिए निर्मित किये जाते।[६१]

बूँदी नरेशो के बनारस एवं चुनार से सम्बन्धित एक लेख से ज्ञात होता है कि १५७६ई० में राजा सुर्जन के गोंडवाना विजय के बाद अकबर ने उन्हे बूँदी के निकट

---

[५६] राजा टोडरमल्स सन्स ज.यू.पी.हि.सो.–१५, भाग–१, १६४२, पृ०–५५,
[५७] डॉ० मोतीचन्द्र, का.ई. पूर्वोक्त, पृ०–१६४,
[५८] डॉ० चन्द्रमणि सिह, जयपुर नरेश और वाराणसी, सवाई मान सिंह द्वितीय संग्रहालय, जयपुर, पृ०–४२–४३,
[५९] वही,
[६०] शेरिंग– दि सैक्रेड सिटी आफ बनारस, लंदन, १८६८, पृ०–४२–४३,
[६१] अब्दुल लतीफ, पृ०–३३–३४, ५०–५१, उद्धत श्री राम शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक नीति, पृ०–२५,

२६ परगने देकर उनकी जागीर की वृद्धि की।[६२] आइने अकबरी मे राजा सुर्जन के गढ़कटनगा से चुनार स्थानान्तरित किये जाने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[६३] इस बात की पुष्टि अकबरनामा से भी होती है कि राजा सुर्जन को चुनार दिये जाने के विषय मे सूर्यमल्ल मिश्रण भी सकेत करते हैं।[६४] शत्रुशल्य चरित महाकाव्य मे स्पष्ट संकेत मिलता है कि वृद्धावस्था मे राजा सुर्जन को चुनार का अधिपति बनाया गया। वह गंगा के तट भूमि पर स्थित चरणाचल (चुनार) में रहने लगे, जो बनारस के समीप था। पंण्डित चन्द्रशेखर ने अपने महाकाव्य मे राजा सुर्जन के काशीवास करते हुए उनके द्वारा मन्दिरो, कुण्डो तथा तालाबो के निर्माण करवाने तथा दान आदि की चर्चा की है।[६५] राय सुर्जन द्वारा बनवाये गये कुण्डो मे सूरजकुण्ड आज भी बनारस में विद्यमान है। बनारस के ब्रह्मघाट के समीप गंगातट पर स्थित राजमन्दिर का जीर्ण परकोटा आज भी बूंदी नरेशो के बनारस से सम्बन्ध की पुष्टि करता है। नवम्बर १५७५ई० में अकबर ने चुनार सरकार के शासन प्रबन्ध और उसके देख–रेख के लिये राय सुर्जन को इस क्षेत्र का स्वामित्व प्रदान किया था।[६६]

राय सुर्जन की मृत्यु काशी में १५८५ई० में हुई। राय सुर्जन के बाद उनका पुत्र राव भोज तथा पौत्र राव रतन का भी बनारस से सम्बन्ध था। इस प्रकार प्रतीत होता है कि बूंदी के राजाओं का बनारस से सम्बन्ध (१५७६ई० से १६४५ई० तक) राय सुर्जन से ईश्वरी सिंह तक रहा। बनारस में ब्रह्मघाट के राजमन्दिर मुहल्ले की समस्त भूमि, सूरजकुण्ड के पास की कुछ भूमि और सुनारपुर के पास स्थित हाड़ा बाग की

---

[६२] युगो–युगों में वाराणसी, भारतीय इतिहास संकलन समिति, वाराणसी, १६८६ के लेख "बूंदी नरेशों का बनारस एव चुनार से सम्बंध" लेखक पण्डित लक्ष्मीशंकर ब्यास, पृ०–५६–५७,

[६३] अबुल फजल, आइने–अकबरी, (अनुवाद एच० ब्लोचमैन) कलकत्ता, १८७३, भाग–१ पृ०–४४६–४५०,

[६४] सूर्यमल्ल मिश्रणः वंश भास्कर, भाग–३, पृ०–२२८,

[६५] चन्द्रशेखरः सुर्जन चरित महाकाव्यम, सर्ग १६ पद्य सख्या ३७–३६,

[६६] यह जानकारी लेखक (लक्ष्मीशंकर व्यास) को अपने परिवार से मिली जो बूंदी नरेशो का राजगुरू परिवार रहा है।

भूमि बूदी नरेशो की परम्परागत सम्पत्ति रही। प्राप्त तथ्य यह स्पष्ट करते है कि बूदी नरेशो तथा वहाँ के राज्य कर्मचारियो का बनारस से निरन्तर सम्पर्क बना रहा।[६७]

बूदी नरेश का बनारस से सम्बन्ध था। टॉड के अनुसार[६८] अकबर ने राय सुर्जन के साथ सन्धि कर उन्हे दो सहस्त्र का मनसबदार बनाकर बनारस प्रान्त का प्रशासक नियुक्त किया। राय सुर्जन हाड़ा ने अपनी प्रशासकीय कुशलता व सर्तकता से शान्ति व्यवस्था स्थापित की और बडी उदारता से अनेक धार्मिक कार्य किए और कई भवन तथा घाट निर्मित करवाए।

जगंमवाड़ी मठ के सम्बन्ध मे अकबर के शासन काल मे निर्गत तीन फरमान उपलब्ध है, जिनसे यह ज्ञात होता है कि अकबर ने इस मठ को ४८० बीघा भूमि अनुदान के रूप मे दी किन्तु इन फरमानो में यह उल्लेख नही है कि माफी में दी गयी यह भूमि कौन–सी थी।[६९] मठ से प्राप्त किये गये फरमानों की छाया प्रति परिशिष्ट मे संलग्न है।

इसके बाद जहॉगीर (१६०५–१६२७ई०) के काल मे बनारस के इतिहास की कुछ घटनाओं पर बनारसीदास के अर्धकथानक एवं 'तुजुक–ए–जहॉगीरी' (जहॉगीर की आत्म कथा) से प्रकाश पड़ता है। इनसे ऐसा प्रतीत होता है कि जहॉगीर ने अपनी आत्मकथा तुजुक–ए–जहॉगीरी में लिखा है कि "हमारे पिता अर्श आशियानी अकबर बादशाह ने अनेक मन्दिरो तथा नगरों का निर्माण करवाया है। मथुरा मे मेरे पिता के हरम की स्त्रियों ने जैसे राजा मानसिह की पुत्री और अन्य बडे राजाओं की पुत्रियों ने बड़े–बड़े मन्दिर बनवाये जिसमें एक व दो लाख रूपये व्यय हो गये हैं, और अभी तक पूरे नहीं हुए है। दूसरे मन्दिर बनारस मे बनवाये हैं। राजा मानसिह ने

---

[६७] पूर्वोद्धत,

[६८] टाड एनाल्स एण्ड एंटीक्वीटीज आफ राजस्थान, लन्दन, १६५२, पृ०–३८४,

[६९] आज नगर विशोषांकः 'जगमबाडी मठ की प्राचीनता' ले. केशरी शरण राणा, तृतीय संस्करण, वाराणसी, १६६६,

उस सरकार मे जो मन्दिर निर्माण कराया है, उसमे हमारे पिता के आठ–दस लाख रूपये लग गये। हिन्दुओं की इस नगर पर ऐसी श्रद्धा है कि उनका कहना है जो कोई बनारस मे मरता है, वह स्वर्ग को जाता है।[७०] चाहे वह मनुष्य हो, कुत्ता, बिल्ली या किसी प्रकार का जीव हो। वे ऐसा कहते है कि उस मूर्ति का ऐसा श्राप है कि जो वहाँ मरता है। वह स्वर्ग जाता है। स्वर्ग जाने की निशानी यह है कि जिस किसी को वहाँ भेजते है, उसके बाए कान में अपने आप छिद्र हो जाता है, और इस सम्बन्ध में वे बहुत विश्वास रखते हैं।[७१] जहाँगीर ने आगे अपनी आत्म कथा मे लिखा है कि "हम इस पर खुद विश्वास नहीं करते, पर यह चाहते है कि इन सब का झूठ संसार पर प्रकट हो जाय। एक विश्वासी व्यक्ति को भेजता हूँ कि जाँच कर इसे असत्य सिद्ध कर दे। बनारस के मन्दिर में मानसिंह ने एक लाख रूपये व्यय किये। उससे अच्छा मन्दिर बनारस मे कोई नहीं है। एक मन्दिर इससे भी बड़ा वहाँ था, जिसे बनवाने की हमने आज्ञा दी थी। इस सम्बन्ध में हमने अपने पिता से पूछा कि इन मंदिरो को आप द्वारा बनवाये जाने का क्या कारण है। तब उन्होंने कहा कि बाबा, हम लोग बादशाह है, और बादशाह खुदा की छाया है, इसलिए जब खुदा ने प्रजा को अपनी कृपा से हमें सौंपा है तो हमें भी चाहिए कि हम उन पर दया और स्नेह रखे। हम खुदा की कुल प्रजा को शान्ति के साथ रखते है और किसी को कष्ट नही पहुँचाते।"[७२]

तुजुक–ए–जहाँगीरी में एक स्थान पर लिखा है– "बनारस के शेख को शरीयत के भीतर आज्ञा पत्र भेजा है कि हिन्दू लोग अपने मन्दिरों मे जाकर एक प्रकार की पूजा करते हैं। इस कारण कि वास्तव में वे भी उसी खुदा की ओर लौ

---

[७०] काश्यम् मरणान मुक्तिः का अर्थ लेकर या सुनकर लिखा है।

[७१] जहाँगीर की आत्मकथा (तुजुके जहाँगीरी) अनु. ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण, सं.–२०१४, पृ०–१२, यह मन्दिरों वाला अंश राजर्स बेबरिज के अंग्रेजी अनुवाद में नहीं दिया गया है।

लगाएँ है। उनको कोई उस कार्य मे न रोके। इस प्रकार सदर के अन्य अधिकारी लोग भी उसमें हस्तक्षेप न करे।[७३] जहाँगीर ने दूसरे स्थान पर लिखा है– इसी समय रूद्र भट्टाचार्य नामक एक ब्राह्मण जो अपनी जाति का एक विद्वान था, तथा बनारस मे शिक्षा प्रदान करने का कार्य करता था, हमारी सेवा मे उपस्थित हुआ। वास्तव मे इसने कई विद्याओं का अच्छा अध्ययन किया है और अपने विषय का पूरा विद्वान है।[७४]

इन विवरणों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जहाँगीर ने अपने पिता (अकबर) द्वारा चलाई गई प्रथा को सार्वजनिक पूजा गृह निर्माण करने देने की प्रथा को जीवित रखा। जहाँगीर के शासन काल मे बनारस मे सत्तर से भी अधिक मन्दिरो का निर्माण हुआ। परन्तु ये मन्दिर जहाँगीर की मृत्युपर्यन्त पूर्णतया बन कर तैयार नही हुए थे।[७५]

जहाँगीर के शासन काल में नवाब चीन किलीच खाँ जौनपुर और बनारस के प्रशासक थे, वे काफी विद्याव्यसनी थे। बनारसीदास के अर्धकथानक से पता चलता है कि वे चार हजारी मनसबदार थे। १५८४ई० में उन्होंने बनारसीदास को सिरोपाव बख्शा। बनारसीदास और चीन किलीच खाँ के बीच गहरी मित्रता थी। चीन किलीच खाँ उनके अनेक ग्रंथ पढ़ते थे। चीन किलीच की मृत्यु १६१६ई० मे जौनपुर मे हो गयी।[७६] इसके बाद जहाँगीर ने आगानूर नाम के उमराव को सिरोपाव देकर जौनपुर की ओर भेजा। आगानूर ने बनारस और जौनपुर के बीच बडे अत्याचार किये। जड़िया, कोठीबाल, हुंडीवाल, सर्राफ, जौहरी और दलालों को पकड़कर उसने कोडे लगवाये और बेड़ियाँ लगवा कर जेलों मे बन्द करवा दिया। इस प्रकार लूटपाट करके

---

[७२] पूर्वोद्धत, पृ०–१२,

[७३] जहाँगीर की आत्म कथा, पूर्वोक्त, पृ०–६३,

[७४] वही, पृ०–७१५,

[७५] श्रीराम शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक नीति, पूर्वोक्त, पृ०–७३, अब्दुल हमीद लाहौरी, पादशाहनामा (विवलोथिका इण्डिका) भाग–२, १८७२, पृ०–१२१,

[७६] अर्धकथानक (नाथूराम प्रेमी द्वारा सम्पादित), बम्बई, १६४३, पृ०–१५०,

दो चार धनिकों को पकड़कर आगानूर आगरा ले गया। उसके बाद बनारस और जौनपुर के महाजन और व्यापारी अपने घरों को लौटे।[७७]

इस प्रकार बनारस का उल्लेख १६२४ ई० में खुररम (शाहजहाँ) की बगावत के सम्बन्ध में भी आता है। जब उसे शाही फौज के सामने इलाहाबाद से हटकर बनारस भागना पड़ा, दक्षिण जाने के पहले यहीं उसने अपनी फौज एकत्रित की थी।[७८] ऐसा प्रतीत होता है कि १६वीं से १७वी शताब्दी में बनारस के बारे में जानकारी तुलसीदास की विनयपत्रिका, राल्फ फिच के यात्रा विवरण, वरदराज की गीर्वाण पद मजरी, अबुल फजल की आइने अकबरी से ज्ञात होता है।

बनारस के इतिहास में १६वीं और १७वी शताब्दी की महत्वपूर्ण घटना गोस्वामी तुलसीदास का प्रादुर्भाव था। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने जीवन का अधिकांश समय काशी में ही बिताया था। गोस्वामी जी के समय काशी नगरी का आरम्भ वरूणा संगम के पास आदि केशव से होता है। वहीं से किला भी प्रारम्भ होता था। किले के बाद दशाश्वमेध घाट और विश्वनाथ जी का मन्दिर काशी नगरी की दक्षिणी सीमा थी।[७९] भेलूपुर, सोनारपुरा, बंगाली टोला, शिवाला, हनुमान घाट इस समय आबाद न रहे होंगे। काशी नगरी के बाहरी हिस्से में कबीर दास का चौरा था। गोस्वामी जी के समय में आदमपुरा मुहल्ला सबसे घना रहा होगा, चौहट्टा लाल खॉ उस समय चौक बाजार था। तत्कालीन काजी आदि अफसर उसी हल्के में रहते थे और शाही दफ्तर भी वहीं था। मुहल्ले घिरे होते थे और फाटक लगे होते थे। उदाहरण के लिए पाटन दरवाजे का फाटक और इसी तरह के अनेक फाटक आज भी मौजूद है।[८०]

---

[७७] पूर्वोद्धत, पृ०–४६१,

[७८] वही, पृ० १५०,

[७९] पण्डित रामनरायण शुक्ल शास्त्रीः संत तुलसीदास और वाराणसी, (सन्मार्ग पत्रिका, वाराणसी विशेषांक, १९८६ पृ० ६६,

[८०] वही,

प्रायः ऐसा माना जाता है कि इस समय का विश्वनाथ मन्दिर आज जहॉ ज्ञानवापी मस्जिद है, वहीं था। आज जहाँ मुस्लिम नमाज अदा करते हैं, वहॉ गोस्वामी जी ने विश्वम्भर विश्वनाथ को साष्टांग दण्डवत कर पूजा की और पचगगा घाट पर माधव जी के धरहरे वाली मस्जिद के स्थान बिन्दु माधव जी का दर्शन पूजा और स्तुति की थी।"[1]

तुलसीदास के समय बनारस में विभिन्न सम्प्रदाय थे। इनके मध्य अन्तर्विरोध भी था। एक तरफ जहाँ नाथपंथी, शाक्त सम्प्रदाय, शैव और वैष्णव में पारस्परिक मतभेद था, वहीं दार्शनिक क्षेत्र में भी द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद और शुद्धाद्वैतवाद प्रतिस्पर्धारत थे। मुगलों की उदारवादी नीति के कारण बनारस ने अपनी पुरानी परम्परा को ही कायम रखा। जप, तप, आराधना और ब्राह्मणो को दान देना पुनः प्रारम्भ हो गया था।"[2]

इसी समय राल्फ फिच भारत की यात्राा करने वाला अंग्रेज यात्री था जो १६६० ई० में यहाँ आया था। उसने आगरा, इलाहाबाद, बनारस, पटना, और बंगाल की यात्रा की। बनारस के सम्बन्ध में उसने लिखा है कि यह एक बड़ा नगर था जहाँ देश के विभिन्न कोनों से तीर्थ यात्री आते थे। नदी के किनारे बहुत से सुन्दर भव्य भवन बने हुए थे। यहॉ बहुत से मन्दिर थे। बनारस में बड़ी मात्रा में सूती कपडा बनता था। बाल विवाह और सती प्रथा का प्रचलन था। मन्दिरों में हिन्दू मूर्तियों के सम्मुख सदैव दीपक जलाते थे। गंगा स्नान का अत्यधिक प्रचलन था। स्नान के बाद यात्री मन्दिरों में जाकर पूजा करते थे, और पुजारियों का आर्शीवाद लेते थे। घंटियों की प्रथा उस समय भी थी। दान—दक्षिणा देने और सिर पर तिलक लगाने की प्रथा का प्रचलन था। विवाह के उपरान्त वर—वधू गंगा की पूजा के लिए जाते थे। गंगा के किनारे गौ दान की प्रथा

"[1] पण्डित रामनारायण शुक्ल शास्त्री, पूर्वोक्त, पृ० ६६

"[2] विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसी, पूर्वोक्त, पृ० ६०,

भी प्रचलित थी। पुरूष वर्ग अधिकतर धोती पहनते थे और स्त्रियाँ शरीर के विभिन्न अंगों में आभूषण धारण करती थी।[८३]

शाहजहाँ के शासन काल (१६२७ ई०–१६५८ ई०) में अकबर की उदारता की नीति तथा जहाँगीर की धर्म के विषय में शिथिलता की नीति का अन्त होता है। शाहजहाँ एक कट्टर मुस्लिम था यद्यपि उसकी माँ और दादी दोनों ही राजपूत जाति की थी। शाहजहाँ के शासन काल मे प्रशासकीय तंत्र के धार्मिक नीतियों में कुछ महत्वपूर्ण अन्तर दृष्टिगोचर होता है। अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता की नीति कम हो गयी थी, कुछ समसामयिक इतिहासकारों ने इस्लामी परम्पराओं के प्रवर्तन के लिए शाहजहाँ की भूरि–भूरि प्रशंसा की है।[८५] शाहजहाँ के पूर्ववर्ती मुगल सम्राटो ने जिस धार्मिक सहिष्णुता को जन्म दिया था, शाहजहाँ ने उसका आशय ही बदल दिया। जिन हिन्दू मन्दिरों का निर्माण उसके परिवर्ती शासकों के काल मे आरम्भ हो चुका था उनका शेष निर्माण निषिद्ध कर दिया गया, तथा नये मन्दिरों के निर्माण पर भी प्रतिबन्ध लगा दिये गये।[८६] इसके बाद जनवरी १६३३ ई० मे आदेश दिया गया कि साम्राज्य में समस्त नवनिर्मित मन्दिर, विशेषत. बनारस के मन्दिर ध्वस्त कर दिये जाएँ।[८७] तत्कालीन इतिहासकार मुहम्मद अमीन कजवीनी ने अपने ग्रन्थ बादशाहनामा मे लिखा है कि बादशाह का ध्यान इस ओर आर्कषित किया गया कि पिछले शासन में बनारस मे बहुत से मन्दिरों का निर्माण शुरू कर दिया गया था, परन्तु पूरा नहीं हुआ था। इन इतिहासकारों के अनुसार काफिर लोग अब इन मन्दिरों को पूरा करना चाहते थे। अतः

---

[८३] विलियम फास्टर, अर्ली ट्रवेल्स इन इण्डिया, लंदन, १९२१, पृ० २०–२३–१७६,

[८५] बनारसी प्रसाद सक्सेना. मुगल सम्राट शाहजहाँ, जयपुर, १९८७, पृ० ३१२,

[८६] अब्दुल हमीद लाहौरीः पादशाहनामा (बिबलिओथिका इण्डिका) १८६६, भाग–१, पृ० ४५२, मिर्जा अमीनाई कजवीनी. पादशाहनामा, पृ० ३०२,

[८७] यह आज्ञा जनवरी १६३३ ई० में प्रसारित हुई और बनारस में ७२ मन्दिर ध्वस्त कर दिये गये। अब्दुल हमीद लाहौरीः पादशाहनामा, पूर्वोक्त, पृ० ४५२,

बादशाह ने आदेश दिया कि बनारस मे और अन्यत्र सब मन्दिरों का जिनका निर्माण शुरू कर दिया गया है, ध्वस्त कर दिये जाये।[८८] इसके बाद पुनः आदेश आया कि नए मन्दिरों के निर्माण तथा पुराने मन्दिरों के निर्माण कार्य रोक दिये जायें।[८९]

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि शाहजहॉ के इस तानाशही आदेशो को बनारस के निवासियों ने सरलता से स्वीकार नही किया था। पीटर मण्डी[९०] के यात्रा विवरण से ज्ञात होता है कि मुगलसराय में पीटरमण्डी ने एक आदमी को पेड से फॅसरी गले में लगाकर लटकता हुआ देखा। पूछताछ करने पर उसे इस आदमी के फॉसी के कारण का पता चला कि शाहजहॉ के आदेश के अनुसार इलाहाबाद के सुबेदार हैदरबेग ने अपने चाचा जाद भाई को बनारस के नए मन्दिरो को तोडने के लिए भेजा है। एक राजपूत रास्ते में छिप गया और उसने अपनी कमठी से सुबेदार के चचेरे भाई और उसके तीन—चार साथियों को मार डाला। वह अंत तक लडता रहा और मरते समय तक अपने अस्त्र से दो तीन आदमियों को मार गिराया लेकिन अन्त में वह मारा गया, और उसकी लाश पेड़ पर लटका दी गयी।

इसके बाद पीटर मण्डी आगरा से पटना जाते हुए ३ सितम्बर १६३२ ई० को बनारस पहुॅचा। पीटर मण्डी के यात्रा विवरण से ज्ञात होता है कि वह बनारस के रंग—बिरंगे नागरिकों अच्छी इमारतों ओर फर्शदार पतली और घुमावदार सड़कों को देखकर बड़ा प्रभावित हुआ। बनारस पहुॅचकर दूसरे दिन पीटर मण्डी को रूकना पड़ा क्योंकि बनारस के फौजदार मुजफ्फरवेग ने आवश्यक कार्य के लिए उसकी गाड़ियाँ ले

---

[८८] इलियट एवं डाउसन, भाग—७, पूर्वोक्त, पृ० २८,

[८९] कजनीवी, पूर्वोक्त, ३०२

[९०] टेंपिल, द ट्रेवल्स आफ पीटरमण्डी, लन्दन, १६१४, पृ० १७८,

ली थी। किन्तु पीटर मण्डी ने उसके अधिकारों को घूस देकर अपनी गाडियॉ छुडवा लीं और आगे बढ़ गया।[६१]

पीटर मण्डी ने बनारस के बारे में अपनी यात्रा वर्णन में लिखा है कि–"यह छत्री, ब्राह्मण और बनियों की बस्ती है और यहाँ दूर–दूर से लोग देवताओं की पूजा करने आते हैं। इस नगर में काशी विश्वेश्वर महादेव का मन्दिर सबसे प्रसिद्ध है। मैं उसके अन्दर गया। उसके बीच में एक ऊँची जगह पर एक लम्बोतरा सादा (बिना नक्कासी का) पत्थर है। उन पर लोग नदी का पानी, फूल, अक्षत और घी चढाते है। पूजा के समय ब्राह्मण कुछ पढ़ते हैं, पर उसे लोग समझ नहीं पाते हैं। लिंग के ऊपर रेशमी चाँदनी है। जिसके सहारे कई बत्तियॉ जलती रहती हैं। उस सादी मूरत को सभी लोग महादेव का लिंग कहते हैं। इस लिंग में प्रजनन और रक्षण दोनों के भाव निहित हैं। -इसीलिए स्त्रियाँ अपने छोटे बच्चों को भी निरोग कराने लाती हैं।"[६२]

विश्वनाथ मन्दिर के अलावा पीटर मण्डी ने गणेश चतुर्भुज और देवी के मन्दिर भी देखे। मन्दिर के द्वार पर अक्सर नंदी होते थे। वह मन्दिरों के सभा मण्डपों का भी वर्णन करता है। जहाँ उसने कुछ सुन्दर मूर्तियाँ देखीं। पटना से लौटते हुए पीटर मण्डी मुगलसराय २६ नवम्बर १६३२ ई० को पहुँचा। वहाँ उसे ज्ञात हुआ कि बनारस में भयंकर बिमारी फैली है। शहर के ६० प्रतिशत लोग या तो मर गये या भाग गये हैं। पीटर मण्डी को अपनी गाड़ियों की मरम्मत के लिए बनारस में दो दिन विश्राम करना जरूरी था। एक दिन वह श्मशान देखने गया। वहाँ चालीस मुर्दे जल रहे थे, और कुछ अर्धमृत मनुष्य पानी में स्वर्ग प्राप्ति के लिए उतार दिये गये थे।[६३]

---

[६१] वही, पृ० १२२,

[६२] टैंपिल, पूर्वोक्त, पृ० १२२, २३

[६३] वही, पृ० १७५,

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि पीटर मण्डी ने बनारस में साधुओं और फकीरों का भारी हंगामा भी देखा। इसमें हिन्दू, मुस्लिम, जोगी और नागे भी थे जो लोगों के दान धर्म पर अपनी जीविका चलाते थे। इनमें कुछ सडको पर बैठे थे, और कुछ मकबरों मे। पीटर मण्डी ने साधुओं के अखाड़ो को भी देखा। अखाडे का मुखिया घोड़े पर सवार होकर झंडा लेकर चल रहा था, और कुछ साथियों के हाथ में लम्बे बाँसों में बंधी चौकिया थीं। एक साधु सिंघा बजा रहा था। वे अधिकतर मोरछाल लिये जमातों में चलते थे। कुछ के हाथों मे बैठने के लिए वयाघ्र चर्म थे। साधु गेरूआ वस्त्र पहने थे, अधिकांश साधु जटा धारी थे। कुछ साधुओ के कमर में सिकड़ बंधा हुआ था, उनकी गुप्तेन्द्रियों पर काम निरोध के लिए तवे बॅधे थे। इनमें से कुछ साधुओं को वैद्यक का भी ज्ञान था पर उनमें अधिकतर तो अपनी पवित्रता के लिए प्रसिद्ध थे।[६४]

शाहजहॉ के शासनकाल में धार्मिक असहिष्णुता का एक अन्य उदाहरण तीर्थयात्रा कर का पुनः लगाया जाना था।[६५] शाहजहाँ ने जजिया कर नहीं लगाया, परन्तु उसने हिन्दुओं के धार्मिक विश्वासों से लाभ उठाकर धन प्राप्त करने का प्रयत्न अवश्य किया। सामान्यजन के लिए तीर्थयात्रा कर भार स्वरूप था। इस तीर्थयात्रा कर के विरूद्ध बनारस के हिन्दू विद्वान कवीन्द्राचार्य सम्राट के पास एक शिष्टमण्डल के साथ गये, और इनके सतत् प्रार्थना करने के बाद शाहजहाँ ने इस कर की वसूली समाप्त कर दी। इससे हिन्दुओं को पुनः धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई।[६६] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि इस कार्य से कवीन्द्राचार्य को इतनी ख्याति प्राप्त हुई कि देश के लगभग १०१ विद्वानों ने इनको प्रशस्ति–संग्रह अर्पित किया। इन विद्वानों में बंगाल के प्रख्यात नैयायिक महामहोपाध्याय विश्वनाथ न्याय पंचानन का भी नाम आता है। कर

[६४] टॆंपिल, पूर्वोक्त, पृ० १७६–७७,

[६५] श्रीराम शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक नीति, पृ० १०४ देखे कवीन्द्राचार्य सूचीपत्र गायकवाड ओरियन्टल सीरीज, १९२१ ई०।

[६६] वही, पृ० १०४,

समाप्ति के आदेश पर बनारस के पण्डित वर्ग तथा हिन्दू जगत में खुशी की लहर आ गयी चारों ओर कवीन्द्राचार्य की प्रशंसा होने लगी और इन्हे लोगों ने विद्यानिधान और आचार्य की पदवियो से विभूषित किया। इन्हे बनारस के अनेक पण्डितो ने कवितावद्ध मानपत्र भी समर्पित किया।[९७]

इस प्रकार ऐसा ज्ञात होता है कि इन मानपत्रो मे कवीन्द्राचार्य की स्तुति मात्र की गयी है। ऐतिहासिक साम्रगी तो इनमें स्पष्ट नहीं होती है, जिसका संग्रह श्रीकृष्ण उपाध्याय ने कवीन्द्रचन्द्रोदय नामक ग्रन्थ मे किया है। कहा जाता है कि जब दरबारे आम में कबीन्द्राचार्य ने करूणामय शब्दों में इस सम्बन्ध में अपील की तो शाहजहाँ और दाराशिकोह की आखो मे ऑसू बहने लगे।[९८] कवीन्द्राचार्य गोदावरी नदी के तीर पुण्य भूमि नामक स्थान के निवासी थे। वेद, वेदान्त और अन्य शास्त्रों का अध्ययन करके वे सन्यासी होकर बनारस में रहने लगे तथा पण्डितों के अग्रणी बने। उनके हस्तलिखित पुस्तकों के अद्‌भुत संग्रह से उनके अगाध पाण्डित्य और विद्याव्यसन का पता चलता है।[९९] ऐसी अनुश्रुति है कि शाहजहाँ ने उन्हें सर्वविधानिधान की उपाधि से विभूषित किया था। कवीन्द्राचार्य ने 'कवीन्द्रकल्पलता' में शाहजहाँ का प्रशस्तिगान किया है। यह संस्कृत के सम्मानित विद्वान थे। सरस्वती इनकी उपाधि थी। इनका प्रभाव दाराशिकोह और शाहजहाँ दोनों पर ही था। कवीन्द्राचार्य का सर्वश्रेष्ठ कार्य शहजहॉ द्वारा बनारस और प्रयाग आने वाले यात्रियों पर लगने वाले तीर्थ यात्रा कर की समाप्ति थी।[१००] सम्भवतः शाहजहाँ के मन्दिर विध्वंस का आदेश अधिक समय तक प्रभावी नहीं रहा, क्योंकि कुछ समकालीन इतिहासकारों के अनुसार शाहजहॉ सामान्य रूप से मन्दिर विनाशक के नाम से विख्यात था, परन्तु उसके शासन के अन्तिक समय में मन्दिरों के

---

[९७] कवीन्द्राचार्य का गुणगान करने वाले हिन्दी कवियो के नाम के लिए परिशिष्ट देखे।

[९८] बनारसी प्रसाद सक्सेना, पूर्वोक्त, पृ० २७४,

[९९] कबीन्द्राचार्य सूचीपत्र, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, पूना–१६२१

[१००] एच. डी. शर्मा तथा एम. एम. पाटकर (सम्पा.) कवीन्द्र चन्द्रोदय, पूना, १६३६, पृ० १–४,

विनष्ट करने का अधिक उदाहरण उपलब्ध नही है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि दाराशिकोह के बढते हुए प्रभाव के कारण शाहजहॉ ने अपनी नीति में परिवर्तन आरम्भ कर दिया था।[१०१]

पण्डित राज जगन्नाथ तैलंग ब्राह्मण थे। काशी इनकी जन्म भूमि न होते हुए भी कर्मभूमि थी।[१०२] पण्डितराज जगन्नाथ सम्राट शाहजहॉ और उनके पुत्र दाराशिकोह के प्रेमपात्र थे।[१०३] इन्होने अपना यौवन काल दिल्ली के बादशाह शाहजहॉ की छत्रछाया में व्यतीत किया था, जैसा कि पण्डितराज ने स्वय अपने भामिनीविलास मे लिखा है– दिल्ली बल्लभ पाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः।

पण्डितराज जगन्नाथ ने शाहजहॉ के ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोह को संस्कृत पढ़ाई थी। अपने जगदाभरण काव्य में इन्होंने दाराशिकोह की प्रशंसा की है। शाहजहॉ के कृपा पात्र खान–खाना आसफ के विषय में आसफ विलास भी लिखा। इनको पण्डितराज की उपाधि शाहजहॉ द्वारा दी गई थी।[१०४]

"सार्वभौम श्री शाहजहॉ प्रसाद पण्डितराज पदवी विराजते।" १५ जून १६४५ ई० को दारा शिकोह चुनार, रोहतास और इलाहाबाद क्षेत्र (सूबे) का सूबेदार नियुक्त हुआ। चूंकि वह इस समय कश्मीर में भ्रमण कर रहा था। अतः इसके उपस्थित न रहने के कारण बाकी बेग को जो दारा के अन्तः पुर का मुख्य ख्वाजा था, इस प्रान्त में उसका प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। अपने ग्रन्थ सिर–उल–असरार (सिर्रे अकबर) के परिचय में दारा शिकोह ने लिखा है कि उसने कुछ सन्यासियों और पण्डितों को एकत्र किया जो हिन्दू विद्या केन्द्र के निवासी थे, और वे वेद तथा उपनिषदों के विद्वान थे और उनकी सहायता से छः मास में उपनिषदों के अनुवाद को पूरा कर दिया। यह कार्य

---

[१०१] श्रीराम शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक नीति, पूर्वोक्त, पृ० १०६,
[१०२] आचार्य बलदेव उपाध्यायः काशी की पाडित्य परम्परा, वाराणसी, १६८३, पृ० ६६,
[१०३] पुरूषोत्तम शर्मा चतुर्वेदीः हिन्दी रसगंगाधर, काशी, १६२७,पृ० ५५
[१०४] वही,

सोमवार २६ रमजान १०६७ हिजरी (२८ जून १६५७ ई०) को दिल्ली मे उसके महल निगमबोध में सम्पादित हुआ।[१०५]

नेविल लिखता है कि दाराशिकोह ने अपने जीवन के कई वर्ष बनारस में व्यतीत किये। यहॉ पर इसका नाम एक मुहल्ले के नाम पर दारानगर के नाम से सुरक्षित है। लेकिन इस स्थल पर शाही इमारत के कोई चिन्ह नही हैं। वह लिखता है कि यहॉ पर दारा ने १५० पण्डितों की सहायता से उपनिषदों का फारसी अनुवाद तैयार किया।[१०६] डॉ कानूनगों नेविल के इस कथन से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार बादशाहनामा में दारा शिकोह की जो गतिविधि दी हुई है उसके आधार पर यह निसन्देह सिद्ध होता है कि १६५७ ई० में दाराशिकोह न तो बनारस में और न इलाहाबाद में ही था।[१०७]

डॉ० कानूनगों लिखते है कि दाराशिकोह का महान प्रथम सार्वजनिक कार्य से प्रतीत होता है कि अपने प्रभाव के उपयोग द्वारा उसने प्रयाग और बनारस में यात्री कर की छूट प्राप्त कर ली। हिन्दू दर्शनशासत्र के अध्ययन में उन्नति से और हिन्दू सन्यासियों पर योगियों की संगत से हिन्दुओं के प्रति उसकी मानसिक सहानुभूति उनके हितार्थ सक्रिय रूचि के रूप में विकसित हुई।[१०८]

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी धार्मिक उदारता का परिचय देते हुए दाराशिकोह ने विश्वनाथ मन्दिर के एक पण्डा भिमराम को एक पट्टा १६५५–५६ ई० में लिखकर दिया था, जिसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है – बनारस के मुत्त सद्दियान को यह जानना चाहिए कि बमूजिब फरमान आलीशान के करार पाया कि बनारस के

[१०५] कालिकारंजन कानूनगोः दाराशिकोंह, आगरा, १६५८ पृ० ७२–७३
[१०६] बनारस गजेटियर, पूर्वोक्त, पृ० १६६
[१०७] कालिकारंजन कानूनगों, पूर्वोक्त पृ० ७३
[१०८] वही, पृ० १८६

महादेव विश्वेश्वर वगैरह की पूजा मजकूर के लवाजयात जो भिमराम वगैरह लिगियान से ताल्लुक रखता है उसे बिना वजह रोक–टोक न करे।[१०९]

सितम्बर १६५७ ई० में शाहजहॉ बीमार पड़ गया। इस प्रकार शीघ्र ही इसके मरने की अफवाह फैल गयी। शाहजहॉ के तीनों पुत्र शाहशुजा, मुराद और औरंगजेब क्रमशः बंगाल, गुजरात और दक्षिण के सूबेदार थे। प्रत्येक दिल्ली के सिंहासन पर अपना अधिकार करना चाहते थे। तीनों छोटे भाई बडे भाई दारा से ईर्ष्या करते थे। दाराशिकोह ज्येष्ठ होने के कारण शाहजहॉ के इच्छानुसार साम्राज्य का उत्तराधिकारी समझा जाता था। इधर औरंगजेब और मुराद मिलकर आक्रमण की योजना बना रहे थे। दूसरी ओर बंगाल का गवर्नर शाहशुजा राजमहल में आपने राज्यारोहण की रस्म पूरी कर रहा था। यह रस्म पूरी कर वह आगरे की ओर बढा और फरवरी १६५७ ई० के प्रारम्भ में बनारस पहुँचा।[११०]

अतः ऐसा प्रतीत होता है कि शाहशुजा के अभियान को रोकने के लिए शाहजहां ने राजा जयसिंह और दिलेरखां रोहिला तथा दाराशिकोह के दूसरे पुत्र सुलेमान के मौजूदगी में एक विशाल सेना दिसम्बर १६५७ ई० में बनारस भेजी।[१११] जब सेना बनारस पहुंची तो शाहशुजा भी अपने सैनिकों के साथ युद्ध के लिए तैयारियॉ शुरू कर दी। इस प्रकार ऐसा ज्ञात होता है कि अगले दिन राजा जयसिंह से लड़ने के लिए आगे बढ़ा लेकिन जयसिंह ने उसके आगमन की सूचना पाकर वहॉ से निकल गया।[११२] मआसिर–उल–उमरा में लिखा है कि – जब दोनों सेनायें बनारस के पास पहुँची तब

---

[१०९] काशी विश्वनाथ मन्दिर, ज्ञानमण्डल लि० वाराणसी, पृ० ६–७ दे० सीताराम चतुर्वेदी "यह बनारस है"

[११०] कालिका रंजन कानूनगों: (१६५८), पूर्वोक्त, पृ० ११०

[१११] वही,

[११२] इलियट एवं डाउसन भाग–७ पृ १५३–१५४ (मुहम्मद हाशिम, खाफी खॉः मुन्तखव–उल–लुबाव)

शुजा जो विषयासक्त, असावधान अदुरदर्शी तथा रणनीति से अनभिज्ञ था, डर कर भाग गया।[११३]

औरंगजेब और मुराद ने मिलकर दारा की सेना को २५ अप्रैल १६५८ ई० मे घरमत के युद्ध में फिर ८ जून १६५८ में सामूगढ के युद्ध में पराजित किया। उसके बाद औरगजेब मुराद को छलपूर्वक कैद करके दिल्ली पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् उसने दो सेनाएं भेजीं एक दाराशिकोह को पकडने के लिए लाहौर की ओर दूसरी सेना शाहशुजा को परास्त करने के लिए इलाहाबाद, बनारस की ओर। तत्कालीन इतिहासकार खाफी खॉ अपने ग्रन्थ मुन्तखब–उल–लुबाब[११४] में लिखता है कि ऐसा समाचार मिला कि औरंगजेब के विरूद्ध युद्ध करने के विचार से २५,००० सवार और एक जोरदार तोपखाने के साथ मुहम्मद शुजा ने बंगाल से कूच कर दिया है। उसे मालूम हुआ कि मुहम्मद शुजा बनारस तक आ पहुँचा है और रामदास ने जिसको दाराशिकोह ने दुर्गपति नियुक्त किया था, दुर्ग शुजा को समर्पित कर दिया है। चीतापुर ओर इलाहाबाद के दुर्गाध्यक्ष भी अपने – अपने दुर्गों को समर्पित करके उससे मिल गये हैं। मुहम्मद शुजा ने सेठों से ऋण के नाम पर तीन लाख रूपये ले लिए हैं और उसकी कूच जारी है। उसने जौनपुर की ओर सेना भेजी है और दुर्ग को घेर लिया है। दुर्गपति किला समर्पित करके शुजा से मिल गया। शुजा का पीछा किया गया अन्त में उत्तर प्रदेश में स्थित खनुआ नामक स्थान पर औरंगजेब ने उसे परास्त कर दिया।[११५] इस प्रकार उत्तराधिकार के संघर्ष में अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियों का नामोनिशान मिटाकर वह पूर्णरूपेण भारत का सम्राट बन गया।

---

[११३] शाह नवाज खाः मआसिर–उल–उमरा (हिन्दी अनुवाद) वाराणसी सं० २००४, भाग–३, पृ० ४६०, भाग–४, पृ० २३४

[११४] इलियट एण्ड डाउसन, भाग–७, पूर्वोक्त, पृ० १६५–६६

[११५] वही, पृ० १६६

औरगजेब (१६५८–१७०७ ई०) इस्लाम के राजत्व तथा राजसत्ता सम्बन्धी नीति को मानने वाला था। कुछ इतिहासकारों के विचारानुसार औरंगजेब के पदारूढ होने के साथ ही असहिष्णुता के युग, का प्रारम्भ हो जाता है।[११६]

किन्तु, ऐतिहासिक साक्ष्यों के विश्लेषण ये ऐसा प्रतीत होता है कि औरंगजेब गद्दी पर बैठते ही कोई ऐसा कार्य नही करना चाहता था जिससे उसके प्रति लोगों मे असंतोष और विद्रोह की अग्नि भड़के । इस नीति का ज्वलन्त उदाहरण हमें बनारस के २८ फरवरी १६५६ ई० के एक फरमान से मिलता है।[११७] यह फरमान औरंगजेब ने अबुल हसन के नाम भेजा था। यह शाहजादा मोहम्मद के कहने से जारी हुआ था – "हमारे शरीयत कानून के अनुसार यह निश्चय हुआ है कि पुराने मन्दिरो को नहीं गिराया जाय, परन्तु नया मन्दिर नहीं बनने दिया जाय। हमारे दरबार मे सूचना आई है कि कुछ लोगों ने – बनारस में और उसके आस–पास रहने वाले हिन्दुओं को सताया है। वहां जिन ब्राम्हणों के पास पुराने मन्दिर हैं उनको भी तंग किया गया है और ये लोग इन ब्राम्हणों को अपने स्थानों से पृथक करना चाहते हैं। अतः हमारा शाही आदेश है कि कोई व्यक्ति उन स्थानों के ब्राम्हणों और हिन्दुओं को न सताये।"

औरंगजेब के शासन काल में बनारस का फौजदार सादिक बख्शी था। अर्सला खॉ जो कि अलाबर्दी खॉ का प्रथम पुत्र था औरंगजेब के शासन काल के ५ वें वर्ष में ख्वाजा सादिक बख्शी के स्थान पर बनारस का फौजदार हुआ।[११८]

इस प्रकार सिंहासनारोहण के पश्चात् कुछ वर्षों तक सम्राट ने अपनी असहिष्णुता की नीति का पर्दाफाश नही किया। किन्तु औरंगजेब के हिन्दुओं के प्रति

---

[११६] श्री राम शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक नीति, पूर्वोक्त, पृ० १४६

[११७] जदुनाथ सरकारः औरंगजेब, कलकत्ता १९२८, भाग–३, पृ० २८१ दे श्रीराम शर्माः मुगल शासको की धार्मिक नीति, पूर्वोक्त, पृ० १४६, औरंगजेब का यह फरमान अभी भी भारत कला भवन का० हि० वि० में उपलब्ध है जिसकी छाया प्रति परिशिष्ट में दी गयी है।

[११८] शाह नवाज खॉः मआसिर–उल–उमरा, पूर्वोक्त, भाग–२, पृ० २७०

आरम्भिक वर्ताव से यह नहीं समझना चाहिए कि बनारस में सब अच्छा ही था। काल भैरव के उत्तर तथा वृद्धाकाल के दक्षिण पूर्व की ओर कृत्तिवासेश्वर का प्रसिद्ध तथा वैभवशाली मन्दिर था। उसको तोड़कर उसके स्थान पर १६५६ ई० मे आलम गीरी मस्जिद बनवाई थी।[११९] मन्दिर के पूर्व मे सलग्न हंसतीर्थ था जो अब भी हरतीरथ पोखरे के नाम से प्रसिद्ध है। इस मन्दिर के महात्मय का इसी बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि आज भी महाशिवरात्री के दिन सहस्त्रों स्त्री पुरूष इस मस्जिद के प्रांगण में स्थित एक पत्थर का पूजन करते हैं।[१२०]

---

[११९] पण्डित कुबेरनाथ सुकुल, वा० वै० पूर्वोक्त, पृ १५२
[१२०] पण्डित कुबेरनाथ सुकुल वा० वै० पूर्वोक्त पृ १५२

कृतिवासेश्वर के स्थान की पूजा तो आलमगीरी मस्जिद के भीतर भी शिवरात्रि के दिन होती है –

"कलौ स्थानानि पूजयेत।"[१२१]

सन् १६६६ई० मे बनारस के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण घटना घटित हुई। छत्रपति शिवाजी औरंगजेब के दरबार मे गये, लेकिन वहाँ उन्हे अपमानित होने और औरंगजेब को कोधित होने के कारण उन्हे कैद कर लिया। कुछ ही दिनो बाद शिवाजी बडे ही कौशल से कैद से निकल भागे। शिवाजी के लिए महाराष्ट्र का सीधा मार्ग बनारस होकर नही था, किन्तु उन्होने मुगल गुप्तचरो की ऑखो से बचने के लिए मथुरा, इलाहाबाद, बनारस, गया और पुरी होकर रायगढ पहुँचने की योजना बनाई। इलाहाबाद में गगा–यमुना के संगम पर स्नान करने के बाद शिवाजी बनारस पहुँचे। अल्तेकर ने बनारस के इतिहास मे लिखा है कि मराठी भाश्वर, जो १६वी सदी के मध्य में लिखी गयी, से ज्ञात होता है कि औरंगजेब से मिलने जब शिवाजी आगरा जा रहे थे, तब वे बनारस मे रूके थे। भाखर मे दिये गये विवरण से ज्ञात होता है कि "शिवपुर" का नाम शिवाजी के नाम पर रखा गया। पचपाण्डव मन्दिर जो शिवपुर मे है, उसके पास कुऑ का निर्माण शिवाजी ने करवाया था।[१२२]

लौटते समय बनारस मे शिवाजी ने प्रभातकाल मे गगा स्नान कर विश्वनाथ मन्दिर मे पूजन किया। कहा जाता है कि शिवाजी ने पचगगा घाट पर स्नान कर एक ब्राहमण को स्वर्ण मुद्रा भी दी। जब ब्राहमण मुद्रा प्राप्त कर शिवाजी का मुख निहारने लगा तब शिवाजी तुरन्त वहाँ से चले गये। इधर आगरे से आये हुए एक हरकारे द्वारा बादशाह की ओर से शिवाजी को गिरफ्तार करने की घोषणा के होते ही शिवाजी अंधेरे में ही बनारस से आगे निकल गये।[१२३]

---

[१२१] पूर्वोद्धत, पृ०–१२६,
[१२२] ए० एस० अल्तेकर: बनारस का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ० ३८,
[१२३] भीमसेनी विघालंकार, शिवाजी, दिल्ली, १६४३, पृ० ८५,

यह समाचार औरगजेब के लिए घाव पर नमक छिडकने के समान था। इससे प्रतीत होता है कि औरगजेब का कोध बढा होगा। दिल्ली के तख्त पर मजबूती से पैर जमाने के बाद औरगजेब ने बुतपरस्तो से बदला लेने का निर्णय किया। तत्कालीन लेखक मुहम्मद साकी मुस्तइद्दखॉ की मआसिर–ए–आलिमगिरी[१२४] के द्वारा इसका पूरा–पूरा वर्णन मिलता है।–

"हिजरी १०७६ई० (१८ अप्रैल १६६६ई०) के दिन–दिन (धर्म) के रक्षक बादशाह सलामत के कानो मे खबर पहुँची कि ठट्ठा, मुल्तान के सूबो मे और विशेषकर बनारस में मूर्ख ब्राह्मण अपनी पाठशालाओ मे तुच्छ, ग्रंथों की व्याख्या किया करते हैं। मुस्लिम और हिन्दू विद्यार्थी दूर–दूर से इन घृणित विद्याओं को सीखने के लिए उनके पास आते हैं।

धर्म रक्षक बादशाह ने इन सूबो के समस्त सूबेदारो को आदेश दिया कि तत्परता के साथ काफिरो के मन्दिरो और पाठशालाओ को नष्ट कर दिया जाय। उन्हें इस बात की भी सख्ती से ताकीद की गयी कि वे सब प्रकार की मूर्ति पूजा सम्बन्धी शास्त्रों का पठन–पाठन और मूर्ति–पूजा बन्द कर दे।"[१२५]

हमीदुद्दीन ने अपने ग्रन्थ अहकाम–ए–आलमगिरी में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार से किया है। इस बीच औरंगजेब अपनी धार्मिक कट्टरता का खुलकर प्रर्दशन करने लगा था। अप्रैल १६६६ ई० मे उसने प्रान्तीय सूबेदारो को नास्तिको के सभी मन्दिरो और विद्यालयो को नष्ट करने और उनकी शिक्षाओं और धार्मिक कृत्यों को बिल्कुल बन्द करने का आदेश दिया घुमक्कड हिन्दू सत उद्धाव वैरागियों को पकड़कर पुलिस की हवालात मे बन्द कर दिया गया। अगस्त १६६६ई० में बनारस के

---

[१२४] इलियत एवं डाउसन, भाग–७, पूर्वोक्त, पृ० १३०,
[१२५] पूर्वोद्ध,

गया। यह शायर अपनी जवानी मे भी अपने धार्मिक गौरव का निर्वाह–शाहजहॉ बादशाह के दरबार मे कर चुका था, जब उसने स्वात्माभिमान भरे शब्दो मे कहा था–

मरा दिलेरूत बेकुफ़आश्ना कि सदबारश।

बेकाबे बुदर्मो वाजिश बरहमन आबर्दम।।

अर्थात मेरा हृदय हिन्दू धर्म से इतना ओत–प्रोत है कि यदि सौ बार भी काबा जाऊॅ तो भी वहॉ से ब्राह्मण रहकर ही लौटूॅगा। उस समय भी शहजहॉ के कोधों से वह प्राण दण्ड पाकर भी दरबारियों की हाजिर जवाबी से बच पाया था, और अब तो वह वृद्ध था, उसके प्राण जाने का कोई भय ही नहीं था तो फिर क्यो चुप रहता। यही मनोवृत्ति थी, जिसने उन कठिन दिनो मे हिन्दू धर्म तथा संस्कृति की रक्षा की।[१३०]

ऐसा प्रतीत होता है कि १६६६ई० के आदेश द्वारा साम्राज्य भर के हिन्दुओ की पाठशालाओ एव मन्दिरो को गिराने के लिए एक सामान्य आदेश जारी किया गया था।[१३१] इस आदेश मे यह आशा प्रकट की गयी थी कि उक्त प्रतिबन्धों के फलस्वरूप कुछ मूर्ति पूजक इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लेंगे। कुछ ब्राहमणों की त्रुटियो के कारण समस्त हिन्दुओ के पूजा स्थलो को विध्वंस करना अन्याय था। औरंगजेब द्वारा धार्मिक अत्याचार एवं हिसात्मक नीति का अनुसरण करने का जो कारण सरकारी इतिहास में दिया गया है, वह एक प्रकार का बहाना था।[१३२] इस प्रकार ज्ञात होता है कि आदेश जारी होने के बाद विश्वनाथ मन्दिर के प्रधान पुजारी ने विध्वस से थोडी

---

[१३०] कुबेरनाथ सुकुल, वा० वै० पूर्वोक्त, पृ० १४६–१४७,

[१३१] मुहमम्द साकी मुस्ताइद खॉ, माअसिर–ए–आलमगीरी,– (बिबलिओथिका इण्डिका) सम्पादक, अहमद अली, १८७०–३,पृ० ८१,

[१३२] श्री राम शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक नीति, पूर्वोक्त, पृ० १५२,

दूर पूर्व मन्दिर के मूर्ति को उठाकर पड़ोस के एक कुएँ मे डाल दिया और उस समय से यह कुऑ एक तीर्थ स्थान के रूप में माना जाता है।[१३३]

बनारस मे औरंगजेब ने केवल तीन देवस्थलो (विश्वेश्वर, कृत्तिवासेश्वर तथा बिन्दुमाधव) पर मस्जिद बनवायी, क्योकि ये तीन स्थान उस समय बहुत प्रसिद्व तथा लोकप्रिय थे।[१३४] यह भी कहा जाता है कि उसने बनारस मे जंगमबाड़ी के शिवमन्दिर को नष्ट करने का भी प्रयास किया था, परन्तु वे इस कार्य में सफल न हो सके।[१३५] जगमबाड़ी मठ से प्राप्त एक लेख के अनुसार औरगजेब जब बनारस आया और मन्दिरों के तोड़ने के अभियान में जंगमबाडी मठ भी पहुॅचा। परन्तु प्रवेश करते ही उसे लगा कि कोई भीमकाय काली देव छाया उसकी ओर लाल–लाल नेत्रों से निहार रही है और उसे निगल जायेगी। साम्राज्य और सैन्यबल से सुसज्जित सम्राट औरंगजेब कॉप उठा और तत्काल बाहर आया और मठ के विध्वंस का विचार त्याग उसने भी इस मठ को भूमि दान की। असली हस्ताक्षरयुक्त फरमान मठ मे सुरक्षित है।[१३६]

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि विश्वनाथ मन्दिर को ध्वस्त करने के दो कारण हो सकते थे एक तो दारा से चिढ क्योकि वह यहॉ संस्कृत पढ़ने आया था तथा उसी ने विश्वनाथ मन्दिर का पट्टा लिखा था। दूसरे मेवाड़ाधिपति राजसिह से उसका पुराना बैर था। राजसिंह ने १६६५ई० में आश्विन सदी शुक्रवार को बनारस आकर बड़े धूम–धाम से विश्वनाथ जी का पूजन किया था।

---

[१३३] वही, पृ० १५३, मुहम्मद साकी मुस्ताइद खॉ, मअसिर–ए–आलमगीरी, पूर्वोक्त, पृ० ८८, एम० फारुकी, औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स, बाम्बे, १९३५, पृ१२७–२८,
[१३४] पण्डित कुबेर नाथ सुकुल, पूर्वोक्त, पृ० ८२–८३,
[१३५] श्री राम शर्मा, मुगल शासकों की धार्मिक नीति, पूर्वोक्त, पृ० –१५३,
[१३६] इस सम्बन्ध में संकलित फरमान की छाया प्रति परिशिष्ट में दी गयी है,

फलस्यरूप १६६६ई० मे औरगजेब ने विश्वनाथ मन्दिर को तोडकर ज्ञान वापी मस्जिद बनवा दी।[१३७]

मासीर–ए–आलमगीरी मे उस समय के हिन्दू मन्दिरों के विनाश लीला का इस प्रकार विवरण है। काफिरों ने एक मस्जिद को गिरा दिया जिसका निर्माण एक कारीगर अथवा मजदूर ने किया था। जब यह सूचना शाहयासीन के पास पहुॅची वह माण्डवा से बनारस आया और मुस्लिम जुलाहो को एकत्र करके एक बहुत बडे मन्दिर को गिरा दिया। सैय्यद नामक व्यक्ति ने जिसका व्यवसाय कारीगरी था, अब्दुल रसूल के कहने पर बनारस मे एक मस्जिद बनाने का निश्चय किया और इसी आधार पर नीव डाली गयी। उसके पास ही मन्दिर था। उसके आस–पास राजपूत जाति के लोग रहते थे। रात्रि में राजपूतों ने मस्जिद को गिरा दिया। यह प्रक्रिया तीन–चार बार दोहरायी गयी। दूसरी जुलाहो और मुसलमानों ने भी कुछ मन्दिर नष्ट किये।[१३८]

इस्लाम धर्म का प्रचार करने तथा काफिरों (हिन्दुओं) को नीचा दिखाने के लिए सम्राट ने १२ अप्रैल १६७६ई० के आज्ञ द्वारा हिन्दुओं पर पुन· जजिया कर लगा दिया गया। जजिया की जॉच तथा वसूली के लिए समस्त गैर मुस्लिम जनता को तीन श्रेणियों में बॉटा गया था जिसमे प्रथम श्रेणी वाले ४८ दिरहम, द्वितीय श्रेणी वाले २४ दिरहम, तथा तृतीय श्रेणी वाले १२ दिरहम कर प्रति वर्ष जजिया के रूप में दिया करते थे। सरकारी नौकरियों से भी हिन्दुओं की संख्या समाप्त करने के आदेश देने के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अन्य प्रतिबन्ध भी लगाये गये। तीर्थ यात्रा कर पुनः लगा दिया गया।[१३९]

---

[१३७] विश्वंनाथ मुखर्जी, वाराणसी, पूर्वोक्त, पृ० २१,

[१३८] मुहम्मद साकी मुस्ताद खॉः मासीर–ए–आलमगीरी, पूर्वोक्त, पृ०–१४१,

[१३९] पीटर मण्डी, ट्रेवल्स इन यूरोप एण्ड एशिया, १६३०–३४, स०आर० टेम्पिल, लन्दन, १९१४, वाल्यूम–२, पृ० ८२,

बर्नियर के अनुसार सूर्यग्रहण के अवसर पर तीन लाख रूपया राज्य को तीर्थ यात्रा कर के रूप मे प्राप्त हुआ।[५०] १६८८ई० मे हिन्दुओ के धार्मिक उत्सवो पर होने वाले समारोह भी बन्द कर दिये गये। औरगजेब ने धर्म परिवर्तन सम्बन्धी कार्यवाही १६६६ई० मे आरम्भ की और इसे अपने जीवन पर्यन्त जारी रखा, अपनी धार्मिक नीति के कारण वह हिन्दू प्रजा की स्वामिभक्ति से हाथ धो बैठा।[५१]

इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि औरंगजेब के आज्ञा से विश्वनाथ मन्दिर के तोडे जाने के दस वर्षो के भीतर ही विश्वनाथ मन्दिर की पुन. स्थापना हो गयी, यह स्थान भी अविमुक्तेश्वर के पुराने प्रागण का ही दक्षिणी भाग था। यहॉ पर एक कोने मे विश्वेश्वर की स्थापना हुई। इस बात का प्रमाण इन घटनाओ से मिलता है कि–१६७२ ई० मे रीवॉ नरेश महाराजा भावसिह काशी आये थे, और उनके चार वर्षो के बाद १६७६ ई० मे उदयपुर के महाराणा जगतसिह तथा बीकानेर नरेश के पुत्र खुजावन सिह बनारस यात्रा पर आये थे, और उन्होने विश्वेसर के नये शिवायतन के सन्निकट शिव लिगो की स्थापना की जो आज भी विश्वनाथ मन्दिर के गर्भ गृह के द्वार के दोनो ओर विद्यमान है।[५२]

इस प्रकार उनकी इस यात्रा का विवरण उनके तीर्थ पुरोहितों की बहियो में मिलता है। इस प्रकार प्राय· सौ वर्षो तक विश्वनाथ का शिव लिग अत्यन्त संकुचित रूप में ही पूजा जाता रहा।[५३] १७८०ई० मे इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई ने वर्तमान मन्दिर का निर्माण करवाया, उनके तत्सम्बन्धी लेख मे मन्दिर बनवाने की बात कही गयी है, विश्वेश्वर की स्थापना करने का उल्लेख नहीं है। इससे भी उपर्युक्त लिखे

---

[५०] बर्नियर एफः ट्रेवल्स इन द मुगल अम्पायर (१६५६–१६६८) सम्पादित वी०ए० स्मिथ एण्ड ए० कांस्टेबल, लन्दन, पृ० ३०३,

[५१] श्रीराम शर्मा मुगल शासको की धार्मिक नीति, पूर्वोक्त, पृ० – १६५, १६०, २०५,

[५२] पण्डित कुबेर नाथ सुकुल, वा०वै० पूर्वोक्त, पृ० १४७,

[५३] पूर्वोद्ध,

मत की पुष्टि होती है। वहाँ लिखा है कि मन्दिर का निर्माण भाद्रपद कृ–८, सवत १८३४ (शके १६६६) को पूरा हुआ।[४४]

इस मन्दिर में पॉच मण्डप बनाने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु विश्वनाथजी के एक कोने मे होने के कारण पूर्व दिशा मे मण्डप नही बन पाया। यह भी इस बात का प्रमाण है कि विश्वनाथ की स्थापना मन्दिर निर्माण के समय नही हुई, कालान्तर मे महाराजा रणजीत सिह ने विश्वनाथ मन्दिर के शिखर पर सोने का पत्तर चढ़वाया जो आज भी विद्यमान है।[४५]

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का क्रमिक पतन आरम्भ हो गया। इसका प्रमुख कारण १७०७ई० के बाद के सम्राटो का विलासी तथा कमजोर होना था। केन्द्रीय प्रशासन दरबार की दलगत राजनीति, अमीरो की महत्वाकांक्षाओ, राजपूताना और पंजाब की समस्या से ग्रसित था। मुगल प्रशासन मे बहुत कम सूबेदार ऐसे थे जो दायित्वो के निर्वाह मे सलग्न थे अन्यथा शेष ने दरबारी राजनीति मे अधिक रूचि ली। कुछ मुगल अमीरों ने अपनी विद्रोही भावना का लाभ उठारकर स्वतन्त्र राज्य एवं रियासते स्थापित कर ली। सन् १७२२ ई० मे सआदत खॉ बुरहानुल मुल्क ने अवध की सूबेदारी प्राप्त की।[४६] उसकी आकांक्षा सदैव दरबार में सर्वोच्चता स्थापित करने की रही। सआदत खॉ ने अवध को वशानुगत शासन का सूबा बनाने का प्रयास किया और उसने मुर्तजा खॉ नामक अमीर को बनारस, चुनार, आजमगढ, गाजीपुर और जौनपुर की सरकारे इजारे पर ले ली।[४७]

इस कारण इलाहाबाद सूबे के अधिकांश क्षेत्रों पर उसका अधिकार हो गया। इस अधिकार से यह स्पष्ट होता है, कि अब सआदत खॉ को इस भूमि पर कृषि में

---

[४४] वही,

[४५] वही,

[४६] शाहनवाज खॉ, मआसिर,उल–अमरा, खण्ड–१, एच० वेवरीजकृत अग्रेजी अनुवाद पृ० – ४६५,

[४७] बलवन्त नामा, पृ० – २, ८ आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव, अवध के दो नवाब, पृ० – ४७,

सलग्न शक्तिशाली जमीदारो को नियन्त्रित करना था ताकि वे भू राजस्व की निर्धारित राशि निश्चित समय पर वसूल करके, केन्द्र को प्रेषित कर सकें। इसी कारण से अवध के नवाबो ने भी जमीदारो पर नियन्त्रण करने हेतु सैनिक अभियान चलाया था। इस काल में नवाबो और जमीदारो के मध्य सैनिक सघर्ष आरम्भ हो गया। इस समय के नवाबो का मुगल दरबारो मे भी रूचि थी, जिसके कारण उनकी पकड जमीदारो पर कमजोर पड़ गयी। जमीदारों ने स्थिति का लाभ उठाकर राजनीतिक शून्य व अपनी बढ़ती शक्ति का लाभ उठाकर स्वायत्त राज्य बनाने आरम्भ कर दिये। जमीदारो ने नवाबो के शत्रुओ के विरूद्व षड़यन्त्र में भी हिस्सा लिया और नवाबो के शत्रुओ से भी समझौते किये और उनकी शरण ली। १७५० ई० के बाद तो अंग्रेजो ने भी बनारस क्षेत्र के भू–भाग में रूचि लेनी प्रारम्भ कर दी। अंग्रेजी सत्ता ने भी अठारहवीं शताब्दी के सातवें–आठवे दशक मे जमीदारो पर नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयास किया। जिसके कारण अग्रेजी सेनाओ और जमीदारो में संघर्ष आरम्भ हो गया। इसके परिणाम स्वरूप १८वीं शताब्दी मे जमीदारों का अवध के नवाब तथा अंग्रेजी सत्ता से सघर्ष आरम्भ हो गया।

मुगल सम्राट औरंगजेब के दक्षिण चले जाने और वहॉ के युद्धो मे व्यस्त रहने के कारण उत्तरी भारत मे राजनीतिक वातावरण (खासकर, बनारस सरकार) अस्थिर हो गया। छोटे–छोटे शासको में शासक के प्रति भय कम हो गया तथा वे मुगल साम्राज्य के नियमो की अवहेलना करने लगे। विभिन्न मुगल सरदारों, फौजदारों और शक्तिशाली जमींदारों ने भी विद्रोही परम्परा को अपनाया। मुगल सम्राट बहादुर शाह प्रथम फरूखसियर और मुहम्मद शाह के समय मे स्थिति निरन्तर बिगडती गयी।

सरकार [illegible] में विद्रोह

मुगल सम्राट बहादुर शाह के समय में प्रशासन अव्यवस्थित हो गया। इसका लाभ, उठाकर पूर्वी जिलो में भी विद्रोह हुए स्थानीय सरदारों और जमीदारों ने स्थिति

का लाभ उठाकर भू–राजस्व देने से इनकार कर दिया। इन स्थानीय शासको ने लूटपाट की प्रक्रिया भी आरम्भ कर दी। परगना कसबार में स्थित जखिनी के शक्तिशाली जमीदारो ने इस भूभाग में अपने पूर्वजो की भॉति स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के लिए बनारस सरकार से मुगल अधिकारियो को निकाल दिया और इस क्षेत्र मे लूटपाट आरम्भ कर दी। अन्त मे फरूखसियर के साथ मे इन विद्रोहियों के विरूद्ध शाही सेना ने प्रयाण किया और विद्रोह को पूर्णतया कुचल दिया गया।[१४८]

सरकार बनारस के जमींदार एवं मीररूस्तम अली खॉ

१७१६ ई० से १७३८ ई० तक बनारस, चुनार, जौनपुर और गाजीपुर का प्रशासन मीर रूस्तम अली खॉ के हाथो मे केन्द्रित रहा। इस अवधि मे उसने नवाब मुर्तजा खॉ तथा अवध के नवाब सआदत खॉ के प्रतिनिधि के रूप मे भी कार्य किया। मीर रूस्तम अली खॉ ने राजस्व प्राप्ति के लिए कठोरता का प्रर्दशन किया। उदाहरणार्थ, गाजीपुर के परगना खरीद मे स्थित सुखपुरा नामक ग्राम के जमीदारो द्वारा राजस्व के भुगतान में शिथिलता बरतने का कार्य किये जाने के कारण मीर रूस्तम अली खॉ ने उनके विरूद्ध अभियान किया और गॉव के सभी लड़ाकू व्यक्तियों को मार डाला।[१४९] इसके बावजूद भी बनारस सरकार के जमीदार राजस्व का नियमित भुगतान नहीं करते थे।[१५०] इसका प्रमुख कारण मीर रूस्तम अली खॉ का लापरवाह होना था। जिसका लाभ मसाराम को हुआ जो अब उत्थान की ओर अग्रसर था। मंसाराम मीर रूस्तम अली की सेवा मे आया और अपनी शक्ति बढाकर उसने अवध

---

[१४८] बलवन्त नामा, पृ० – १, २

[१४९] विस्टन ओल्टम हिस्टारिकल एण्ड स्टैस्टिकल मेमायर पृ० – ८६,

[१५०] गुलाम हसेन खॉ, तारीख ए–बनारस, पृ० – १७ बी, १६ बी, सूबा, इलाहाबाद में सरकार तरहर के परगना चौरासी के जमीदारों के विरूद्ध रूस्तम अली खॉ को स्वयं जाना पडा। बलवन्त नामा, पृ–

के सूबेदार सफदरगज से जौनपुर, चुनार और बनारस को १३ लाख रूपये वार्षिक राजस्व की शर्त पर अपने पुत्र बलवन्त सिह के नाम इजारे पर ले लिया।[५१]

इस प्रकार १७१६ ई० से १७३६ई० के मध्य बनारस तथा अन्य सरकारो के जमीदारो ने स्वतन्त्र सत्ता बनाने का प्रयास किया परन्तु अवध के नवाब सआदत खॉ ने मुगल प्रतिनिधि के रूप मे उन पर नियन्त्रण रखा।[५२] किन्तु फिर भी विभिन्न अवसरो पर बहुत से जमीदारो ने अपनी शक्ति को बढाया। मसाराम का उत्थान एक जमींदार की मुगल व्यवस्था के अन्तर्गत एक कुटनीतिक विषय था जिसे तत्काल समझा न जा सका।[५३]

इधर बनारस के राजाओ की स्थिति मे भी परिवर्तन आ रहा था। १७३८ ई० मे बनारस में मसाराम की मृत्यु हो गयी तथा अब बनारस, जौनपुर और चुनार की व्यवस्था उसके पुत्र बलवन्त सिंह के हाथों में केन्द्रित हो गयी।[५४] बलवन्त सिंह ने अपनी महत्वाकांक्षाओं को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। उसने अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिए इलाहाबाद के सूबेदार अमीर खॉ के माध्यम से मुगल सम्राट मुहम्मदशाह को नजराने के रूप मे कुछ प्रेषित किया। इससे प्रभावित होकर मुहम्मद शाह ने बलवन्त सिंह को परगना, कसवार, अफराद, कटेहर और भगवत की जमींदारी प्रदान की तथा उसे राजा की उपाधि से विभूषित किया।

मुहम्मद शाह ने बलवन्त सिंह को इन परगनों पर अधिकार रखने का प्रमाण पत्र भी प्रदान किया। बलवन्त सिंह ने अपने पूर्वजो के निवास स्थान मंशापुर मे एक

---

[५१] बलवन्तनामा, पृ० – १०,

[५२] जहीरूद्दीन मलिक, दि रेन आफ–पृ० – २०६,

[५३] सैय्यद नजमुल रजा रिजवी, शोध प्रबन्ध, इ० वि० वि० १९८३, पृ० – २४४,

[५४] बलवन्त नामा, पृ–१०, १२, विलटन ओल्टम, हिस्टारिकल एण्ड स्टेस्टिकल मेमायर,——भाग–१, पृ–९६, १००,आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव, अवध के प्रथम दो नवाब, पृ०–२०३, २०४,

गढी का भी निर्माण कराया।[५५] अवध का नवाब सफदरगज, राजा बलवन्त सिह पर अधिक विश्वास न कर सका। इस सन्दर्भ मे उसने राजस्व की वसूली के लिए तथा राजस्व का नियमित भुगतान प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने एक नायब तथा उसके साथ रूप सिंह को बनारस मे प्रतिनिधि के तौर पर नियुक्त किया। इन्हे "सजावल"कहा गया। राजा बलवन्त सिह इन्हीं प्रतिनिधियों के माध्यम से नियमित राजस्व का भुगतान करता रहा तथा नवाब के प्रति विनम्र तथा विश्वास पात्र बना रहा। इसी समय मुगल सम्राट ने नवाब सफदर जग को अफगानों के आकमण का मुकाबला करने के लिए दिल्ली बुला लिया। बलवन्त सिंह ने नवाब की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उसके राजस्व वसूल करने वाले प्रतिनिधियों को राज्य से निष्कासित कर दिया। इसी कम में बलवन्त सिंह ने भू–राजस्व के भुगतान को भी रोक दिया तथा बनारस को सीमा से लगे इलाहाबाद के आस–पास के क्षेत्रों को लूटना आरम्भ कर दिया।[५६]

बलवन्त सिह द्वारा १७४८ई० मे भदोही के किले पर अधिकार कर लिया।[५७] इन घटनाओं के कारण इलाहाबाद का नायब सूबेदार अली कुली खॉ, बलवन्त सिह का मुकाबला करने के लिए आगे बढा परन्तु, छल–प्रपच द्वारा बलवन्त सिंह ने उसे भी पराजित कर दिया।[५८] इसी समय १७५०ई० मे सफदरजंग बंगश नवाब अहमद खॉ से पराजित हो गया। अहमद खॉ ने अपने एक सम्बन्धी साहिब जमा खॉ को जौनपुर, गाजीपुर, बनारस, चुनार की सरकारो तथा आजमगढ़ एवं माहुल आदि स्थानों का गर्वनर नियुक्त किया। साहिब जमां खॉ को यह भी आदेश दिया गया कि वह सैन्य

---

[५५] बलवन्त नामा, पृ०–२१, विलटन ओल्टम, हिस्टारिकल एण्ड स्टैस्टिकल मेमायर,———भाग–१, पृ०–१००,

[५६] बलवन्त नामा, पृ०–२१, २२, विल्टन ओल्टम, भाग–१, पृ०–१००,

[५७] बलवन्त नाम, पृ०–२२, २३, विल्टन ओल्टम, हिस्टारिकल एण्ड स्टैस्टिकल मेमायर, ———भाग–१, पृ०–१००,

[५८] बलवन्त नामा, पृ०–२३, २५

कार्यवाही करके बलवन्त सिह को निष्कासित कर दे। साहिब जमा खॉ की सहायता बगश नवाब, आजमगढ़ तथा माहुल के जमीदारो ने की। नवाब अहमद खॉ बगश ने स्वय इलाहाबाद के किले पर अधिकार करने के ध्येय से प्रस्थान किया। इस नवीन परिस्थितियो मे राजा बलवन्त सिह ने अपने विश्वासपात्र प्रतिनिधियो को बंगश नवाब के पास–बहुमूल्य उपहारो के साथ भेजा और बगश नवाब की अधीनता मे कार्य करने का प्रस्ताव भी रखा। वह स्वय भी बगश खॉ नवाब के आमन्त्रण पर इलाहाबाद मिलने गया। बगश नवाब ने राजा बलवन्त सिह को अपनी आधी जमीदारी पर अधिकार रखने की अनुमति इस प्रस्ताव के साथ दी कि वह आधा भू–भाग तत्काल साहिब जमॉ खॉ को सौंप दें। नवीन परिस्थितियो और बगश नवाब की शक्ति को देखकर राजा बलवन्त सिह ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इसी समय नवाब सफदरजग ने बंगश नवाब के विरूद्ध सैन्य अभियान के लिए दिल्ली से प्रस्थान किया। इन नयी परिस्थितियों के कारण अहमद शाह बगश तत्काल इलाहाबाद छोडने के लिए विवश हो गया। अतः परिस्थितियो का लाभ उठाकर राजा बलवन्त सिह अब निर्बल हो गये, तथा साहिब जमॉ खॉ को तत्काल अपनी जमींदारी छोडकर जाने का आदेश दिया। साहिब जमॉ खॉ तत्काल आजमगढ़ और पुनः वहॉ से बिहार में स्थित बेतिया के राजा के यहॉ चला गया। इस प्रकार परिस्थितियों का लाभ उठाकर राजा बलवन्त सिह ने अपने व्यक्तिगत हितों और स्वार्थो को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। वह निरन्तर अपनी स्वामिभक्त को परिवर्तित करता रहा और किसी के प्रति स्वामिभक्त नहीं रहा। इधर सफदरजंग ने अफगानों को पराजित करके प्रतापगढ़ के राजा पृथ्वीपत एव बनारस के राजा बलवन्त सिह के विरूद्ध सैनिक अभियान आरम्भ किया। सफदरजग ने पृथ्वीपत का बध कर दिया तथा जौनपुर की ओर प्रस्थान किया। राजा बलवन्त सिंह यह समाचार सुनकर गगापुर से मिर्जापुर की पहाडियो मे पलायित कर गया।

सफदरजग ने बनारस पहुँच कर गगापुर की गढ़ी को लूट लिया तथा बलवन्त सिह को बन्दी बनाने के लिए उसके पीछे अपनी सेना भेजी।[१५६]
राजा बलवन्त सिह ने नवाब को प्रसन्न करने के उद्देश्य से धन का सहारा लिया। बलवन्त सिंह ने बनारस का भू–राजस्व नियमित रूप से देने के लिए कहा तथा दो लाख रूपये अतिरिक्त वार्षिक कर देने का प्रस्ताव रखा। नवाब ने बलवन्त सिह को छल पूर्वक बन्दी बनाने का प्रयास किया।

इसी मध्य नवाब सफदरजग को अहमदशाह अब्दाली की समस्या से निपटने के उद्देश्य से मुगल सम्राट ने दिल्ली बुलाया। परिस्थितिवश नवाब सफदरजग ने बलवन्त सिंह को १७५१–५२ ई० मे एक खिलअत भेजकर बढे हुए राजस्व की शर्त पर उसके भू–भागो को लौटा दिया और राजस्व वसूली के लिए एक प्रतिनिधि नुरूल हसन खॉ को नियुक्त करके नवाब सफदरजंग फिर वापस फैजाबाद आ गया। फैजाबाद पहुँचने के तुरन्त बाद उसने दिल्ली के लिए प्रस्थान किया।[१६०]

दिल्ली पहुँचने के बाद सफदरजंग विभिन्न समस्याओ से जूझता रहा। इनमे प्रमुख था अहमदशाह अब्दाली की समस्या, दरबारी षड़यन्त्रो तथा मराठो की समस्या प्रमुख थी। इसी समय बनारस मे राजा बलवन्त सिह ने अपनी सुरक्षा का सुदृढ़ प्रबन्ध करते हुए राम नगर में किले का निर्माण करवाया तथा विजयगढ़, अगोरी, लखीफपुर तथा पसीता के किलों पर भी अधिकार कर लिया।[१६१] उसने बिहार की सरकार

---

[१५६] बलवन्त नामा, पृ०–२५, २६, विलटन ओल्टम, हिस्टारिकल एण्ड स्टैटिस्टिकल मेमायर———भाग–१ पृ०–१००, आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव, अवध के प्रथम दो नवाब, पृ०–१७६ से १८१, विलीयम इरविन, वंगश नवाब्स आफ फरूखॉबाद–ए–क्रानिकल १७१३–
१८५७, जर्नल आफ दि एशियातिक सोसायटी आफ बंगाल खण्ड–४८, भाग–१, १८७६, पृ०–७७ से ८२,

[१६०] बलवन्त नामा, पृ०–२६ से ३४१, विलटन ओल्टम, भाग–१ पृ०–१००, १०१, आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव, अवध के प्रथम दो नवाब, पृ०–२०४,२०५

[१६१] बलवन्त नामा, पृ०–३१ से ३४, विल्टन ओल्टम, हिटारिकल एण्ड स्टैटिस्टिकल मेमायर, भाग–१, पृ०–१०१ तथा सैय्यद नजमुल रजा रिजवी शोध, इ०वि०वि०, प्रबन्ध, १९८३ पृ०–२५१,

शाहाबाद के परगना कडा, मगरौर की जमीदारी पर भी अधिकार कर लिया।[१६२] दिल्ली से लौटने के पश्चात नवाब सफदरजग ने पुन बलवन्त सिह के विरूद्ध सैन्य अभियान आरम्भ किया। परन्तु राजा बलवन्त सिह बनारस से पलायित कर गया। इसी समय मराठो की समस्या के कारण सफदरजग को पुन मुगल सम्राट के बुलाने पर दिल्ली वापस लौटना पड़ा। अत· राजा बलवन्त सिह पुन· दण्डित होने से बच गये।[१६३] इस प्रकार १७३६ ई० से १७५४ ई० के मध्य बलवन्त सिह लगातार अपनी राजनैतिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिए प्रयत्नशील रहे और अन्तत· सफल हुये।

नवाब सफदरजग की कठिनाइयों का लाभ उठाकर कुछ अन्य जमीदारो ने भी अफगानों की स्थिति को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। बंगश नवाब अहमद खॉ द्वारा नियुक्त वायसराय साहिब जमा खॉ की सहायता माहुल के जमीदार शमशाद जहॉ, गडवारा के जमींदार हिम्मत बहादुर तथा मछली शहर के जमीदार शेख कबूल मोहम्मद ने की।[१६४] इस प्रकार बनारस तथा इसके पास के जमीदारो ने सफदरजग की कठिनाइयो से लाभ उठाकर अपनी शक्ति को विस्तारित करने का निरन्तर प्रयास किया।

नवाब सफदरजंग की मृत्यु १७५३ई० में हुई तत्पश्चात उसका पुत्र शुजाउद्दैला अवध एव इलाहाबाद का सूबेदार बना। इस परिवर्तन का राजाओ व जमीदारों ने लाभ उठाने का प्रयत्न किया परन्तु शुजाउद्दौला मुगल साम्राज्य के विजारत का पद प्राप्त करने लिये प्रयत्नशील था। इसी मध्य बनारस के राजा बलवन्त सिंह ने अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करने का प्रयास किया। इस कम में उसने चुनार के किलेदार आगामीर को रिश्वत देकर किले पर अधिकार करने का

---

[१६२] बलवन्त नामा, पृ०—३४ से ३६, विल्टन ओल्टम, भाग—१ पृ०—१०२ तथा सैय्यद नजमुल रजा रिजवी, पृ०—२५२,

[१६३] आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव, शुजाउद्दौला, खण्ड—१, पृ०—२६,२०,

[१६४] बलवन्त नामा, पृ०—२६ से ३६ सैय्यद नजमुल रजा रिजवी पृ०—२५२,

प्रयास किया। इस षड़यन्त की सूचना मिलते ही शुजाउद्दौला ने बलवन्त सिंह को दण्डित करने के लिए प्रस्थान किया परन्तु बलवन्त सिंह ने सपरिवार लतीफपुर के किले में शरण ली। शुजाउद्दौला ने बलवन्त सिंह को गिरफ्तार करने के लिए अधिकारियें की नियुक्ति की। यह सूचना प्राप्त होते ही बलवन्त सिंह ने विजयगढ के किले मे भाग कर शरण ली।[१६५]

उसने अपनी सहायता हेतु मराठो की सेना भी बुलायी। बलवन्त सिंह के विरूद्ध फजल अली खॉ ने भी प्रयास किये ताकि उसे बन्दी बनाया जा सके।[१६६] इसी समय अहमदशाह अब्दाली ने भारत विजिट करने के लिए दिल्ली मे प्रवेश किया। इस परिस्थिति में मुगल साम्राज्य के वजीर ने शुजाउद्दौला से तत्काल सहायता मॉगी।[१६७] अत अपने अधिकारियो के परामर्श पर शुजाउद्दौला ने राजा बलवन्त सिह को पॉच लाख रूपये भेंट तथा पॉच लाख रूपये वार्षिक राजस्व के समझौते पर क्षमा कर दिया तथा परगना भदोही को भी जागीर के रूप मे प्रदान किया।[१६८] इस घटना क्रमो के उपरान्त शुजाउद्दौला वापस फैजाबाद आ गया तथा अहमदशाह अब्दाली के अवध पर सम्भावित आक्रमण से रक्षा के प्रबन्ध मे सलग्न हो गया।[१६९]

राजा बलवन्त सिह को स्वतन्त्र होने की आकांक्षा पुन. बलवती हो उठी। उसने सर्वप्रथम गाजीपुर के फजल अली खॉ को शुजाउद्दौला के नायब बेनी बहादुर की सहायता से निष्कासित करवाने मे सफलता मिली तथा इजारे पर गाजीपुर का भू–भाग भी प्राप्त कर लिया।[१७०] राजा बलवन्त सिह ने १७५८–५९ई० मे चौसा की

---

[१६५] आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव, शुजाउद्दौला, खण्ड–१, पृ०–१५, १६,

[१६६] बलवन्त नामा, पृ०–३७, ३८, विल्टन ओल्टम, भाग–१ पृ०–१०२, आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव, शुजाउद्दौला, खण्ड–१, पृ०–३२, ३३,

[१६७] आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव, शुजाउद्दौला, खण्ड–१, पृ०–३३,

[१६८] बलवन्तनामा, पृ०–३८, ३९, विल्टन ओल्टम, भाग–१, पृ०–१०२ तथा ए० एल० श्रीवास्तव, खण्ड–१, पृ०–३३, ३४,

[१६९] आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव, शुजाउद्दौला, खण्ड–१, पृ०–३४,

[१७०] बलवन्तनामा, पृ०–४०, ४१, विल्टन, ओल्टम, भाग–१ पृ०–१०२,

जमीदारी तथा वहाँ का किला और १७५६–६० ई० मे इलाहाबाद सूबा के तरहर मे स्थित परगना कन्तित पर भी अधिकार कर लिया।[७१] यद्यपि शुजाउद्दौला के प्रतिद्वन्दी मुहम्मद कुली खाँ को बन्दी बनाने मे राजा बलवन्त सिइ ने सहायता की तथा दोनों मे सम्बन्ध मे अच्छे नही थे। राजा बलवन्त सिह नवाब के प्रति सदैव सशकित रहा। इसी कारण वश १७६०–६१ ई० मे मुगल सम्राट से मिलने के नवाब शुजाउद्दौला द्वारा बनारस आने पर राजा बलवन्त सिह भाग कर विन्ध्य की पहाडियो मे चला गया, तथा इस अवसर पर भी बेनी बहादुर के कारण नवाब शुजाउद्दौला, राजा बलवन्त सिंह को बन्दी बनाने के लिए अधिक समय न दे सका।[७२]

शुजाउद्दौला ने मीर कासिम को बगाल मे पुन प्रतिष्ठित करने के लिए अग्रेजो से युद्व करने का निर्णय लिया तथा मीर कासिम तथा मुगल सम्राट के साथ बनारस पहुँचा।[७३] राजा बलवन्त सिह अविश्वास के कारण सपरिवार लतीफपुर भाग गया। राजा बलवन्त सिह ने शुजाउद्दौला के पटना प्रस्थान पर ही बेनी बहादुर के आश्वासन पर उपस्थित होने के लिए बनारस चल पडा। परन्तु बलवन्त सिह के प्रति नवाब शुजाउद्दौला अभी भी सशंकित था। पटना अभियान मे असफल होने के पश्चात नवाब नेराजा बलवन्त सिंह को गाजीपुर के परगना मुहम्मदाबाद के अमला नामक ग्राम में अंग्रेजों के विरूद्ध सुरक्षात्मक तैयारी करने के लिए भेज दिया। परन्तु बक्सर के युद्ध की पराजय ने शुजाउद्दौला को हतोत्साहित कर दिया। यह सूचना प्राप्त होते ही राजा बलवन्त सिह बनारस स्थित रामनगर किले मे आ गया। मुगल सम्राट शाह आलम ने अब अंग्रेजों की शरण ले ली। परिस्थितियों को देखते हुए राजा बलवन्त सिंह ने भी अग्रेजो का सरक्षण प्राप्त करने के उद्देश्य से बिहार के नायब

---

[७१] बलवन्तनामा, पृ०–४१ से ४३, विल्टन ओल्टम, भाग–१, पृ०–१०२,
[७२] बलवन्तनामा, पृ०–४६,४७,
[७३] हरि चरन दास, चहारा–गुलजार धुलाई इलियट एण्ड डाउसन, हिन्दी अनुवाद, मथुरा लाल शर्मा, पृ०–१६०, ख–८,

नाजिम राजा शिताब राय के माध्यम से मुनरो को बक्सर विजय के उपलक्ष्य में बधाई संदेश तथा उपहार भेट किए।[१७४]

राजा बलवन्त सिंह ने राजा शिताब राय के माध्यम से मेजर मुनरों से बनारस, जौनपुर, आजमगढ आदि जिलो को इजारे पर देने की प्रार्थना की।[१७५] राजा बलवन्त सिह ने मेजर मुनरो के बनारस आगमन पर सुरक्षात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए लतीफपुर के किले मे शरण ली।[१७६] मेजर मुनरो ने उसके भू–भाग को एक वर्ष के पट्टे पर उसे लौटा दिया।[१७७] इस सन्दर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि राजा बलवन्त सिंह को पट्टा प्रदान करने के पूर्व मेजर मुनरो ने मुगल सम्राट से राजा बलवन्त सिह की जमीदारी के भू–भागो पर अग्रेजी कम्पनी के अधिकार की सनद–प्राप्त कर ली।[१७८]

अन्ततोगत्वा लिखित समझौते के उपरान्त ही राजा बलवन्त सिह ने राम नगर मे प्रवेश किया। इसके उपरान्त राजा बलवन्त सिह ने अग्रेजो को सहायता करते हुए मेजर कारनाक को चुनार अभियान के समय आठ लाख रूपये के अतिरिक्त सैन्य सहायता भी प्रदान की।[१७९] इसके फलस्वरूप १७६५ ई० मे लार्ड क्लाईव ने शुजाउद्दौला के इच्छा के विपरीत राजा बलवन्त सिह की जमींदारी को बनाये रखने का एक अनुच्छेद की सन्धि पत्र मे रखवाया।[१८०] इससे राजा बलवन्त सिह को अग्रेजों से सुरक्षा तथा सरक्षण प्राप्त हुआ। परन्तु इसका विपरीत प्रभाव यह पड़ा कि

---

[१७४] सैय्यद नजमुल रजा रिजवी, पृ०–२६२,

[१७५] सैय्यद नजमुल रजा रिजवी, पृ०–२६२,

[१७६] बलवन्तनामा, पृ०–५३, तथा ए० एल० श्रीवास्तव, शुजाउद्दौला खण्ड–१, पृ०–२५५,

[१७७] बलवन्तनामा, पृ०–५३, ए० एल० श्रीवास्तव, खण्ड–१, पृ०–२५५,

[१७८] विल्टन ओल्टम, भाग–१, पृ०–१०३ तथा सैय्यद नजमुल राजा रिजवी, पृ०–२६२,

[१७९] बलवन्तनामा, पृ०–५३, ५४, सैय्यद गुलाम हुसैन खॉ, सियर–उल–मुताखरीन खण्ड–११, नोटामानुस कृत, अंग्रेजी अनुवाद के पृ०–५७७, ए० एल० श्रीवास्तव, खण्ड–१, पृ०–२७५,

[१८०] सी० यू० एचिसन, ए कलैक्शन आफ ट्रीटीय———खण्ड–११ पृ०–७७ बलवन्तनामा, पृ०–५७, ५८, तथा सैय्यद गुलाम हुसैन खॉ, सियर–उल–मुताखरीन खण्ड–११ नोटामनुस कृत–अंग्रेजी अनुवाद पृ०–५८, ५८५,

अग्रेजों ने बनारस के साथ–साथ इसके अन्य सीमावर्ती जिलो मे भी हस्तक्षेप करने का अवसर प्राप्त हो गया। राजा बलवन्त सिह ने समयानुकूल अपने हितो की रक्षा की, क्योकि यह युग राजनैतिक अस्थिरता का युग था, तथा ऐसे अस्थिर वातावरण मे अपने सत्ता सुख तथा अपने हितो को सुरक्षित रखना इस काल मे एक दूरदर्शिता पूर्ण निर्णय था। यही कार्य राजा बलवन्त सिह ने किया।

इलाहाबाद सन्धि के पश्चात् नवाब शुजाउद्दौला, राजा बलवन्त सिह को पदच्युत करने के प्रयास मे निरन्तर लगा रहा, परन्तु अग्रेजो के सरक्षण के कारण १७७०ई० तक राजा बलवन्त सिह ने आजीवन अपने क्षेत्र पर अधिकार बनाए रखा।[६१]

---

[६१] बलवन्तनामा, पृ०–५८, ६३, सैय्यद गुलाम हुसैन खॉं, सिदर–उल–मुताखरीन खण्ड–११, नोटामानुस कृत अंग्रेजी अनुवाद पृ०–२०, २१, विल्टन ओल्टम, भाग–१, पृ०–१०४, १०५, ए० एल० श्रीवास्तव, शुजाउद्दौला, खण्ड–११, पृ०–३०, ३१ तथा ११२ से ११५

अध्याय ृतीय

सामाजिक इतिहास

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज विभिन्न वर्णों जातियों एव समुदायों के सम्मिश्रण का केन्द्र रहा है। मध्यकालीन भारत में इस्लामी संस्कृति का तीव्र गति से विस्तार होने के कारण मुस्लिम समुदाय ने भारतीय समाज मे अपना एक विशेष स्थान बना लिया। वहीं हिन्दू समाज ने अपनी पुरातन संस्कृति एवं मान्याताओं के तहत अपना स्थान बनाए रखा। हिन्दू समाज ने मुस्लिम समाज के साथ समन्वय स्थापित करते हुए विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी परम्पराओं को जीवित रखा। भारत मे इस नए सम्मिश्रित समाज के उदाहरण के रूप में बनारस के समाज को देखा जा सकता है। जिसके अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम इसे हिन्दू और मुस्लिम वर्गो में विभक्त कर रहें हैं।

हिन्दू समाज

वर्ण व्यवस्था हिन्दू समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है। यद्यपि हिन्दू समाज में प्रारम्भ से ही वर्ण निर्धारण व्यक्ति के जन्म के आधार पर होता रहा है।[1] प्रसिद्ध यात्री अलबरूनी ने मध्यकालीन हिन्दू समाज के सामाजिक वर्गो का विस्तृत वर्णन किया है। वर्ण व्यवस्था की परम्परा के सम्बबन्ध में अलबरूनी का मत इस प्रकार है– "हिन्दू अपनी जाति को वर्ण अथवा रंग कहते हैं तथा वंशावली की दृष्टि से उन्हें "जातक" अथवा "जन्म"

---

[1] दि लीगेसी ऑफ इण्डिया, सं० जी० सी० गारेट, आक्सफोर्ड १९६२, पृ० १२४, सी०डी०एम० जोड, दि हिस्ट्री ऑफ इण्डियन सिविलाइजेशन, लन्दन, १९३६, पृ०–४

कहते है। प्राचीन काल से ही ये चार जातियां—ब्राह्मण ,क्षत्रिय ,वैश्य ,शूद्र विद्यमान थे।"[2]

ब्राह्मण

हिन्दू समाज में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ स्थान रखता था। बारहवी शताब्दी के अन्त तक ब्राह्मण समाज प्रादेशिक आधार पर विभाजित हो रहा था । उनमे जातियॉ और उपजातियॉ स्थापित हो रही थी।[3] इस समय बनारस में ब्राह्मणों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई। इस काल में ब्राह्मण कोई भी व्यवसाय कर सकते थे।[4] परन्तु ब्राह्मण अधिकांशतः अध्ययापन के ही कार्य में रांलग्न रहे।[5] इनको प्रायः विप्र कहकर भी सम्बबोधित किया जाता था।[6]

क्षेत्रीय शासकों के पतन के साथ ही ब्राह्मणों की स्थिति निरन्तर दयनीय होती चली गयी तथा मध्यकाल के अन्त मे इस वर्ग ने व्यवसायिक प्रवृत्ति के चलते अनेक व्यवसायों को अपनाया।[7]

क्षत्रिय

प्राचीन समाज की व्यवस्था के अन्तर्गत अगला स्थान क्षत्रिय को प्राप्त था। जिसके विषय में यह धारणा थी कि इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के बाहू तथा उनके कन्धो से हुई है।[8] समाज में क्षत्रियों का स्थान ब्राह्मण के बाद था।[9]

---

[2] अलबरूनीज इण्डिया, भाग –१ (सचाऊ) पृ० १००
[3] वी० एन० एस० यादव, पृ०–१६,
[4] वही
[5] कबीर ग्रन्थावली ,दोहा –६३ ,पृ०–१०,भूषण ग्रन्थावली, पृ० ८३, छन्द २६३, सोमनाथ ग्रन्थावली, खण्ड २, पृ० ३१६, छ० ०–३
[6] मृगावती ,दो०–१ ,पृ–१ ,तथा मधुमालती,दो पृ०–८१,१०२,४३८
[7] वी० एन० एस० यादव, पृ० २४, तथा डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, द सोसाइटी आर्फ नार्थ इण्डिया इन द सिक्सटीन्थ सेन्चुरी, पृ० २८, २६
[8] अलबरूनीज इण्डिया, (सचाऊ) पृ० १०१

क्षत्रियो का कार्य प्रजा पर शासन करना तथा उनकी रक्षा करना था।[१०] मुस्लिमो के आगमन के पश्चात से ही समाज मे परिवर्तन की गति बढ गयी। तुर्कों के बढते हुए प्रभाव एवं क्षत्रियों की पराजय से उनके राज्य समाप्त होने लगे तथा हिन्दू समाज की प्राचीन मान्यताएं व परम्पराए ही नहीं अपितु वर्ण व्यवस्था भी नष्ट होने लगी।[११] इस प्रकार क्षत्रियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी। राजकुल से सम्बबन्धित होने के कारण उन्हें राजपुत्र अथवा राजपूत कहकर पुकारा गया।[१२] उनकी अनेक शाखाएं एवं प्रशाखाए थी। तत्कालीन समय में राजपूतों ने मुगल साम्राज्य की अत्यधिक सेवा की और उनके साम्राज्य विस्तार के लिए वे ही मूलतः उत्तरदायी रहे।[१३]

वैश्य

प्राचीन समाज में वैश्य केवल व्यवसायीक कार्यो को करता था। उसका यह धर्म होता था कि वह कृषि करें। पशुपालन का कार्य करें तथा ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों को उनकी आवश्यकताओं से निवृत्त करें।[१४] वैश्य, ब्राह्मण व क्षत्रिय के पश्चात तीसरे स्थान पर थे। प्रारम्भ में वैश्य जातियों तथा उपजातियों में अन्तर था तथा वे शूद्र से भिन्न थे। परन्तु १० वीं शताब्दी के

---

[९] वही, पृ० १३६, कबीर ग्रन्थावली, दो० ११, पृ० ३७६, सोमनाथ ग्रन्थावली पृ० ६६६, दो० २० देवनियर, ट्रेवल्स इन इण्डिया, पृ० १४३

[१०] अलबरूनीज इण्डिया भाग १, पृ० १, ६१, ६२, देव ग्रन्थावली, पृ० १८५, छन्द ६४, ट्रेवनियर, पृ० १४३

[११] वर्ण रत्नाकर, पृ० ३१, तथा इनके पतन शील होने की प्रकिया के लिए देखें डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० ३३, ३८

[१२] खाफी खान, मुन्तखव्वुल –लुवाब (इलियट एण्ड डाउसन, भाग ७, पृ० ३०० से ३०२) तथा आर० एस० शर्मा की इण्डियन फ्यूडलिज्म, ट्रेवर्नियर पृ०–१४३, मोहम्मद यासीन, ए सोशल हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक इण्डिया, पृ०–१४, १६, काली किंकर दत्ता, सर्वे ऑफ इण्डिया सोशल लाइफ एण्ड इकनामिक कन्डीशन इन "एट्टीन्थ सेन्चुरी" पृ० २७, ६५, ६८

[१३] ट्रेवर्नियर पृ० १४३, शिवराज भूषण, पृ० ३४, छ० २०४, गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास।

[१४] बी० एन० एस० यादव, पृ० ३८

राजनीतिक एवं आर्थिक पतन के कारण वैश्यों की स्थिति परिवर्तित हो गयी। उनमें तथा शूद्रों में कोई विशेष अन्तर नहीं रह गया।[१५] परन्तु १२ वीं शताब्दी तक जब वाणिज्य का पुनः विकास हुआ तो वैश्य समुदाय पुनः समृद्धिशाली हो गया।[१६]

शूद्र

प्राचीन भारतीय समाज में शूद्रों को हेय दृष्टि से देखा जाता था तथा शूद्र नौकरों की भाँति होते थे एवं उनका प्रमुख कर्तव्य ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों की सेवा करना होता है।[१७] समाज में शूद्रों की स्थिति बहुत ही खराब थी। वे दासों की भाँति कार्य करते थे, जिसके बदले में उच्च जातियों द्वारा प्राप्त धन ही उनकी आजीविका का प्रमुख साधन था।[१८] १२ वी शताब्दी के निम्न जातियों ने अपने समाजीक व आर्थिक स्तर को ऊँचा करने के लिए एक प्रदेश से दूसरे प्रदेशों में जाकर बसना प्रारम्भ किया तथा उन्होनें नवीन व्यवसाय अपनाकर अपनी निम्नता की कालिख को मिटाना प्रारम्भ किया। १५ वी शताब्दी तक उन्ही में से धर्मिक व समाजीक सुधारक उत्पन्न हुए, जिन्होनें भक्ति आन्दोलन के द्वारा ऊँच–नीच के भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया।[१९] मध्यकाल तक ३६ जातियॉ व उपजातियॉ ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों के अतिरिक्त उत्पन्न हो गयी थी।[२०] इनमें मदिरा बनाने वाले कल्लाल, स्वर्णकार, जुलाहे, पान बेचने वाला, लोहार, गड़ेरिया, दूध बेचने

---

[१५] अलबरूनीज इण्डिया, (सचाऊ) पृ० १३८, तथा आर० एस० शर्मा, शूद्रास इन एनसिएण्ट इण्डिया, पृ० २८

[१६] पूर्वोद्धत।

[१७] अलबरूनीज, इण्डिया, (सचाऊ) पृ० १३८ तथा आर० एस० शर्मा शूद्रास इन ऐनसिएण्ट इण्डिया, पृ० २८१

[१८] राधेश्याम, पृ० २०६

[१९] डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, उल्लिखित शोध प्रबन्ध, पृ० ५८

[२०] डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, उल्लिखित शोध प्रबन्ध, पृ० ५८

वाला, बढ़ई, धातुकार, भाट, अहीर, कुम्हार, काक्षी, माली, तेली, नाई, नट, गायक, विश्बक, नर्तक, रंगरेज, छपाई करने वाले तथा अन्य व्यवसाय करने वाले लोग शामिल हैं। इस काल मे विभिन्न उद्योगों में निरन्तर परिवर्तन होने के कारण तथा श्रम की गतिशीलता एव कुशल कारीगरी के विकास के परिणाम स्वरूप व्यवसायीक जातियों में भी उपजातियॉ, वर्ग तथा उपवर्ग उत्पन्न हो गए।[३१] १४ वी १५ वीं शताब्दी पुर्नजागरण का युग था। इस काल मे एकेश्वरवाद व निर्गुण ब्रह्म की उपासना बाह्य आडम्बरो व मूर्ति पूजा पर प्रहार एवं जन भाषाओं में सन्तों की वाणियों ने जाति पॉति के बंधन को ढीला कर दिया एवं ब्राह्मण वर्ग के प्रभाव को भी कम कर दिया। बारहवीं शताब्दी के बाद इनकी स्थिति में परिवर्तन हुआ तथा पन्द्रहवीं शताब्दी तक इन्हीं में से धर्मिक व समाजीक सुधारक भी उत्पन्न हुए जिन्होनें भक्ति आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।[३२] अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक बनारस शहर में शूद्रों की स्थिति में बहुत परिवर्तन आ चुका था, परन्तु फिर भी यह वर्ग समाज में शोषण का पात्र बना रहा।[३३]

हिन्दू समाज के ढॉचे में आन्तरिक एवं बाह्य दबावों के कारण निरन्तर परिवर्तन आया तथा तत्कालीन हिन्दू समाज स्पष्टत तीन वर्गो में विभाजित हो गया। प्रथम वर्ग अभिजात वर्ग था, द्वितीय पुरोहित वर्ग तथा तीसरा सर्वसाधारण वर्ग था।

हिन्दू अभिजात वर्ग

---

[३१] वही, अध्याय २, ३, पृ० १५८, तथा राधेश्याम, पृ० २७०

[३२] डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, उल्लिखित शोध प्रबन्ध, पृ० ५८

[३३] ट्रेवर्नियर, ट्रेवल्स इन इण्डिया, पृ० १४४, देव ग्रन्थावली, पृ० ५, दो० ६, काली किंकंर दत्ता, पृ० ६२१, जी० एस० घुर्रे, कास्ट, क्लास एण्ड आक्यूपेशन, पृ० ८०

इस वर्ग मे हिन्दू शासक अमीर तथा समाज के उच्च परिवारों के सदस्य थे। विभिन्न श्रेणियो के हिन्दू अमीर तथा स्वायत शासकों के लिए कई पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया। उदाहरण स्वरूप, राजा, राना, राय, रावत, जमींदार इत्यादि।[२४] इस काल में राज्यों के अर्न्तगत स्वायत्त शासकों का अस्तित्व विद्यमान था। इसी काल में गोरखपुर तथा खरोसा के रायो का उल्लेख प्राप्त होता है।[२५] जौनपुर का हिन्दू अभिजात वर्ग काफी सुदृढ़ स्थिति में विद्यमान था। इस प्रकार प्रशासन में मुसलमानों की प्रधानता के बावजूद हिन्दू अभिजात वर्ग की स्थिति प्रतिष्ठित बनी रही। हिन्दू जमींदारों की स्थिति मुख्य रूप से दो बातों पर निर्भर थी। प्रथम कि वे शासकों के प्रति निषवान है या नहीं तथा द्वितीय कि उनकी व्यक्तिगत समाजिक स्थिति कैसी है? यद्यपि इस काल में बनारस के अनेक हिन्दू शासकों ने केन्द्र की कमजोर स्थिति का लाभ उठाकर अपने को स्वतंत्र घोषित किया। परन्तु अधिकांश हिन्दू जमीदार और अमीर केन्द्र के प्रति निष्ठावान बने रहे तथा राज्य की निष्ठा प्राप्त करते रहे। जिन विद्रोही हिन्दू शासकों का उल्लेख प्राप्त होता है, वे समय समय पर दण्डित भी किये गए।[२६]

हिन्दू पुरोहित वर्ग

हिन्दू पुरोहितों ने ज्योतिषियों के रूप में अपनी पहचान बनाई ।[२७] तत्कालीन समाज में ज्योतिषियों को उच्च स्थान प्राप्त था तथा उन्हें तत्कालीन शासकों का प्रश्रय भी प्राप्त हुआ। कोई भी मुहल्ला या कस्बा ज्योतिषियों से रिक्त नहीं था। ये ज्योतिषि कुण्डलियॉ अथवा जन्मपत्रियॉ बनाया करते थे तथा शहर के लोग ज्योतिषि के बिना परामर्श के कोई शुभ

---

[२४] डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, अध्याय २, ३ पृ० ६५ से १३८ तथा राधेश्याम पृ० २७०
[२५] रिजवी, पृ० ४०
[२६] वी० एन० एस० यादव, पृ० २० तथा डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० २२, २३

कार्य सम्पादित नहीं करते थे।[२८] इस प्रकार इस काल मे ब्राह्मणों ने ज्योतिष विद्या को अपनी आजीविका का साधन बना लिया था।[२९]

सर्व साधारण वर्ग

इस काल में विभिन्न प्रकार के व्यवसायों को माध्यम बनाकर अपनी आजीविका चलाने वाला वर्ग सर्वसाधारण वर्ग कहा जाता था।हिन्दुओं में इन व्यापारियों के अर्न्तगत विभिन्न व्यवसाय होते थे। हिन्दू व्यापारी वर्ग इस काल में इतना समृद्ध हो गया था कि वह लोगों को ऋण देने लगा था।[३०] जिन लोगों ने भिन्न भिन्न व्यवसाय के माध्यम से अपनी आजीविका निर्धारित की वे निम्नवत है–

कल्लाल :– इस काल में मदिरा बनाने वाले कल्लाल का उल्लेख मिलता है।[३१] कबीर ने शराबोत्पादन की बड़ी भट्ठियों का उल्लेख किया है जिसमें "लहड" (खाद्यान्न) में गुड आदि डालकर मदिरा तैयार की जाती है।[३२]

स्वर्णकार :– सोने, चॉदी के आभूषण बनाने व बेचने वाले व्यवसायियों को स्वर्णकार कहे जाते थे। इस काल में स्वर्णकार सोने की सफाई और शुद्धता से परिचित थे।[३३] अतः इस काल मे आभूषण बनाई ,ढलाई व कटाई आदि का कार्य भी बारीक एवं प्रशिक्षित ढंग से होता था।

---

[२७] डा० शेफाली चटर्जी, (उल्लिखित शोध प्रबध) पृ० १३२

[२८] मृगावती, पृ० १२, दोहा १६, तथा वी० एन० एस० यादव, पृ० २० तथा डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० २२, २३

[२९] मिनहाज, पृ० ५५५, निजामुद्दीन अहमद, पृ० ३२७, रिजवी, पृ० ११४

[३०] कबीर ग्रन्थावली, दो० ३२, पृ० २८५, तथा दो० ६, पृ० ३७२, तथा डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, (शोध प्रबंध) पृ० ४६–४७

[३१] कबीर, दोहा २, पृ० ३२, दोहा ५, पृ० ४६, तथा डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० १०५–०७

[३२] कबीर ग्रन्थावली, दो० ३, पृ० २३४,

[३३] घनानन्द (रीति काव्य संग्रह) पृ० ६६, छ० ११, सुजाल विलास, पृ० ६७०, छ० ५२–५३, कालीकिंकर दत्त, पृ० ४७, तथा डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० ६७,

जुलाहें :— यह वर्ग सूत कातने का काम किया करता था, जिससे वस्त्र तैयार किया जाता था।

लोहार :— लोहे द्वारा निर्मित सामानों को बनाने व बेचने वाले को लोहार के नाम से जाना जाता था। तलवार से लेकर हल व साधारण मकान व मन्दिरों के निर्माण तक में लोहार का कार्य आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य था।[34]

कुम्हार :— मिट्टी के बर्तनों का निर्माण करने वाले "कुम्हार" को कबीर दास ने "कुलाल" कहा है।[35] मध्यकालीन समाज में धातुओं के बर्तनों का चलन तो था। परन्तु अनेक समाजिक धार्मिक आयोजनों मे प्राय· मिट्टी के बर्तन इत्यादि, प्रयोग होते थे। नाना प्रकार के बर्तन बनानें मे कुम्हार प्रवीण हो गए थे। कबीर ने कुम्हार के विकसित चाक का वर्णन अनेक दोहो में किया है। साथ ही कबीर मिट्टी के कच्चे बर्तनों को पकाने की विधि का वर्णन भी करते है।[36]

बढ़ई :— लकड़ी का कार्य करने वाला व्यक्ति बढ़ई कहलाता था। लोहार की भांति बढ़ई भी भवन निर्माण से खेती के उपकरण के निर्माण में आवश्यक रूप से संलग्न थे। इस काल में घुड़सवारों की बढती संख्या व सेना में उनके महत्व को देखते हुए, घोडे की काठी का निर्माण एक बडा उद्योग था, जिसके दायित्व का निर्वहन, बढई करते थे। बैलगाडी आदि बनाने के कार्य में भी बढई संलग्न थे।

---

[34] मआसीर–ए–आलगीरी, पृ० १८७, कबीर, दो० ५, पृ० ४४, मृगावती, दो० ३५, पृ० २८, देव ग्रन्थावली , दो० ६४, पृ० २७८, डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० ६५, ६६, गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास पृ० ४८२

[35] कबीर, दो० ५, पृ० ४४, डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, शोध प्रबन्ध। अप्रकाशित, इ०वि०वि० पृ० ६५, ६६

[36] कबीर, पृ० १, दो० ३१

तेली :– मध्यकाल में भी सरसो व अन्य तिलहनी फसलों से तेल निकालने का कार्य होता था। इस कार्य को जो वर्ग करता था, उसे तेली कहा जाता था। यह कार्य वह अपने कोल्हू में बैलों की सहायता से करता था।[३७]

नाई :– बाल बनाने और हज्जाम करने वाले को नाई कहा जाता था। हिन्दू समाज में अनेक अनुष्ठानो ,समाजीक और धार्मिक आयोजनों या अवसरों में इनकी उपस्थिति आवश्यक थी और ये वर्ग समाज के अविभाज्य अग के रूप में था।[३८]

रंगरेज :– कपड़ों की रगाई एक व्यवसाय के रूप में प्रचलित था तथा इस कार्य को करने वाले को 'रगरेज' कहा जाता था।

नट :– विभिन्न करतब दिखाकर लोगों का मनोरंजन करने वालो को "नट" कहा जाता था।[३९] कबीर ने इन्हें बाजीगर भी कहा है।[४०] इस व्यवसाय में स्त्रियों की भी भागीदारी रहती थी । नट अथवा बाजीगर के साथ वे प्रायः मनोरंजन कार्यो में सहभागी थीं इन्हें नटी अथवा बाजीगरनी कहा जाता था।[४१]

त-ोली :– इस काल में पान व सुपारी बेचने वाला व्यवसाय भी प्रचलित था, इस व्यवसाय को करने वालों को "तम्बोली" कहा जाता था।[४२] प्रायः शासकों तथा अमीरों के यहां स्वागत सत्कार हेतु विशेष रूप से इनकी नियुक्ति की जाती थी। बनारस शहर में पान का बहुतायत प्रचलन था और इसकी पैदावार भी अच्छी थी।

---

[३७] देव ग्रन्थावली, दो० ६२, पृ० २६८, इरफान हबीब, पृ० ५६, नीरा दरबारी, पृ० १७६

[३८] डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० ८७, ८८

[३९] कबीर, दो० २६, पृ० ११ तथा दो० १०६, पृ० २०६

[४०] कबीर, दो० ३४, पृ० २८७

[४१] डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० १२७

[४२] देव ग्रन्थावली, दो० ६२, पृ० २६८

धोबी :– कपडे धोने वाले को धोबी कहा जाता था।[४३] आमतौर पर ये कुलीन और अभिजात्य वर्ग के लोगो के वस्त्र धोया करते थे। प्राचीन काल से भारतीय समाज कृषि पर आधारित रहा है, जिसके कारण हिन्दू समाज, ग्रामीण समुदाय से विशेष रूप से सम्बद्ध रहा। कृषि कार्य हेतु श्रमिक शिल्पकार तथा सेवक हिन्दू समाज के एक प्रमुख अग के रूप में विद्यमान रहें।[४४] इनका महत्व मध्यकाल के समाज में भी यथावत बना रहा। अब मध्यम वर्ग के कपडे भी ये लोग धोने लगे थे। शासकों के यहॉ इनकी विधिवत नियुक्ति भी की जाती थी।[४५]

हिन्दू समाज के बहुत से व्यक्ति शासन की सैन्य व्यवस्था मे उच्च पदों पर आसीन थे, तथा उन्हें वेतन प्राप्त होता था।लेकिन समाज मे उन्हे सामान्य स्थान ही प्राप्त रहा। इनकी भू राजस्व व्यवस्था के अर्न्तगत या प्रशासनिक व्यवस्था में भी विभिन्न अधिकारियो के रूप में शासको द्वारा नियुक्ति की जाती रही।

मुस्लिम समाज

मध्यकाल में बनारस के मुस्लिम समाज की रचना अत्यन्त सरल थी। प्रशासक प्रजा का नेता तथा समाज का प्रधान होता था। समाज के प्रधान की हैसियत से वह सामाजिक कार्यों को निर्धारित करता था। कुरान शरीफ में प्रशासकों के प्रभाव का उल्लेख इस प्रकार है– "हे ईमान, ईस्लाम धर्म वालो, अल्लाह और रसूल का आदेश मानों तथा साथ ही सुल्तान का भी आदेश

---

[४३] देव ग्रन्थावली, दो० २४, पृ० १२५, काली किकर दत्त पृ० ४८, तथा डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० ८६, ८७

[४४] डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, अध्याय २ और ३

[४५] डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, अध्याय २ और ३

मानों।"[४६] इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन से प्रतीत होता है कि मध्यकालीन समाज में प्रशासक ही मुस्लिम समाज का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि माना जाता था।

मध्यकाल में भारत वर्ष की सम्पन्नता ने विदेशी मुस्लिमो को भारत की ओर आकर्षित किया तथा सातवीं शताब्दी में मुसलमानों ने भारत में प्रवेश किया।[४७] इसके पश्चात भारत में निरंतर मुस्लिम प्रशासकों द्वारा प्रलोभन देकर हिन्दुओं को मुसलमान बनाए जाने एवं व्यापार के माध्यम से विदेशी मुसलमानों द्वारा भारत की मुस्लिम जनसंख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई।[४८] इस प्रकार मध्यकाल में बनारस नगर विदेशों से आने वाले मुस्लिम प्रशासकों के अधिकार में रहा।[४९] इसके फलस्वरूप विदेशी मुस्लिम प्रशासकों ने ईस्लाम धर्म के सभी नियमों का यथावत पालन किया।[५०]

इस प्रकार विदेशों से आने वाले मुस्लिमों में तुर्क, खिल्जी, अफगान, सैयद, लोदी तथा मुगल प्रमुख थे।[५१] इन्होनें भारतीय मुस्लिमों पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित की और कई वर्गो में विभाजित हो गए।

अतः भारतीय समाज में मुस्लिमों ने अपना एक अलग अस्तित्व निर्धारित किया। जो मध्यकाल में भारतीय समाज का अंग बन गए। इस काल में अनेक सूफी सन्तों तथा विद्वानों ने भी मुस्लिम समाज को भारत में एक दिशा प्रदान की, जिससे बनारस नगर भी उससे अछूता न रहा। विदेशी मुस्लिमों के धर्मपरिवर्तन के कारण भारतीय समाज में मुस्लिमों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि ने अनेक समस्याएं उत्पन्न की तथा मुस्लिम समाज में आन्तरिक संघर्ष उत्पन्न

---

[४६] तारीखें फकरूद्दीन मुबारक शाह, ई० डेनियस रॉस द्वारा सम्पादित, पृ० १२
[४७] वही।
[४८] [illegible], पृ० १७६
[४९] इब्नबतूता, पृ० ६७, अब्दुल करीम पृ० १४३, १४४
[५०] राधेश्याम, पृ० १४४
[५१] वही।

इस प्रकार मध्यकाल में मुस्लिमो के दो सूलि सामाजिक वर्ग थे – "अहल–ए–शेप" (तलवारधारी) तथा "अहल–ए–कुलम" (लेखनीधारी)[५२]

इसमे "अहल–ए–कुलम" वर्ग के लोग प्रथम एक या दो पीढ़ियों तक पूर्णरूपेण अत्तुर्की विदेशियो तक ही सीमित थे। इन्हीं में से लिपिक सेवाओं, जैसे –कातिब,दबीर, वजीर आदि के लिए लोग नियुक्त होते थे।[५३] कुलीन वर्ग (उमरा अथवा खान) की गणना "अहल–ए–शैफ" की श्रेणी में होती थी। वे साधारणतया सत्तारूढ़ शासक के पक्ष में होते थे। इस काल में मुस्लिम सैय्यदों का भी काफी सम्मान था, और उन्होनें समाज में काफी उच्च स्थान प्राप्त कर लिया था।[५४] कुलीन वर्ग की रचना विजातीय थी तथा तुर्की, अफगानी, अरबी, फारसी, मिस्त्री मुगल और भारतीय। मुस्लिम अभिजात्य वर्ग मध्यकाल के प्रारम्भिक हिस्से तक विदेशियों द्वारा गठित था। किन्तु अठारहवीं शताब्दी तक के इस समाज के अविभाज्य अंग बन गए।[५५] भारतीय मुस्लिमों की अधिकांश संख्या उन्हीं लोगों की है जिनके पूर्वजो ने इस्लाम स्वीकार किया था।[५६]

कुलीन वर्ग राज्य में रणनायकों, प्रशासकों तथा यदा–कदा राजकर्ता के रूप में अपने प्रभावयुक्त सामर्थ्य का प्रयोग करता था। बनारस नगर में भी अन्य क्षेत्रों के समान ही उल्मा का महत्व था। ये आध्यात्मिक गुरू थे और आध्यात्मिक सिद्धांतों की व्याख्या करते थे।[५७] इस वर्ग के व्यक्ति अदालती और धर्मोपदेशक विषयक सेवाओं पर नियुक्त किए जाते थे। प्रत्येक मुस्लिम बस्ती की मस्जिद में एक इमाम, कातिब और एक मुफ्ती होते थे, जो इस पक्ष का प्रतिनिधित्व करते थे तथा जिसे राज्य की मान्यता प्राप्त होती थी। वे मुस्लिम

---

[५२] हबीबुल्ला, द फाउन्डेशन आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया पृ० २७४

[५३] वही,

[५४] मो० यासीन, ए सोशल हिस्ट्री आफ मेडिवल इस्लामिक इण्डिया, पृ० १६

[५५] युसुफ हुसैन, डिलम्पसेज आफ मेडिवल इण्डिया कल्चर एशिया पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली पृ १२६

[५६] वही,

शिक्षा संस्थाओं पर भी नियंत्रण रखते थे। तथा इस प्रकार के धार्मिक चितन एव शिक्षा को प्रतिपादित करते थे, जो उसके विचारो को सुदृढ आधार प्रदान करता था।[५८]

सामान्य रूप से मुस्लिम समाज जाति प्रथा विहीन समाज था । कुलीन वर्ग के अतिरिक्त अन्य मुस्लिम जनता जनसाधारण के रूप मे विद्यमान थी। इस काल में मुस्लिमों का मुख्य व्यवसाय व्यापार था। इन्हीं मुस्लिम व्यापारियों ने मुस्लिमो के मध्य वर्ग का सृजन किया। मदरसों व मस्जिदो में शिक्षा देने वाले धर्मशास्त्री, शिक्षक, उपदेशक, दार्शनिक, साहित्यकार, लेखक तथा इतिहासकार आदि भी मध्य वर्ग के सदस्यों में समाहित थे।[५९] इस प्रकार जैसे जैसे नगरीकरण की प्रवृत्ति बढती गयी वैसे वैसे सामान्य आय अर्जित करने वाले लोगो का उत्कर्ष हुआ। ये मुस्लिम समाज के मध्य वर्ग का अग थे। मध्य वर्ग के नीचे मुस्लिम, हज्जाम, दर्जी, धोबी, मल्लाह, घसियारे, बाजे वाले, तम्बोली, माली ,तेली, मदारी, संगीतज्ञ और चरवाहे इत्यादि थे। भिखारी और निराश्रित भी इसी श्रेणी में आते थे।[६०]

मुस्लिम आबादी का एक वर्ग गृह सेवकों तथा गुलामों के रूप में कार्यरत था, जिनकी विशाल संख्या थी। प्रत्येक शासक, कुलीन वर्ग तथा सम्पन्न व्यक्ति स्त्री पुरूषों को गुलाम के रूप में रखते थे। उन्हें गृहस्थी के कार्यो के अलावा कल कारखानों में भी नियुक्त किया जाता था।[६१] कभी–कभी शासक वर्ग इनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर उन्हें मुक्त कर देता था। चीन, तुर्किस्तान, ईरान आदि देशों से गुलाम स्त्री पुरूषों को लाया जाता था। दासियां दो प्रकार की होती थी–प्रथम वे जो गृह सेवाओं के लिए प्रयुक्त होती थी, द्वितीय वे जो मनोरंजन के लिए होती थीं।

---

[५७] इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसीडिंग, पटना, १९५४ तथा एम० मुजीब पृ० २०७

[५८] तल्जालिये नूर, जिल्द–२, पृ० ३४

[५९] राधेश्याम, पृ० १९१

[६०] ए० बी० एम० हबीबुल्लाह, फाउन्डेशन आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, पृ० २७४

हिन्दू मुस्लिम अन्तर्क्रिया

मध्यकालीन भारत में मुस्लिम साम्राज्य के उदभव एवं विस्तार ने बनारस की राजनीतिक दशाओ में हुए परिवर्तनों से यह स्पष्ट हुआ है कि हिन्दू धर्म के इस प्रमुख केन्द्र में मुस्लिम धर्मावलिम्बयो द्वारा सत्ता स्थापित करने के साथ–साथ इस्लाम के प्रचार का निरन्तर प्रयास किया। निरन्तर युद्धों की प्रकिया में मन्दिरो को भी नष्ट किया गया। तत्कालीन मुस्लिम प्रशासकों की दृष्टि में हिन्दू धर्मावलम्बी अत्यत पिछडे हुए, कुरीतियो और कुप्रथाओ से ग्रस्त थे, जिनका उत्थान करना उनकी दृष्टि में उनके अपने धर्म के माध्यम से ही सम्भव था।[६२] सनातन संस्कृति और धर्म से सम्बन्धित विद्वानों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि विश्व के प्राचीनतम धर्म के रूप में यह स्थापित रहा है। ऐसी स्थिति में मुस्लिम साहित्यकारों ने इस्लाम के बढते हुए प्रभाव को अधिक सुदृढ़ करने का प्रयास किया। सत्ता से सम्बद्ध इतिहासकारो द्वारा इस्लाम की सैद्धान्तिक मान्यताओं को व्यवहृत करने पर बल दिया जा रहा था जिसका मूलमंत्र तो सिद्धांततः सार्वभौमिक भ्रातृत्व और मानवीय क्षमता के उत्थान के रूप मे स्थापित था, परन्तु व्यवहार में यह अपने प्रसार के लिए अन्य धर्मो के उन्मूलन पर केन्द्रित हो गया था।[६३] इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि इस्लाम धर्म के बनारस आगमन के पूर्व बौद्ध धर्म के प्रभाव से परम्परागत सनातन धर्मावलिम्बयों के समाज को मुक्त करने का प्रयास किया गया था।[६४] साथ ही साथ परम्परागत सनातन धर्म की वैदिक व्यवस्थाओं को लागू करने की दिशा में भी महत्वपूर्ण कार्य किए गए थे। बौद्ध और वैदिक मान्यताओं के आधार पर नए दार्शनिक सिद्धांत व्यवहृत किए जा रहे थे। इस सम्बध में

---

[६१] पी० एन० ओझा, पृ० १३३–१३४

[६२] युसुफ हुसैन, ग्लिम्प्स आफ मेडिवल इण्डिया, पैरा.–१

[६३] वही,

[६४] युसुफ हुसैन, पृ० १

युसूफ हुसैन[६५] का कथन है कि जब मुस्लिम भारत आए उस समय ब्राह्मण धर्म पूर्णतया बौद्ध धर्म पर विजय प्राप्त कर चुका था। अपने प्रभाव मे वृद्धि के लिए वैदिक कर्मकाण्ड और बौद्ध धर्म की मानवतावादी विचारो तथा आर्यों के पूर्व के धार्मिक क्रियाओं तथा प्रतीकों को इस धर्म ने स्थापित कर लिया था। तत्कालीन हिन्दुओं में शैव, वैष्णव और शक्ति पंथ की मान्यताएँ प्रचलन में थी। हिन्दू धर्म की ब्राह्मणवादी विचारधारा ने तत्कालीन हिन्दू समुदाय को संतुष्ट करने मे सफलता अर्जित कर ली। ऐसे लोग जिनके पास समयाभाव के कारण ध्यान एव योग से स्वविचार एव चिंतन का अवसर नही था, वे प्रतीकों की पूजा से ही संतुष्ट थे। तंत्र विद्या के अन्तर्गत इस सम्बंध में विविध नियम और कर्मकाण्ड वर्णित थे, जिनका अनुपालन कर सामान्य जन अपनी धार्मिक अभिलाषा की पूर्ति करता था।[६६]

उपनिषदों की तर्कसंगत एवं व्यवस्थित व्याख्या प्रस्तुत कर शकराचार्य ने हिन्दू धर्म को नवजीवन प्रदान किया था। शंकराचार्य ने व्यक्ति की आत्मा और ब्रह्म की पूर्ण सत्ता प्रस्थापित करते हुए वेदान्त सूत्र में ब्रह्माण्ड के निहितार्थ का विवेचन किया। उन्होनें तत्कालीन धार्मिक समस्याओं का युक्तिसंगत समाधान प्रस्तुत किया। ज्ञानमार्ग से ईश्वर की प्राप्ति और इसे मोक्ष प्राप्त करने की विधा के रूप में प्रस्थापित किया। शंकराचार्य के प्रयासों के परिणामस्वरूप तत्कालीन ब्राह्मण वादी धार्मिक व्यवस्था में बौद्धिक युक्तिसंगतता ही प्रधान बन गयी थी।[६७] उन्होनें एकेश्वरवाद पर बल दिया, जिसके अर्न्तगत ईश्वर सत्य निराकार और सार्वभौम है। इसके अर्न्तगत आत्मसंवेदी तथा आत्मगत मान्यताओं का कोई स्थान नहीं था। ऐसे लोग जिन्हें नैतिक और संवेगात्मक संतुष्टि की आवश्यकता थी, उन्हें इस बौद्धिक सैद्धान्तिक परिवेश में हृदय की संतुष्टि तथा नैतिक निर्देशन के लिए कुछ भी

---

[६५] वही,

[६६] पूर्वोद्धत,

[६७] युसुफ हुसैन, पृ० २

उपलब्ध नहीं था, तथा उनके सिद्धान्त में भक्ति के लिए कोई स्थान नही था। धीरे धीरे प्रतिक्रियात्मक परिवेश का सृजन हुआ। ऐसे परिवेश में भक्ति आन्दोलन का अभ्युदय हुआ। जिसमें ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण को प्रमुखता प्रदान की।[६८] भक्ति की मुख्य उपलब्धि सार्वभौम सत्ता के प्रति 'स्व' के दृष्टिकोण का परिवर्तित होना था। भक्ति शब्द की व्युपत्ति और उसके प्रयोग के सम्बंध में जो तथ्य प्राप्त किए गए उनसे स्पष्ट होता है कि 'भक्ति' पद दूसरी ई०पू० शताब्दी में पालि साहित्य में प्रयुक्त हुआ था। गुहलर के अनुसार इस शब्द का प्रयोग ८वीं शताब्दी ई०पू० भी पाया जाता है। बौद्ध छन्दोग्य उपनिषद में गोपाल कृष्ण और वासुदेव कृष्ण का एकाकार होना भक्ति को इंगित करता है। महाभारत के शान्ति पर्व और बौद्ध साहित्य के अर्न्तगत ही भागवत के अर्थ में सतवत का प्रयोग किया गया है। भगवदगीता के एकान्तिका धर्म में भक्ति की प्रथम मान्य धारा का प्रवाह परिलक्षित होता है। भारत मे भक्ति सम्बंधी विचारों के उदय के सम्बंध में विद्वानों द्वारा समय समय पर विचार विमर्श किए जाते रहे हैं। यूसुफ हुसैन[६९] के विचार में भक्ति आन्दोलन रूढिवादी, सामाजिक तथा युक्तिहीन धार्मिक विचारों के विरूद्ध हृदय की प्रतिक्रिया तथा भावों का उद्‌गार है। यह हिन्दू बहुदेवतावाद पर ईश्वर के एकत्व की इस्लामी धारणाओं के प्रभाव से उपजा था। अवध विहारी पाण्डेय[७०] इसे हिन्दू समाज के आत्म सुधार का प्रयास मानते हैं। ताकि वह मुस्लिम राजनीतिक सत्ता से उत्पन्न चुनौतियों का और सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र में हिन्दुओं पर श्रेष्ठता पाने के मुस्लिम प्रयासों का सामना कर सके। आई०एच० कुरैसी[७१] के अनुसार भक्ति आन्दोलन मुस्लिमों को अपने में समेटने के बारे में हिन्दुओं का उदारतापूर्व सीमित प्रयास था। के०एस०लाल ने

---

[६८] वही,

[६९] युसुफ हुसैन, पृ० ३

[७०] ए० बी० पाण्डेयः द फर्स्ट अफगान इम्पायर इन इण्डिया, कलकत्ता, १९५६, पृ० २५८–६०

[७१] आई० एच० कुरैशीः द मुस्लिम कम्युनिटी आफ द इण्डो–पाकिस्तान सबकंटीनेंट (८१०–१९४७)

१५वी ई० के इस आन्दोलन को भारतीय समाज की खामोश क्रान्ति कहा है जो इस्लाम धर्म, विशेष रूप से सूफीवाद और हिन्दू विचारों की क्रिया–प्रतिक्रिया से उपजी थी।[७२]

व्यक्तिवादी विचारक मैक्स वेबर और उसके अनुयायियो ने भक्ति को आध्यात्मिक मोक्ष के अभिकरण और धर्म की प्रतिमानित दशा के रूप में स्वीकार किया है। उनका यह मानना है कि भक्ति सम्बंधी विचार ईसाई धर्म के साथ भारत आया, जिसका प्रभाव पुराणों और महाभारत जैसे मूल साहित्य की अवधि में हिन्दू धर्म पर दिखाई देता है। (लेकिन ईसाई और हिन्दू धर्मों के मध्य निहित प्रतीकों और व्यवहार क्रियाओं में जो समानता दिखलाई देती है उनके आधार पर कोई सामान्य निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है।[७३] वस्तुतः कुछ ऐसी घटनाएं है जो इनमें समानता प्रदर्शित करती है, लेकिन वे मानव जीवन की सार्वभौमिक इच्छाओं और उनके मानवीय व्यवहारों में ही सन्निहित होती है जैसे प्रेम, लगाव, अपनत्व, चाह जैसी मूल [illegible] विश्व के प्रत्येक मानव में सन्निहित होती है, भक्ति एक ऐसी घटना है जो सार्वभौम और मानवीय है। यह प्रत्येक जाति, राष्ट्र, धर्म और समुदाय में देखी जा सकती है। इसलिए यह कहना कि किसी धर्म विशेष के प्रभाव में किसी धर्म में भक्ति के विचार उत्पन्न हुआ हो असंगत और अस्वीकार करने योग्य है।[७४]

भक्ति के मूल मन्तव्यों के विषय में स्पष्टीकरण देते हुए बार्थ ने कहा है कि भक्ति एक मूल घटना है जो हिन्दुओं के धार्मिक विचारों की जड में निहित है, यह किसी अन्य धर्म से उधार नहीं ली गयी है। सेनार्ट ने भी स्वीकार किया है कि भारत में भक्ति की जड़ें अत्यन्त गहरी हैं। वैदिक मंत्रों में भी इसके भाव सन्निहित है। विष्णु, कृष्ण, शिव आदि सभी मानवोत्तर

हेग, १९६२, पृ० १०४ से १२४

[७२] के० एस० लाल, ट्विलाइट आफ द सल्तनत, मुम्बई, १९६३, पृ० २९१–३१५

[७३] युसुफ हुसैन, पृ० ४

[७४] वही,

सन्ताओं के प्रति हिन्दू सदैव से भक्ति पूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करते रहे हैं।[७५] इस सम्बंध में युसुफ हुसैन का कथन है कि भक्ति एक ऐसा भाव है जो सभी जगह पाया जाता है। ईश्वर में प्रेम के रूप मे इसकी उत्पत्ति भारत मे भी दिखलायी देती है। यह अपने मान्य देव के प्रति पूर्ण समर्पित है।[७६] मध्यकालीन बनारस के धर्म प्रधान जीवन में भक्ति आन्दोलन के प्रभाव और उससे सम्बन्धित संप्रदायो के विकास के संबध मे रंगाचार्य, डा०ताराचंद्र, युसुफ हुसैन, भडारकर, अब्दुल रशीद आदि के अध्ययन महत्वपूर्ण है। इन अध्ययनों के अर्न्तगत एकेश्वरवाद के विकास, मायावाद के विरोध और जाति प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया गया है । इन प्रयासो ने विभिन्न सम्प्रदायों का ह्रदय विश्लेषित करते हुए धार्मिक मान्यताओं का विवेचन किया है। इन अध्ययनों से यह भी स्पष्ट होता है कि धार्मिक सुधार और भक्ति आन्दोलन से सम्बद्ध अधिकांश कवि तथा समाज सुधारक बनारस से सम्बद्ध रहें हैं। तात्पर्य यह है कि मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन का केन्द्र बनारस था। रामानंद हो या कबीर, रैदास हो या तुलसी, सभी अपनी मान्यताओं और उपलब्धियों के सृजन, समन्वय और प्रसार के लिए बनारस से सम्बद्ध रहें हैं।

रामानन्द

रामानन्द का जन्म कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल में माघ कृष्ण सप्तमी सवत १३२४ वि को प्रयाग में हुआ था। रामानन्द रामानुजी सम्प्रदाय के थे। १२ वर्ष

---

[७५] Bhakti was certainly in India with very deep roots it is much less a dogma than a sentiment whose powerful vitality is attested all along the course of history and poetry Already in the Vedas hymns the pious enthusiasm burst in to vibrant suppression of gauss monotheism the passionate longing of the one penetrates the oldest metaphysics The Hindus and Aryans were largely prepared to lowdown before divine unites many superman personalities must have emerged from the religious fermentation which was working silently under the traditional surface and which assisted along with the blending of races the increases of local tradition and raised to the highest level figures such as Vishnu, Krishna, Shiva, ehether entirely new or renewed by their unforeseen importance froths there was no need of any foreign influence La,Bhagwadgita ,p.35,ibid,p

[७६] युसुफ हुसैन पृ० ५–६

की अवस्था में रामानन्द शिक्षा के लिए बनारस मे आए थे। यहा पर उन्होनें शंकर वेदान्त का अध्ययन किया। बाद में वे श्री वैष्णव मत के आचार्य राघवानन्द के शिष्य हो गए और उनके साथ बनारस मे ही रहने लगे।[७७] रामानन्द के विषय में प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों से यह स्पष्ट हुआ है कि अपने भ्रमण काल में उन्होने सनातन धर्म के साथ साथ इस्लाम धर्म का भी ज्ञान प्राप्त किया था। उनकी विचार धाराएं और भौतिक जगत के प्रति मान्यताएं इस्लाम से प्रभावित थीं जबकि उनका मानवतावादी एवं उदारवादी दृष्टिकोण सनातन धर्म से प्रभावित था।[७८] वस्तुतः रामानन्द ने युक्तिसगतता, आध्यात्म और भ्रातृत्व जैसे गुणों को समन्वित कर भक्ति को मोक्ष का एकमात्र साधन स्वीकार किया। उनके दर्शन में मायावाद और ज्ञान वाद के लिए स्थान नहीं था। वे मानते थे कि ईश्वर सर्वव्यापी है, इसलिए उसकी अनुभूति की जा सकती है उसे प्राप्त करने के लिए देवालयों में जाने की आवश्यकता नहीं है।[७९] वे मानते थे कि समाज में परम्परागत संस्तरणात्मक व्यवस्था का जो आधार विकसित किया जाना चाहिए इसलिए उन्होनें भ्रातृत्ववाद का प्रतिपादन किया। भविष्य पुराण के अनुसार रामानन्द के प्रभाव से बहुत से मुस्लिम वैष्णव हो गए थे और उन्होनें वैष्णव प्रतीको को अपना लिया था।[८०]

तेरहवीं शताब्दी के अंत में स्वामी रामानन्द के आविर्भाव को उत्तरी भारत के भक्ति आन्दोलन के क्षेत्र में एक महान घटना मानी जाती है। स्वामी रामानन्द जी एक उच्चकोटि के विद्वान, भक्त और समाज सुधारक थे। उनके समय में देश की राजनैतिक समाजिक और धार्मिक स्थिति कुछ ऐसी थी कि हिन्दू धर्म की रक्षा का प्रश्न बड़ा ही विकट हो गया था।[८१] एक ओर मुस्लिम धर्म और संस्कृति के आगमन से तो दूसरी ओर हिन्दू मतावलम्बियों के

---

[७७] युसुफ हुसैन पृ० १३
[७८] वही।
[७९] वही।
[८०] राधाकमल मुखर्जी, द कल्चर एण्ड आर्ट ऑफ इण्डिया, पृ० ५४

जात–पॉत और ऊँच–नीच के भेदभाव के कारण हिन्दू समुदाय अपने मे ही विभक्त था। रामानन्द ने बडी दूरदर्शिता से तत्कालीन परिस्थिति को समायोजित किया। तत्व दृष्टि से वे रामानुजाचार्य के मतावलम्बी थे,लेकिन उन्होनें अपनी उपासना का एक भिन्न केन्द्र निश्चित किया। उपासना के लिए आराध्य विष्णु के स्वरूप को न लेकर सामाजिक धरातल पर जीवन के विविध आयामों में अंत. क्रिया के प्रतिमानों को स्थापित करने वाले अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र श्री राम को अपना इष्ट देव चुना।[८२]

स्वामी रामानन्द का आध्यात्म केन्द्र मठ पंचगंगा घाट बनारस में स्थित था ऐसे प्रमाण है कि मुस्लिम शासन काल मे इस मठ को ध्वस्त कर दिया गया था। इस कारण यहां न तो इस सम्प्रदाय के हस्तलिखित ग्रन्थ ही मिलते हैं और न ही कुछ पुराने स्मृति चिहन।[८३] इनके सम्बंध मे तथ्य सगत विवरण समकालीन साहित्य और विचारकों द्वारा प्रस्थापित मान्यताओ के अन्तर्गत ही प्राप्त होते हैं।

स्वामी रामानन्द का सामाजिक दृष्टिकोण उनकी धार्मिक मान्यता के अनुरूप ही था। वे सामाजिक कुरीतियों के प्रबल विरोधी थे। उनका दृष्टिकोण जाति–पॉति के सम्बंध में बहुत उदार था। उन्होनें इस क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने वाले विचारों को उदघाटित किया था। उनका कहना था कि सामाजिक भेद भाव बढ़ाने वाले युगों से अवरूद्ध मन्दिर शूद्रों के लिए खोल दिए जाए।[८४] उन्होनें मानव के मध्य समानता पर बल दिया। भक्तमाल के अनुसार अनन्तानन्द, कबीर, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, पद्मावती, नरहर्यानंद, पीपा, भावानंद, रैदास, घना, सेन, सुरसीरि, आदि स्वामी रामानन्द के प्रमुख

---

[८१] डा० हिरण्मय, भक्ति आन्दोलन, आगरा, १९५९, पृ० ५४,

[८२] वही।

[८३] डा० बद्री नारायण श्रीवास्तव, रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव ,प्रयाग, १९५७, पृ० ८७

[८४] डा० देवमणि, संत साहित्य में मानव मूल्य, इलाहाबाद, १९८९, पृ० १९

शिष्यो में थे। निम्न जाति के शिष्यो में घना नामक जाट, सेन नामक नाई, रैदास नामक चमार तथा कबीर नामक जुलाहा भी था।[८५]

रामानुज सम्प्रदाय की दीक्षा केवल द्विजातियो को दी जाती थी, परन्तु स्वामी रामानन्द ने रामभक्ति का द्वार समस्त जातियों के लिए मुक्त कर दिया।[८६] क्योंकि उनके मत से गुरू को आकाश धर्मा होना चाहिए, जो पौधे को बढने के लिए उन्मुक्त अवसर प्रदान करे न कि शिलाधर्मी की भांति हो जो पौधे को अपने गुरूत्व से दबाकर उसका विकास ही अवरूद्ध कर दे। ऐसा कहा जाता है कि स्वामी रामानन्द को खानपान के संदर्भ में अपने गुरू राघवानंद जी से मतभेद होने के कारण अलग होना पड़ा था।[८७] वस्तुत सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए स्वतंत्र चिंतन शक्ति स्वामी रामानन्द की एक बड़ी विशेषता थी जो कि मध्य युग की स्वाधीन चितन पद्धति की पोषक शक्ति बनी। स्वामी रामानन्द ने श्री सम्प्रदाय के भक्ति योग की उपासना एवं अर्चन विधियों को अधिक महत्व न देकर भक्ति पर बल दिया।[८८] यद्यपि उन्होनें रामानुज की अनन्य दास्य भक्ति में शरणागति का भाव अपनाया, तो भी उसकी साधना के लिए वर्णाश्रम का बंधन व्यर्थ समझा तथा खानपान के समस्या में पड़ना बाधक माना। उन्होनें अपने मत का प्रचार करने के लिए वैरागियों को [illegible] किया जिसमें सभी जातियों के लोगों को सम्मिलित होने की अनुमति दी। उन्होनें ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक को रामनाम का उपदेश दिया। रामानन्द ने भक्ति और व्यावहारिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करके समस्त हिन्दू जाति को ऊपर उठाने का सतत प्रयत्न

---

[८५] नाभादास, भक्तमाल, लखनऊ, १६६०, पृ० २६०

[८६] रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रयाग, नवां संस्करण, १६८६, पृ० १२२–१२३

[८७] वही।

[८८] डा० हिरण्मय, पृ० ५४–५५

किया।[८९] स्वामी रामानन्द ने प्रेमपूर्ण भक्ति पर बल दिया। उन्होने रीति रिवाज, धार्मिक उत्सवों, उपवासों और धर्म यात्राओं पर अधिक बल नही दिया।[९०]

स्वामी रामानन्द की एक अन्य प्रमुख देन यह थी कि उन्होने भक्ति आन्दोलन को लोकवादी स्वरूप प्रदान किया। उनके शिष्य सगुण और निर्गुण दोनों ही स्वरूपों के उपासक थे। उन्होनें राम भक्ति की परम्परा का विकास किया। राम भक्ति की आगे चलकर दो प्रबल शाखाएं विकसित हुई। पहली निर्गुण भक्ति धारा जिसके प्रचारक कबीर हुए और दूसरी सगुण भक्ति धारा जिसके उन्नायक गोस्वामी तुलसीदास हुए।[९१]

स्वामी रामानन्द की तीसरी देन यह थी कि उन्होनें सस्कृत की अपेक्षा हिन्दी भाषा में अपने मत का प्रचार किया। इसका परिणाम यह हुआ कि सर्वप्रथम आचार्य के उपदेश जनसाधारण की पहुच में आए।

स्वामी रामानन्द का व्यक्तित्व अत्यन्त विशिष्ट था। तत्कालीन समाज में प्रचलित कुरीतियों को दूर करना सरल कार्य नहीं था। हजारों वर्ष से चली आ रही व्यवस्था को सरलता से परिवर्तित भी नहीं किया जा सकता था। प्रस्थापित सामाजिक और धार्मिक मान्यताएं जनमानस में सम्मिश्रित हो चुकीं थीं। ऐसी स्थिति में वे एक ओर वर्णाश्रम का बंधन मानते थे, तो दूसरी ओर साधु, संतों के प्रति उनमें समानता का भाव था।[९२] इस सन्दर्भ में दिनकर ने लिखा है कि स्वामी रामानन्द की विचारधारा में प्राचीनता और नवीनता का समन्वय था। शास्त्रों का भाष्य करते समय वे वर्णाश्रम के प्रतिबंधो का खण्डन नहीं कर सकते थे। किन्तु उनके लिए यह भी कठिन था कि किसी भक्त का निरादर सिर्फ इसलिए करे कि उसका जन्म ब्राह्मण अथवा द्विज वंश में नहीं

---

[८९] वही।

[९०] डा० बद्री नारायण श्रीवास्तव, पृ० ८३

[९१] डा० हिरण्मय,पृ० ५६

[९२] वही।

हुआ है। विचार से वे कठोर वर्णाश्रम धर्म के समर्थक थे, किन्तु अपने आचार से दयालु सत थे।[६३]

स्वामी रामानन्द ने अपना अधिकांश समय बनारस में ही व्यतीत किया था। उन्होनें अपनी शिक्षाओं के द्वारा तत्कालीन समाज को एक नई दिशा प्रदान की जिसमें जातीय भेदभाव ऊंच नीच आदि मान्यताओं के लिए कोई स्थान नहीं था। स्वामी रामानन्द युगदृष्टा हीं नहीं युगसृष्टा भी थे। उन्होनें ऐसे भक्ति मार्ग का प्रचार किया जिसमें एक ओर वैयक्तिक उपासना पद्धति समाज के सभी वर्गो के लोगों के लिए अनुकूल बनी तो दूसरी ओर वर्ण व्यवस्था तथा शास्त्र सम्मत मर्यादा को भी पूर्ण मान्यता प्राप्त हुई।[६४] यह नूतन भक्ति आन्दोलन इतना व्यापक और लोकप्रिय हुआ कि समस्त उत्तरापथ के लोगों की धार्मिक विचार धारा को नवजीवन प्राप्त हुआ। स्वामी रामानन्द ने मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के बाद भ्रमित एवं पीड़ित हिन्दू समुदाय को सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में समायोजन की शैली विकसित करने की नई दृष्टि प्रदान की।[६५]

कबीर

सल्तनत कालीन बनारस की धार्मिक अव्यवस्था के साथ–साथ हिन्दू समाज का मानसिक तथा नैतिक ह्रास होने लगा था।[६६] संक्रमण कालीन सामाजिक–धार्मिक परिवेश में १४५५ ई० या १४५६ ई० में एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से कबीर का जन्म हुआ।[६७] कबीर अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ "महान" होता है। कबीर का प्रारम्भिक जीवन एक मुस्लिम के घर में व्यतीत हुआ था। कबीर स्वयं को न हिन्दू मानते थे और न ही मुसलमान,

---

[६३] रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पटना, १९६६, पृ० ३७७

[६४] वही।

[६५] वही।

[६६] डा० झारखण्डे चौबे और कन्हैया लाल श्रीवास्तव, उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान, लखनऊ, प्रथम सस्करण, १९७९, पृ० ३२८,

[६७] वही।

अपितु स्वयं को योगी कहते थे। जो जुगी जाति का पर्याय है। कबीर पथी परम्परा के अनुसार कबीर की जन्मभूमि बनारस थी। जनश्रुति और साक्ष्य से भी ज्ञात होता है कि उनका जन्म स्थान बनारस है। सत कबीर की एक पक्ति, सकल जन्म सिवपुरी–गंवाइया मरती बार मगहर उठि धाइया।[९८] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर की कर्मभूमि बनारस थी, परन्तु जब वे गर्वपूर्वक कहते है कि तू ब्राह्मन मैं काशी का जुलाहा[९९] तो यह स्पष्ट होता है कि कबीर का जन्म बनारस में ही हुआ होगा। कबीर का कुल भी अत्यंत विवाद का विषय है। कबीर ने अपनी रचनाओं में अपने को कोरी भी कहा है। जुलाहा और कोरी दोनों पेशे से एक ही होते थे। परन्तु जुलाहे मुस्लिम थे और कोरी हिन्दू धर्मावलम्बी थे। विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर कबीर का समय चौदहवी तथा पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य का माना जाता है। जनश्रुति है कि कबीर सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। सिकन्दर लोदी ने बोधन नामक ब्राह्मण को जो कबीर का शिष्य था इस्लाम धर्म न स्वीकार करने पर उसे मृत्यु के घाट उतार दिया था।[१००] डा० बड़थवाल का मत है कि कबीर किसी प्राचीन कोरी किन्तु तत्कालीन जुलाहा कुल के थे जो मुस्लिम होने के पहले जोगियां सम्प्रदाय का अनुयायी था।[१०१] अनुश्रुति के अनुसार कबीर रामानन्द के शिष्य थे। कबीर की एक साखी से ज्ञात होता है कि कबीर के गुरू बनारस में रहते थे।

कबीर गुरू बसै बनारसी ,सिष समदो तीर।[१०२]

---

[९८] डा० रामकुमार वर्मा, संत कबीर, इलाहाबाद, १९६८, पृ० १७

[९९] वही, पृ० ११६

[१००] इलियट एण्ड डाउसन में लोधन नाम दिया है प्रो० एच० एस० विल्सन का मत है कि यह कबीर का शिष्य था।

[१०१] डा० पी०डी० बडथवाल, योग प्रवाह, पृ० १२६

[१०२] –क०ग्र० हेतु प्रीति स्नेह को अंग, साखी–२

दविस्तान–मुहासीन फनी के अनुसार कबीर अपने आध्यात्मिक गुरू की खोज में अनेक हिन्दू और मुस्लिम संतो के पास गए परन्तु कोई उनकी आध्यात्मिक तृष्णा को शान्त नही कर सका।[१०३]

वस्तुतः कबीर की शिक्षा–दीक्षा नहीं हुई थी। स्वामी रामानन्द की मृत्यु १४१० ई० में हुई और कबीर की मृत्यु १५१८ ई० में हुई थी। इसलिए यह मानना कठिन है कि कबीर स्वामी रामानन्द के शिष्य थे। फिर भी कुछ विद्वानों ने स्वामी रामानन्द का समय कुछ आगे लाकर कबीर को उनका शिष्य दिखलाने का प्रयास किया है लेकिन यह सत्य है कि कबीर को रामानन्दी सम्प्रदाय से अत्यधिक स्फूर्ति और सम्बल प्राप्त हुआ था। कुछ दिनो तक कबीर प्रयाग और मानिकपुर में भी रहे। प्रयाग में गंगा पार झूंसी में रहते हुए शेखतकी के नाम से एक सूफी संत से उनकी मुलाकात हुई थी। ये कबीर के पीर थे, ऐसा माना जाता है कि हिन्दूओं और मुस्लिमों में निहित भेदभाव को मिटाने के प्रयत्न में सफलता प्राप्त करने के लिए कबीर को शेखतकी का आशीर्वाद मिला था।[१०४] बनारस के धार्मिक परिवेश में जीवनयापन करते हुए उन्होनें हिन्दू धर्म दर्शन और संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया। एक हिन्दू संत अष्ठानन्द से उन्होंने बहुत कुछ सीखा।[१०५]

मध्यकालीन मानवतावादी विचारधारा के प्रवर्तक संतों में कबीर अग्रणी रहें हैं। कबीर नव युग का निर्माण करने वाले बनारस की एक महान विभूति थे। उन्हीं के संदेश से मृतप्राय हिन्दू समाज जीवन ज्योति से जगमगा उठा था।

धार्मिक मान्यताः—

कबीर के समय में हिन्दू समाज विभक्त एवं कर्मकाण्डों से घिरा हुआ था। जन सामान्य में शिक्षा का अभाव था। धर्म के नाम पर समाज में अनेक

---

[१०३] –दविस्तान–ए–मजहिब, पृ० १८६

[१०४] बीजक, रमैनी ६३, पृ० ७६

प्रकार की कुप्रथाएं फैली हुई थी। हिन्दू समाज के इस विकृत रूप के प्रति कबीर ने विद्रोही स्वर मे अपने विचारों को स्थापित किया। कबीर पूर्व निश्चित किसी भी तर्कहीन मान्यता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे।[१०६] यही कारण है कि उन्होने न तो इस्लाम धर्म स्वीकार किया और न ही हिन्दू धर्म ही उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन असत्य और बाह्म आडम्बरों से युद्ध करने मे व्यतीत कर दिया। कबीर के विचारों में किसी प्रकार के बाहयचारों और आडम्बरों का स्थान नहीं था । उन्होंने तत्कालीन परिवेश में एक नयी धार्मिक मान्यता को स्थापित किया – इनका सहज धर्म ह्रदय की निष्कपटता ,चरित्र की आचार प्रवणता और मन की शुद्धता पर आधारित है।[१०७]

काम कोध तृष्णा तजै ताहि मिले भगवान।

अथवा

हरि न मिले बिन हिरदै सूध।[१०८]

विश्व धर्म के सभी नैतिक आचरणों को कबीर ने अपने सहज धर्म में पूरा स्थान दिया। वास्तव में कबीर का सहज धर्म "मानव धर्म" ही है। विधि रूप में पाए जाने वाले नैतिक आचरणों में सत्याचरण, सारग्रहिता, समदर्शिता, शील , क्षमा दया, दान, धीरज, सन्तोष, अहिंसा आदि प्रमुख हैं। [१०९] निषिद्ध आचरणों मे मद्य, मांस, काम, कोध, लोभ, मान, तृष्णा आदि प्रमुख है। कबीर ने सर्वत्र ही अपने धार्मिक विचारों में सदाचार के पालन और निषिद्ध वस्तुओ और आचरणों के परित्याग पर बल दिया था। उनका "सहज धर्म" सच्ची नैतिकता इस भूमि पर खड़ा दिखाई देता है।[११०] उन्होंने समन्वयवादी निरपेक्ष

---

[१०५] युसुफ हुसैन पृ० १६

[१०६] डा० गोविन्द त्रिगुणारात, कबीर की विचारधारा, कानपुर, द्वितीय संस्करण, स० २०१४, पृ० ६५–६६

[१०७] पूर्वोद्धत।

[१०८] कबीर ग्रन्थावली, सम्पादक श्याम सुंदर दास, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, १९२८, पृ० १

[१०९] डा० गोविन्द त्रिगुणारात, पृ० ३३५

[११०] वही।

विचार धाराओं को स्थापित करने का प्रयास किया, और विचारो की शुद्धता तथा पवित्रता पर बल दिया। उन्होने कहा कि–

पाथर पूजै हरि मिलैं, तो मै पूजूँ पहाड।
याते तो चाकी भली, पीस खाय संसार।।
कांकर पत्थर जोरि कै, मसजिद लई चुनाय।
ता चढि मुल्ला बॉग दै, बहरा हुआ खुदाय।।

भक्ति भावनाः–

कबीर का युग अंधविश्वास का युग था। लोग धर्म का पालन हृदय से नहीं अपितु भय वश करते थे। हिन्दू और मुस्लिम दोनो धर्मों में अनेक बाहय आडम्बर प्रचलित हो चुके थे। उन्होनें सबका खण्डन किया। कबीर ने भक्ति मार्ग को कर्म मार्ग तथा ज्ञान मार्ग से श्रेष्ठ बताते हुए कहा कि जब तक आराध्य के प्रति भक्ति भाव विकसित नहीं होगा, तब तक जप, तप, संयम, स्नान आदि सब व्यर्थ है। उन्होनें कहा कि –

हरि बिन झूठे सब त्यौहार, केते कोउ करी गवाह।
झूठा जप तप झूठा ज्ञान, राम नाम बिन झूठा ध्यान।।
विधि न खेद पूजा आचार, सब दरिया में बार न पार।
इन्द्री स्वास्थ्य मन के स्वाद, जहॉ सॉच वहॉ माण्डे वादा।।[१११]
क्या जप क्या तप संयमी क्या व्रत क्या अस्नान।
तब लगि मुक्ति न जानिए भाव भक्ति भगवान।।[११२]

कबीर की भक्ति साधना में वेद, शास्त्र, ज्ञान, यज्ञ, तीर्थ, व्रत, मूर्तिपूजा आदि की कोई आवश्यकता नहीं, अपितु भक्ति अर्थात भाव भक्ति ही प्रधान थी। भाव, प्रेम, परमात्मा से मिलने की उत्कृष्ट इच्छा और विरह की तीव्र अनुभूति पर उन्होंने बल दिया। कबीर ने धर्म को जनसाधारण रूप में

---

[१११] कबीर ग्रन्थावली पृ० १७४
[११२] वही। पृ० ३२६

प्रदान करने के लिए उसकी सहजता पर बल दिया। कबीर का अद्वैतवाद न हिन्दूओं के ईश्वर से मिलता है न मुस्लिमों के अल्लाह से और न योगियों के योग से –

> भाई रे दो जगदीश कहाँ ते आया, कहँ कौने बौराया।
> अल्ला, राम, करीम, केशव, हरि, हजरत, नाम धराया।।
> गहना एक कनक ते गहना वामे भाव न दूजा।
> कहन सुनन जो दुई का थापै एक नमाज एक पूजा।।[113]

पहली बार कबीर ने धर्म को अकर्मण्यता से हटाकर कर्मयोगी की भूमि से सम्बद्ध किया था। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि सभी मनुष्य एक ही ज्योति से उत्पन्न हुए है। फिर मानव में भेद क्यो? ऊँच नीच की खाई खोदकर मानव मात्र को पृथक करने और घृणा का प्रचार करने की क्या आवश्यकता है। कबीर के युग में परस्पर दो धर्मो सस्कृतियों एवं सभ्यताओं के मध्य सघर्ष की स्थिति थी। कबीर हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच समानता का प्रतिपादन करके एवं पारस्परिक विरोध को समाप्त करके उन्हे एकता के सूत्र में बॉधना चाहते थे।

> एक बूँद एकै मल मूतर एक चाम एक गूदा।
> एक ज्योति तैं सब उपजा कौ बाभन कौ सूदा।।[114]

कबीर ने तत्कालीन समाज में व्याप्त विसंगतियों को दूर करने का प्रयास किया। कबीर आजीवन हिन्दू मुस्लिम भाईचारे और एकता के लिए प्रयत्नशील थे। इसी उद्‌देश्य से उन्होंने इन दोनो ही धर्मों में निहित अमानवीय आचरणों की अत्यंत कटु आलोचना की। लेकिन इस कटुता के मूल में सर्वमानव प्रेम ही छिपा हुआ था। उनके धर्म का उददेश्य मनुष्य को परमात्मा की ओर उन्मुख करना था। धर्म की अनेकता के बाद भी परमात्मा

---

[113] सबद, पृ० ३०

[114] डा० कामेश्वर प्रसाद सिंह, कबीर मूल्यांकन पुनर्मूल्यांकन, वाराणसी, १९९२, पृ० १४५

एक ही है।[११५] कबीर उस परमात्मा का स्मरण दिलाते है और पूछते है कि उस परमात्मा की प्राप्ति करने के लिए अनेक पंथ क्यों निर्मित करते हो ? और यदि विभिन्न पंथों का निर्माण कर ही लिया तब फिर उसमें परस्पर कलह के लिए स्थान कहाॅ है ?

जो खोदाय मसजीद बसतू है और मुलुक केहि केरा ?
तीरथ मूरत राम निवासी बाहर केहिका हेरा ?
पूरब दिशा हरि को बासा पश्चिम अजह मुकाम ।
दिल में खोज दिलही में खोजौं दूहै करीमा रामा।।
साधौ देखो जग बौराना।
हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमान
आपस में दोउ लडे मरत है, भेद न कोउ जाना।।[११६]

कबीर के समय का समाज धर्म के नाम पर विभिन्न मत मतान्तरो में बॅटा हुआ था । धर्म की आड में हिन्दू और मुस्लिम दोनो एक दूसरे से लड़ रहे थे। कबीर ने दोनों को फटकारते हुए कहा–

हिन्दू अपनी करै बडाई गगरी छुअन ने देही।
वेश्या के पावन तर सोए, यह देखी हिन्दुआई।।
इसी तरह मुसलमानों को फटकारतें हुए कहाः–
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गा मुर्गी खाई
खाला केरी बेटी ब्याहै घर में करै सगाई ।।[११७]

कबीर ने सभी धर्मावलम्बियों को फटकारते हुए उनमें समन्वय का प्रयास किया। उन्होंने हिन्दू धर्म के अद्वैत सिद्धान्त वैष्णव सम्प्रदाय से भक्तिमय उपासना बौद्ध धर्म से शून्यवाद और अहिंसा इस्लाम धर्म से एकेश्वरवाद सूफी सम्प्रदाय से प्रेमभाव तथा नाथ योग से हठयोग की साधना

---

[११५] वही।
[११६] वही, पृ० १७०–१७१
[११७] वही, पृ० १६३–१६४

ग्रहण कर नवीन मानवतावादी मत की स्थापना की। उन्होने राम रहीम को एक ही बतलाया।[११८]

कबीर धर्मोपदेशक या पुजारी नहीं थे । जीविका के लिए वे जुलाहे का व्यवसाय करते थे। उस समय जुलाहे का कार्य सामाजिक धरातल पर ऊँचा नहीं समझा जाता था। धर्म के आधार पर ऊँच–नीच का भेद था। कबीर ने इस व्यवस्था को स्वीकार किया और बड़े गर्व और अभिमान से कहा कि–

> जाति जुलाहा मति को धीर हरषि हरषि गुण–रमै कबीर ।
> मेरे राम की अभै पद नगरी कहै कबीर जुलाहा।।
> तू वामन मैं कासी का जुलाहा।।[११९]

वस्तुतः कबीर भक्ति आन्दोलन के ऐसे पहले संत थे जिन्होंने काशी नगरी से तत्कालीन समाज में व्याप्त विसंगतियों को दूर करने का प्रयास किया। हिन्दू मुस्लिम एकता और भाई–चारे के लिए उन्होने सतत प्रयास किया। वे एक महान समाज सुधारक थे।[१२०]

---

[११८] पूर्वोद्धत, पृ० १६४

[११९] वही, पृ० १६७

[१२०] एम० ए० मैकालिफ, द सिक्ख रिलिजन, भाग–६, आक्सफोर्ड यूनीवर्सीटी प्रेस, १९०९, पृ० १६३

इस प्रकार कबीर ने हिन्दू समाज में व्याप्त जाति प्रथा, सती प्रथा[121] नारी वर्ग का नैतिक अवमूल्यन पर्दाप्रथा[122] और बाल विवाह जैसी कुरीतियाँ उनके लिए सहानुभूति का विषय बन गयी थी। वे अपने युग के कुशल दृष्टा थे। समाज की आन्तरिक एवं बाहय दशाओ के प्रति उनकी पैनी दृष्टि हमेशा सजग रही। कबीर अज्ञान असत्य और मिथ्याचार को समाप्त करने के लिए किसी सीमा तक निर्मम हो सकते थे।[123] सामाजिक शोषण, अनाचार एवं अन्याय के विरुद्ध संघर्ष में कबीर के विचार आज भी प्रांसगिक है। बनारस के मध्ययुगीन समाज में कबीर की प्रतिध्वनि तत्कालीन परिस्थितियों का मुंह तोड़ जवाब देती हुई दिखाई पडती है। वस्तुतः कबीर प्रखर आलोचक, स्पष्ट वक्ता, युग सृष्टा धर्म सुधारक ,कटु उपदेशक और महान संत थे।

बल्लभाचार्य

बल्लभाचार्य कबीर के समकालीन थे। उनका जन्म चम्पारण में १४७६ ई० में हुआ था। इनके पिता लक्ष्मण भट्ट और माता यल्लमगरू थी। बल्लभाचार्य के माता पिता तैलंग ब्राह्मण थे और काशी मे निवास करतें थे। मुस्लिम शासकों के भय से वे बनारस छोडकर दक्षिण चले गए थे। बल्लभाचार्य की प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा बनारस में हुई थी।[124] बल्लभाचार्य वैष्णव सम्प्रदाय के कृष्ण भक्ति शाखा के महान सन्त थे। अनुश्रुति है कि जिस समय वे बनारस आए हुए थे उसी समय शहर मे भारी अव्यवस्था फैली हुई थी, वे भाग कर चम्पारन अर्थात मध्य प्रदेश के राजिम नामक स्थान मे चले गए वहीं १४७६ ई० में बस गए और वहीं उनकी शिक्षा दीक्षा हुई बल्लभाचार्य बड़े ही प्रतिभाशाली थे। कहा जाता है कि जब वे बालक ही थे तभी उन्होनें चारों वेदों, शास्त्रों और १८ पुराणों पर अधिकार प्राप्त कर लिया

---

[121] पूर्वोद्धत,

[122] वही,

[123] वही,

[124] जे० सी० शाह श्रीमद बल्लभाचार्य हिज फिलासफी एण्ड रेलीजन,एम०डी, पृ०– ४

था।[125] पिता की मृत्यु के बाद ११ वर्ष की अवस्था में बल्लभाचार्य ने बनारस की यात्रा की और वहीं बस गए। कबीर और नानक की भाति बल्लभाचार्य भी विवाह को अत्याधुनिक उन्नति में बाधक नहीं मानते थे उन्होने बनारस की महालक्ष्मी नामक कन्या से विवाह कर लिया । बनारस मे रहकर उन्होने बादरायण के ब्रह्म सूत्र और भगवदगीता पर भाष्य लिखा ।[126] वैष्णव स्वामी बल्लभाचार्य जी का प्रभाव बनारस में विद्यमान हैं। बनारस का गोपाल मन्दिर जो चौखम्बा मुहल्ले में स्थित है, बल्लभ सम्प्रदाय का केन्द्र माना जाता है। बल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित मत शुद्धाद्वैतवाद कहा जाता है। इसमे एक ओर रामानुज का विशिष्टताद्वैत और दूसरी ओर शंकर का अद्वैतवाद या भाष्य वाद अस्वीकृत किया।[127] इस मत में भक्ति ही सब कुछ है ,वह साध्य और साधन दोनों ही है। ईश्वर की कृपा के लिए इस मत में ''पुष्टि'' शब्द का प्रयोग किया गया। इसलिए बल्लभाचार्य के नए मत का नाम ''पुष्टिमार्ग'' पड़ा। इस पुष्टि मार्ग में कृष्ण ही सत चित आनंद है मुक्त होकर जीवन आनंद स्वरूप हो जाता है और कृष्ण से एकाकार होकर रहता है।[128] उन्होंने समस्त भारत में शुद्धाद्वैतवाद का प्रचार किया। बनारस के हनुमान घाट पर उनकी मृत्यु हुई। बल्लभाचार्य बहुत बड़े योगी, सिद्ध तथा प्रभावशाली आचार्य थे। इनके सम्प्रदाय में प्रसिद्ध संत गोस्वामी मुरलीधर जी भी हुए।[129]

तत्कालीन समाजीक आवश्यकताओं का अध्ययन करके हिन्दू धर्म के आधार पर उन्होंने समाज में सुधार करने का निश्चय किया था। बल्लभाचार्य पहले समाज सुधारक है जिन्होने सम्पूर्ण भारत वर्ष की विस्तृत यात्रा की तथा समाज के सभी वर्गो से मिलकर अनुभव प्राप्त किया था। तत्कालीन समाज में

---

[125] आशीवादी लाल श्रीवास्तव मध्यकालीन भारतीय सस्कृति आगरा प्रथम सस्करण १९६७ पृ०– ५७

[126] वही,

[127] जे० सी० शाह, पृ०– २६४–२६५

[128] वही,

[129] डा० चंद्रभान रावत, पृ०– ६६

इस्लाम के प्रभाव के कारण सनातन धर्म का अस्तित्व खतरे में था।[१३०] ऐसी स्थिति में प्राचीन वैदिक कालीन समाजीक व्यवस्था का पुनरूज्जीवन असम्भव प्रतीत होता था। बल्लभाचार्य रूढ़ि वादी थे परन्तु धर्म की आधारशिला पर तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुसार समाज में परिवर्तन भी करना चाहते थे। प्रो० जे० सी० शाह के अनुसार बल्लभाचार्य आध्यात्मिक समाज सुधारक थे।[१३१] उनका समाजीक दर्शन सार्वभौम धर्म पर आधारित था।

रैदास:

संत रैदास कबीर के समकालीन थे। जनश्रुतियों से ज्ञात होता है कि रैदास बनारस मे रहा करते थे। मडुवाडीह के पूरब और वर्तमान लहरतारा तालाब के पास रघु चमार के घर इनका जन्म हुआ था। इनकी माता का नाम घुरबिनिया था। रैदास का जन्म चमार कुल में हुआ था, किन्तु उन्होने अपनी सच्ची भगवद भक्ति द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि निम्न कुल में उत्पन्न व्यक्ति भी उच्च वर्ण वालों के लिए वंदनीय बन सकता है।[१३२] रैदास की रचनाओं से ज्ञात होता है कि उनके कुटुम्ब के लोग बनारस के आस पास ढोरों या मृत पशुओं के ढोने का व्यवसाय किया करते थे।

नगर बनारस उतिम गॉऊ, पावन नीरै आवै कोऊ
मुआ न कोऊ नरकै जाई, संकर राम सुनावै आई
श्रुति संमूप का है अधिकार।तहां रैदास लिया अवतारा।

जनश्रुतियों से ज्ञात होता है कि इनकी प्रवृत्ति बाल्यावस्था से ही संतों जैसी थी। रैदास १२ वर्ष की अवस्था से ही मिटटी की बनी राम जानकी की मूर्ति की पूजा करने लगे थे।[१३३] इनकी वैराग्यवृत्ति एवं दानशीलता से

---

[१३०] पूर्वोद्धत,
[१३१] वही,
[१३२] डा० चंद्रदेव राय, कबीर और रैदास ,आजमगढ़ १९७८, पृ०— ७२
[१३३] जी०डब्ल्यू ब्रिग्स,रिलिजन लाइफ ऑफ इण्डिया ,द चमार्स आर० एल० आई० सीरीज, पृ०— २०८

खिन्न होकर इनके माता पिता ने इन्हें अपने घर से अलग कर दिया था। इन्हे अलग कर दिए जाने पर रैदास अपने घर के पिछवाडे फूस की कुटी में निवास करते थे और जूता बनाकर अपनी पत्नी के साथ जीवन यापन करते रहे।[१३४]

संत रैदास अत्यधिक उदार और संतोषी प्रवृत्ति के थे। प्रायः अपने बनाए जूतों को साधु संतों को बिना कुछ द्रव्य लिए ही दे दिया करते थे। कहा जाता है कि एक बार कोई साधु इन्हें पारस दे रहा था जिसे इन्होने प्रथमतः अस्वीकार कर दिया था।परन्तु साधु के अत्यधिक आग्रह पर उसे अपने छप्पर में कही रख देने को कह दिया। तेरह महीने बाद जब साधु पुनः आकर उस पत्थर के बारे में पूछने लगा तो रैदास ने कहा कि उसे जहा रखा था वहीं पड़ा होगा। सचमुच पारसमणि वहीं का वहीं पडा रह गया था, और रैदास ने उसे कभी स्पर्श तक नही किया था।[१३५] इन बातों से प्रतीत होता है कि रैदास बड़े ही निरभिलाषी और त्यागी प्रकृति के संत थे। वे धन को दु:ख का कारण मानते थे, वे कहते है–

धन जोवन हरि न मिलै ,दुःख दासन अधिक अपार।

एकै एक वियोगियां त को जानै सब संसार।।[१३६] कहा जाता है कि संत रैदास ने भी स्वामी रामानन्द से दीक्षा प्राप्त की । इस प्रकार अनंतदास ने रैदास के परिचय में उनके गुरू का उल्लेख इस प्रकार किया है–

माथे हाथ चमार कै दीनौ।

माला तिलक दई अभय कराए।।

पाछे भजन सवै डराए।

सबही के मन भया उलास।।

---

[१३४] डा० चंद्रदेव राय, पृ०– ७७

[१३५] रैदास जी की बानी और उनका जीवन चरित्र (सम्पा) वेलविडियर प्रेस, प्रयाग,छठा संस्करण,१६४८, पृ०– १४–२७

[१३६] वही,

अस्थन पान करे रैदास ।

नाभादास कृत भक्तमाल के टीका कार प्रिया दास ने भी रैदास को स्वामी रामानन्द के द्वादस प्रमुख शिष्यों मे माना है।[137]

संत रैदास की नियमित शिक्षा के विषय मे कही कोई स्पष्ट उल्लेख नही मिलता। आल इण्डिया आदि धर्म मिशन के लोगों का कथन है कि इन्हें बनारस के छित्तूपुर मुहल्ले में स्थित तत्कालीन पं० शारदानंद की पाठशाला मे नियमित शिक्षा प्राप्त हुई थी। पर उनके इस कथन का कोई प्रमाणिक आधार नहीं मिलता। संभवतः इन्हें जो कुछ ज्ञान उपलब्ध हुआ होगा वह सत्संग और पर्यटन आदि साधनो द्वारा ही । उन्होने स्वय भी अपने मन के हरि की ही पाठशाला में पढ़ने का संकेत किया है--चल मन हरिचटशाल पढाऊं ।[138]

संत रैदास के अनुयायी देश के विभिन्न भागों में पाए जाते है। इनके नाम पर बनी हुई समाधियां गद्दियां एवं अन्य स्मारक चिन्ह भी देश के विभिन्न प्रान्तों मे पाए जाते है जिससे ज्ञात होता है कि बनारस के सत रैदास ने समय समय पर विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया था।[139]

झाली रानी के निमंत्रण पर रैदास के चित्तौड जाने की बात कही जाती है। रैदास रामायण के अनुसार सिकन्दर लोदी के निमत्रण पर दिल्ली गए थे। वहाँ से वे दक्षिण में गोदावरी तक गए।[140] रामचद्र कुरील ने रैदास की प्रयाग यात्रा का भी वर्णन किया है।[141] यह भी कहा जाता है कि मीरा के निमंत्रण पर रैदास मथुरा, वृन्दावन, भरतपुर, जयपुर और पुष्कर होते हुए चित्तौड़ भी गये थे। सेनकृत, कबीर – रैदास सम्बंध मे आए एक उल्लेख के

---

[137] परशुराम चतुर्वेदी, संत साहित्य के प्रेरणा स्रोत,दिल्ली, पृ०– २३७

[138] स्वामी रामानन्द शास्त्री और वीरेन्द्र पाण्डेय, संत रविदास और उनका काव्य, ज्वालापुर, १९५५ पृ०– ७०

[139] चंद्रदेव, पृ०– ८१

[140] श्री राजाराम मिश्र, रविदास रामायण, पृ०– १२५

[141] श्री राम चरन, भगवान रविदास की आत्मकथा ,मानपुर,संवत ११९९७ पृ०– ३५

अनुसार यह माना जाता है कि राजस्थान की महारानी झाली तीर्थाटन के लिए बनारस आयी थी, और रैदास से प्रभावित होकर उनसे शिक्षाग्रहण की।अनतदास कृत "रैदास की परचई" और प्रियदास कृत "भक्तमाल की टीका" में भी इस घटना का उल्लेख मिलता है।[१४२] पण्डित परशुराम चतुर्वेदी का अनुमान है कि झाली की रानी संभवतः राणाकुंभा (१४६०–१५२५ ई०) की धर्मपत्नी रहीं होगी। मीराबाई के अनेक पद ऐसे हैं जिनमे उन्होने अपने गुरू का नाम रैदास कहा है, और उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है।[१४३]

(अ) रैदास संत मिले मोहि सतगुरू दीन्ही सूरत सहदानी।।[१४४]

(ब) गुरू मिलया रैदास जी दीन्ही ग्यान की गुटकी।।[१४५]

रैदास के जीवन से अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाओ का भी सम्बध जोडा जाता है। इन घटनाओं का कोई प्रमाणिक आधार न होने पर भी इतना तो स्पष्ट है कि रैदास अपने जीवन के चरम उत्कर्ष काल में अपने अनुयायी भक्तों द्वारा सम्मानित हुए थे, और कुलीन वर्ग के उच्चपदासीन भी इनके संतगुण के समक्ष उपस्थित होने में गौरव का अनुभव करने लगे थे।[१४६]

रैदास किसी दार्शनिक मतवाद के प्रतिपादक नही थे। ये विशुद्ध संत थे। वे उन्ही सिद्धांतों के पोषक थे जो सत्य की कसौटी पर खरे उतरने वाले थे। इनका मुख्य लक्ष्य परमात्मतत्व की एकता स्थापित कर व्यक्ति में व्याप्त सामाजिक असाम्यता का मूलोच्छेदन करना एव सार्वभौमिक मानव धर्म की प्रतिषठापना करना था।[१४७] तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक विसंगतियों से ऐसा प्रतीत होता है कि रैदास का युग व्यक्तिवाद का था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी अपनी डफली अपना अपना राग वाली उक्ति चरितार्थ हो रही

---

[१४२] डा० त्रिलोकी नाथ दीक्षित, परचई साहित्य, पृ०– ४१

[१४३] डा० पदमावती शबनम,मीरा एक अध्ययन ,पृ०– ३०

[१४४] मीराबाई की पदावली,(सम्पादक) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग,पद–१५१,पृ०– ५५

[१४५] वही, पद–४,पृ०– १०

[१४६] पूर्वोद्धत,

[१४७] वही,

थी। सामाजिक जीवन में स्वच्छदता और मिथ्याचार का प्रभुत्व बढ गया था। रैदास ने तत्कालीन समाज में प्रचलित इन बाह्य आडम्बरो की निरर्थकता की उद्घोषणा की और कहा कि अहकार शून्य सात्विक भक्ति से ही परमतत्व को प्राप्त करना सभव है।

कहा भयो जे चरन अस गायै, कहा भयो तप कीन्है।
कहा भयो जे चरन पखारे जो लौ परम तत्व नही चीन्हे।।
कहा भयो जै मूंड मुडायो, वह तीरथ व्रत कीन्हे।
स्वामीदास भक्त अरू सेवक जो परमतत्व नहि चीन्हे।।
कहै रैदास तेरी भक्ति दूरि है भाग बडे सो पावै।
तज अभिमान मेटि आया पर पिपिलक हू चुनियावै।।"[४८]

मध्य युग का यह काल खण्ड सामाजिक स्तर भेद से युक्त था। हिन्दू समाज वर्णाश्रम व्यवस्था के साथ साथ बहुजातीय व्यवस्था के अनुसार बॅटा हुआ था। निम्न जाति के लोगों को समाज मे हेय दृष्टि से देखा जाता था ।वर्णभेद और जाति भेद के कारण समाज की आंतरिक शक्ति क्षीण हो रही थी। इस प्रकार रैदास ने तत्कालीन समाज को एकता का संदेश दिया। हिन्दुओं और मुस्लिमों की जातीय सकीर्णता पर प्रहार करते समय उन्होंने उनकी एकता प़र बल दिया। रैदास धर्म को व्यक्तिगत साधना की वस्तु मानते थे साथ ही साथ धर्म को व्यक्तिगत होते हुए भी सार्वभौम मानवधर्म के रूप में प्रस्थापित करना चाहते थे जिसमें सामाजिक समानता के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया था।[४९]

तत्कालीन समाज में अन्धविश्वास का प्रभाव निरन्तर बढ़ता गया रैदास ने इसे दूर करने का प्रयास किया, और मूल धर्म की ओर आकृष्ट करने का संदेश दिया, रैदास कहते हैं कि –

---

[४८] रामानन्द शास्त्री एवं वीरेन्द्र पाण्डेय, पद, १६ पृ० १०३
[४९] –चन्द्रदेव राय, पृ० १४२

तिलक दियो पै तपनि न जाई, माला पहरि घणेदि लाई।

कहै रैदास मरम जू पाऊँ, देव निरन्जन सत का ध्याऊँ।।[१५०]

उनका कहना था कि तिलक लगा लेने से, माला पहन लेने से, निरन्जन देव का मर्म नहीं जाना जा सकता, उसका रहस्य तो सच्चा ध्यान लगाने से ही जाना जा सकता है। रैदास सिर मुँडा लेने और माला पहन कर दिखावा करने मात्र को भक्ति नही मानते –

ऐसी भगति न होई रे भाई।

राम नाम बिनु जौ कुछ करिये सो सब भरम कहाई।।

भक्ति न मुंड मुँडाई भक्ति न माल दिखाई।[१५१]

सन्त रैदास ने भी कबीर की तरह वेद शास्त्र की मर्यादा, जप, तप, तीर्थ, पूजा, पाठ आदि प्राय. सभी बाह्य क्रियाओं एवं मिथ्याचारों को अस्वीकार कर दिया था। किन्तु कबीर इन बाह्य आडम्बरों के तीखे व्यग पर निर्मम प्रहार करते नजर आते हैं, जबकि रैदास की वाणी में न तीखापन है न अक्रामकता, वे बडे ही सरल किन्तु प्रभावी प्रकृति के थे और सरलता से ही कुरीतियों का खण्डन करते थे उनके सदेशों में आत्मसमर्पण और दीनता की भावना झलकती है। उनका कथन है कि "सभी में हरि हैं और सब हरि मे हैं।" मानव मात्र में समानता इनका प्रमुख सिद्धान्त था। इनकी ओजपूर्ण वाणी तथा भक्ति भावना से लोग अत्यधिक प्रभावित थे ब्राम्हण भी श्रद्धा से उनके आगे सिर झुकाते थे इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि रैदास प्रेम और वैराग्य की मूर्ति थे। इनका सर्वाधिक प्रभाव निम्न वर्ण की जातियों के उत्थान में परिलक्षित होता है।

तुलसीदास

मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन की प्रतिमूर्ति गोस्वामी तुलसीदास की

150 रामानन्द शास्त्री और वीरेन्द पाण्डेय, पद, ५८

१५१ वही, पद २४

रचनाओं का प्रभाव हिन्दू जनमानस पर अन्य सतों की अपेक्षा सर्वाधिक रहा है। रामचरित मानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास की जन्म स्थली तो राजापुर थी परन्तु उनकी कर्मस्थली तथा साधना स्थली काशी ही थी। गोस्वामी तुलसीदास बनारस के भक्ति कालीन सतों मे प्रमुख थे। गोस्वामी तुलसीदास वैषणव सम्प्रदाय के थे। सगुण भक्ति के कवियों के रामाश्रयी शाखा में उनका स्थान प्रमुख है। उन्होनें अपनी काव्य साधना से भारतीय समाज और जन जीवन को आलोकित किया।[१५२] गोस्वामी तुलसीदास के जन्म के विषय में पर्याप्त मतभेद है। गोस्वामी तुलसीदास के शिष्य बाबा माधवदास कृत मूलगोसाई चरित के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास की जन्म तिथि सं० १५५४ की श्रावण शुक्ल सप्तमी है। परन्तु यह ज्योतिष गणना के अनुसार उनकी आयु २६ वर्ष बैठती है।इस आधार पर उनकी अमर कृति रामचरित मानस का आरम्भ ७० वर्ष की आयु मे होना चाहिए जो कि ऐसी प्रौढ रचना के लिए उपयुक्त नहीं जान पडता।जनश्रुति कके अनुसार पण्डित रामगुलाम द्विवेदी तुलसी का जन्म सं० १५८६ माना है। सर जार्ज गियर्सन ने भी इसका समर्थन किया है।[१५३]

गोस्वामी तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था। तुलसी अभुक्त मूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण माता पिता द्वारा त्याग दिए गए थे। पांच वर्ष तक मुनिया नाम की दासी ने इनका लालन पालन किया।किन्तु उसकी मृत्यु के बाद इन्हें विभिन्न कठिनाईयों का सामना करना पडा। उसी समय गुरू बाबा नरहरिदास की इन पर कृपा दृष्टि हुई । इन्हीं से गोस्वामी तुलसीदास ने शूकर क्षेत्र या सोरों में रामकथा सुनी थी। जब वे १२ वर्ष के थे। तब बनारस आ गए और पंचगंगा घाट पर शेष सनातन से शिक्षा ग्रहण की।यहां १६–१७ वर्ष तक रहकर वेदपुराण उपनिषद,

---

[१५२] उदयभानु सिंह,तुलसी,दिल्ली,१६६७, पृ०– २३

[१५३] वही

रामायण तथा भागवत आदि का गम्भीर अध्ययन किया।[१५४] उसके पश्चात तुलसीदस अपने गॉव चले गये। इनका विवाह दीनबंधु पाठक की पुत्री रत्नावली के साथ हुआ। इन्हें अपनी पत्नी से अत्यधिक प्रेम था। एक दिन पत्नी द्वारा व्यगात्मक शब्दों का प्रयोग करते हुए तिरस्कृत किये जाने पर इन्हे गहरा आघात लगा और उनका वासनामय प्रेम वैराग्य और राम की भक्ति मे परिवर्तित हो गया। तुलसीदास ने सन् १५८६ ई० मे जब गृह त्याग किया तो उनकी अवस्था ३५ वर्ष की थी। प्रारम्भ मे तुलसीदास बनारस आने पर अपने मित्र गंगाराम ज्योतिषी के यहॉ प्रहलाद घाट पर ठहरते थे। गोस्वामी जी के जीवन की घटनाओं का अधिक सम्बन्ध प्रहलाद घाट, हनुमान घाट और राजघाट से रहा है। उसके बाद से वे गोपाल मन्दिर से भी सम्बद्ध हो गये थे। गोपाल मन्दिर के गोसाइयों से अनबन होने पर वह अपने मित्र के अस्सीघाट पर नवनिर्मित मन्दिर में निवास करने लगे।[१५५]

गोस्वामी तुलसीदास की प्रमुख रचना रामचरित मानस है। सगुण भक्ति से युक्त रामचरित मानस का लेखन अयोध्या मे(सम्वत् १६३७) १५७४ ई० में आरम्भ हुआ और अन्तिम चार काण्डों की समाप्ति काशी मे हुई। अनुश्रुति के अनुसार भदैनी के पास गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण लिखना समाप्त किया और गोपाल मन्दिर मे विनय पत्रिका गीतावली और कवितावली की भी रचना की। रामचरित मानस वैदिक ज्ञान और साहित्यिक गुणों से युक्त कृति होने के साथ ही उच्च श्रेणी के भक्ति का अटूट भण्डार है।[१५६] तुलसीदास ने रामचरित मानस में पुराण सम्मत हिन्दू धर्म का विरोध नहीं किया। उन्होंने राम की कथा को भक्ति से परिपूर्ण करके जन सामान्य के समक्ष रख दिया। उन्होंने सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों का विरोध किया। समाज में

---

[१५४] पंडित रामनारायण शुक्ल शास्त्री संत तुलसीदास और वाराणसी, लेख सनमार्ग पत्रिका, वाराणसी, १९८६, पृ० १५५

[155] पूर्वोद्धत,

[156] डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी : लोकवादी तुलसी, दिल्ली, १९७४, पृ० ८१

राजा–प्रजा, माता–पिता, भाई, गुरु, पत्नी आदि का क्या स्थान होना चाहिए, इसका उद्‌बोधन उन्होने रामचरित मानस के माध्यम से किया। उन्होने कपटी, कुटिल राजाओं और कराल दण्ड नीति की निन्दा की है और व्यवस्था दी है कि जिस राजा के राज्य में प्रजा दुःखी हो उसे नरक मे भेजो।[१५७]

जासुराज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

तुलसीदास के समकालीन समाज मेधर्म, समाज, राजनीति आदि क्षेत्रों मे सर्वत्र पारस्परिक विभेद का बोलबाला था। धार्मिक शान्ति के साथ–साथ सामाजिक शान्ति भी भंग हो रही थी। ऊँच नीच के जातीय भेदभाव से हिन्दु समाज मे वैमनस्यता और वर्ग भेद बढता जा रहा था।[१५८] तुलसीदास ने सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए समन्वय की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया और स्वयं धर्म, राजनीति, समाज आदि के क्षेत्र में यथा सम्भव समन्वय स्थापित करते हुए पारस्परिक विरोध को दूर करने का प्रयास किया।[१५९] तुलसीदास के जीवन काल मे हिन्दू धर्मावलम्बी शैव और वैष्णव मतावलम्बियो मे पर्याप्त कटुता आ चुकी थी। उन्होंने अपनी रामायण में अनेक स्थानों पर राम को शिव का और शिव को राम का उपासक बता कर उनकी अभिन्नता द्वारा पारस्परिक वैमनस्य का परिहार किया।

शिव द्रोही मम दास कहवा, सो नर मोहि सपनेहुं नहि पॉवा।

उन्होने भक्तिपूर्ण जीवन मे सगुण, निगुर्ण, ज्ञान, भक्ति, कर्म का उचित स्थान निर्धारित करते हुए उनके महत्व का प्रतिपादन किया। उन्होने द्वैत, अद्वैत, विशिष्टता द्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद और अपने समय के सभी दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए सब में समन्वय प्रस्तुत किया।[१६०]

सगुनहि अगुनहि नहि कछुभेदा, सेवक–सेव्य–भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।

---

[157] पूर्वोद्धत,

[158] उदयभानु सिह, पृ० १६६

[159] वही, पृ० १६६

[160] वही,

के द्वारा सेवक सेव्य भाव की भक्ति का परिचय दिया। "राम सो बडा है कौन मोसो कौन छोटो" के द्वारा भी उन्होने राम के समक्ष अपनी दीनता का प्रदर्शन कर विनय के स्वर मे अपनी भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट किया है। राम के साथ प्रीति करके नीति के पथ पर चलने को ही उन्होने राम भक्ति की सज्ञा दी है।

प्रीति रामसो नीति पथ चलिय रागरिस नीति। तुलसी सन्तन के मते रहै भगत की रीति।।[१६१]

भक्ति के क्षेत्र में गोस्वामी तुलसीदास ने आडम्बरो को स्वीकार नही किया है । मन और वचन की सरलता को ही उन्होने भक्ति का मूल माना है।

सूधे मन सूधे वचन सूधी सब कर तूनि।
तुलसी सूधी सकल विधि रघुवर प्रेम प्रसूति।।[१६२]

तुलसी की विचारधारा पर सनातन धर्म का गहरा प्रभाव था। वे वर्ण व्यवस्था के पोषक और संरक्षक थे जैसा कि उन्होने कहा है कि–

वरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहि सदा पावहि सुख नहि भय सरेक न रोग।।

किन्तु भक्ति मार्गी होने के नाते वे जात पात को उतना अधिक महत्व नहीं देते थे।[१६३] सामाजिक प्रारूप मे गोस्वामी तुलसीदास ने वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया है। राम द्वारा निषाद और गुह का आलिगन यह स्पष्ट करता है कि गोस्वामी तुलसीदास मानव मात्र में प्रेम के समर्थक थे।इस प्रेम का ही परिणाम था कि निषाद और गुह ब्राह्मण का अपमान सहन नही कर सकते थे।[१६४]

---

[१६१] श्यामल कान्त वर्मा, कवि समीक्षा, पृ०– ३६–३७
[१६२] वही।
[१६३] डा० चंद्रभान रावत तृलसी साहित्य बदलते प्रतिमान मथुरा,१९७१,पृ०–
[१६४] वही। पृ०– ११७

गोस्वामी तुलसीदास का मानना था कि वह नया कुछ नही कर रहे है।जो सनातन है उसी का पवित्र सन्देश उनके पास हैं। शुद्ध सनातन के नाम पर उन्होनें नए विचार दिए। राम को शबरी के जूठे बेर खिलाए और विशिष्ठ का अछूत निषाद के गले मिलाया।[१६५] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामी तुलसीदास का सम्पूर्ण जीवन आदर्श सुधारक के रूप मे प्रस्तुत होता है।

गोस्वामी तुलसीदास वर्ण व्यवस्था को सामाजिक मूल्य के रूप मे स्वीकार करते है।लेकिन वे किसी शूद्र की निदा इस आधार पर नही करते कि वह शूद्र है बल्कि इसलिए करते है कि उसमे अपना कर्म छोड रखा है।वर्णाश्रम व्यवस्था का समर्थन करने वाले गोस्वामी तुलसीदास कई ऐंसी पंक्तिया भी लिख गए है जिनमे वर्ण व्यवस्था के प्रति कबीर जैसा आकोश पूर्ण विरोध है वे अब्दुल रहीम खानखाना और नामदास के अभिन्न मित्र ही नहीं थे बल्कि दर्जनों अवर्ण व्यक्ति उनके अतरग थे।

धूत कहौ अवधूत कहौ राजपूत कहौ जोलाहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी से बेटा न ब्याहव काहू की जाति विगार न सोऊ।।[१६६]
मागि के खैबो मसीत सोइबे लैबे को एक न दैबे को दोऊ।

गोस्वामी तुलसीदास के विषय में जो आलेख मिलते है उनसे ज्ञात होता है कि वे कई अवर्ण और मुस्लिम व्यक्तियों के मित्र थे। उनकी मित्रत्र मण्डली में पासी चमार,अहीर ,जुलाहा ,केवट जैसी जातियो के लोग थे। बनारस मे जो रामलीला गोस्वामी तुलसीदास ने शुरू करा दी उसमे राम कथा के शेबरी ,केवट जैसे अवर्ण पात्रों का अभिनय उसी जाति के लोग करते थे। अवर्ण जाति के लोगों से गोस्वामी तुलसीदास की इतनी अभिन्नता के कारण बनारस के कटटर ब्राह्मणो के कड़े विरोध का भी सामना उन्हे करना पड़ा

---

[१६५] अज्ञेय ,हिन्दू साहित्य,एक आधुनिक परिदृश्य, पृ०– १७४
[१६६] वही।

था।[१६७]

गोस्वामी तुलसीदास ने समाज के सम्मुख रामराज्य की कल्पना द्वारा एक नवीन आशा का सचार किया। सर्वसाधारण को राम भक्ति का आदर्श प्रस्तुत कर उचित मार्ग दिखाया।

गोस्वामी तुलसीदास के समसामयिक समाज मे सिर्फ बुरे लोग ही नही थे अच्छे लोग भी थे । उन्होने समाज की विषमताओ को स्पष्ट किया और उन विषमता से मुक्त समाज मे रामराज्य का स्वप्न भी चित्रित किया।[१६८] गोस्वामी तुलसीदास की मृत्यु ६१ वर्ष की आयु मे (सम्वत १६८०) बनारस मे हुई।

सवत सोलह सौ अस्सी असी गग के तीर।

श्रवण श्यामा तीज सनि तुलसी तजे शरीर।।

यद्यपि उन्होने किसी सम्प्रदाय की स्थापना नही की थी लेकिन फिर भी उन्हे महान वैष्णव सत और आचार्य माना जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यकालीन सल्तनत एव मुगल शासन व्यवस्था में हिन्दू धर्म भक्ति आन्दोलन और बनारस से सम्बद्ध संतो के विषय में संकलित तथ्यो का विश्लेषण किया गया है जिससे यह ज्ञात होता है कि मध्ययुगीन बनारस नुररूत्थान का नाडी केन्द्र हो गया था। प्रतिष्ठानपुर नवद्वीप दक्षिण और जगन्नाथपुरी आदि से अनेक पण्डित बनारस में निवास करने के लिए आते थे। दक्षिण के आचार्य भी इसी क्षेत्र में आए। तत्कालीन बनारस की धार्मिक संरचना पर रामानंद और उनकी अनुयायियों का गम्भीर प्रभाव परिलक्षित होता है।रामानंद की पहली प्रेरणा कबीर के निर्गुण भक्ति के रूप में और दूसरी प्रेरणा किरण तुलसी में सगुण भक्ति के रूप में प्रस्फुटित हुई।[१६९] डा० ताराचंद जैसे इतिहास कारों ने

---

[१६७] विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ०– ८५

[१६८] वही, पृ०– १,६२

[१६९] विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ०– १०६

रामानदी शिष्य परम्परा के कबीर को रेडिकल कहा है। इसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि कबीर मे कान्ति का स्वर नग्न और प्रखर था। गोस्वामी तुलसीदास कका सन्देश परम्परा सनातन और सुधारवादी माध्यम से लोकोन्मुख हुआ था।[१७०] कबीर और गोस्वामी तुलसीदास की तुलना करते हुए अज्ञेय ने लिखा है कि इस (तुलसी) शान्त और गम्भीर सुधारक ने एक निर्मल आदर्श रखा । अपने आदर पात्र वीर राम का चरित्र ऐसे ढग से पेश किया कि जो सन्देश वह देश को देना चाहते थे वह बिना कहे लोगो पर प्रकट हो गया। उनकी सुधार वृत्ति कबीर से भिन्न थी। कबीर की सीख मानो आधी की तरह पुराने सस्कारो को तहस नहस करती हुई चलती थी। समाज के जीवन मे एक बवडर उठा देती थी वह खरी और दो टूक बात कहते थे और परवाह नही करते थे। कि किसे चोट पहुचती है। इस प्रकार कबीर कान्तिकारी थे और गोस्वामी तुलसीदास सुधारक। तुलसी ने शुद्ध सनातन धर्म के नाम पर ही नए विचारों का प्रतिपादन किया। भक्ति मे प्रेम के महत्व को दिखाते हुए राम को शेबरी के जूठे बेर खिलाए और उच्च वर्ग के वशिष्ठ को अछूत निषाद के गले मिलाया।[१७१]

वस्तुत मध्यकालीन बनारस सतों ने तत्कालीन आवश्यकतानुसार वर्ण विभाजन की कटटरता विवादपूर्ण धार्मिक आडम्बरों एव झूठे जातीय अभिमान कके विरूद्ध आवाज उठाई और स्नेह सहयोग तथा सहनशीलता का शान्तिपूर्ण संदेश दिया। तत्कालीन समाज में प्रचलित कुरीतियों तथा बाहयआडम्बरों को दूर कर स्वस्थ सामाजिक आदर्शों की प्रेरणा ही मानव को जाति पाति ऊंच नीच धनी निर्धन धर्म सम्प्रदाय आदि के भेदभावों से रहित होकर एक ऐसे समाज के निर्माण के लिए अभिप्रेरित किया जिसमें सभी विषमताएं लुप्त हो।[१७२] संतों द्वारा प्रस्तुत सामाजिक आदर्श आज भी उतने ही

---

[१७०] वही,

[१७१] अज्ञेय ,हिन्दी साहित्य ,एक आधुनिक परिदृश्य, पृ०– १७४

[१७२] डा० देव मणि ,पृ०– ३

सबल है उसमे आज भी उसी प्रकार की मार्ग निर्देशन की शक्ति है जिस प्रकार आज से सैकडो वर्ष पूर्व थी।[१७३] अत संतो के साथ साथ मध्यकालीन आन्दोलन की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

इस प्रकार मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तको ने जनसामान्य की भाषा मे सनातन धर्म के गूढ रहस्यो कको स्पष्ट किया। सगुण निर्गुण द्वैत और अद्वैतवादी विचारो और दार्शनिक आयामो को स्पष्ट किया इन सतों ने मानव मात्र कके प्रति प्रेम पर बल दिया तथा ईश्वर के प्रति समर्पण को ही धर्म के मूल मत्र के रूप में प्रस्थापित किया। तत्कालीन समाज मे व्याप्त विसगतियो और कुरीतियो को दूर करने मे इनका प्रमुख योगदान रहा। मुस्लिम धर्म के कटटरवादी परम्परा से हिन्दुओ को सुरक्षित रखने और उन्हे अपनी परम्परागत मान्यताओ को बनाए रखने केप्रति अभिप्रेरित करने मे बनारस के सतो का उल्लेखनीय योगदान रहा है।

सूफी वाद – इस्लाम के रहस्यवादियो को सूफी कहा गया है। अबू नसर अल सराज ने"किताब अल लुमा" में लिखा है कि सूफी शब्द से निकला है जिसका अर्थ है ऊन।[१७४] कुछ लोगो ने मदीना मे मस्जिद कके समीप रहने वाले "अहल मुफ्फाह " के सुफ्फाह से सूफी शब्द की उत्पत्ति मानी है। इसी प्रकार बानू सूफा नामक भ्रमणकारी जाति से तथा ग्रीक शब्द सोफिया से सूफी और थियोसोफिकया से तसब्बुफ की उत्पत्ति माना जाता है। [१७५] सूफी वह धार्मिक साधक थे जो ऊनी चोंगा पहनते थे तथा परम प्रियतम के रूप में परमात्मा की उपासना करना ही उसके जीवन का लक्ष्य था। सभी मुस्लिम रहस्यवादी साधकों के लिए सूफी शब्द का प्रयोग किया जाता है। सूफी वाद उच्च स्तर के स्वतंत्र विचार का स्वरूप है। [१७६] सूफी वाद

---

[१७३] पूर्वोद्धत, पृ०– ५
[१७४] रामपूजन तिवारी सूफी मत साधना और साहित्य , पृ०– १६६
[१७५] डा० झारखण्डे चौबे एव डा० कन्हैया लाल श्रीवास्तव, पृ०– ४०६,४१०
[१७६] निजामी, पृ०– ५२

प्रगाढ भक्ति का धर्म है कविता संगीत तथा नृत्य इसकी आराधना के साधन है तथा परमात्मा मे विलीन हो जाना इसका आदर्श है।[१७७] इस्लाम धर्म और समाज को परिवर्तित परिस्थितियो के अनुकूल बनाने के लिए सूफी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ।[१७८] सूफी मत का विककास मानव संस्कृति मुस्लिम समाज नैतिकता तथा आध्यात्मिक सिद्धांतो की रक्षा के लिए हुआ।[१७९]

सूफी मत का आधार प्रारम्भिक काल में व्यक्तिगत था। सूफी साधक एकान्त जीवन मे प्रायश्चित करते थे तथा इनमे प्रेम साधना की भावना का अभाव था। आठवी शताब्दी के इन प्रमुख साधनो मे इमाम हसन बसरी ,इब्राहिम बिन आलम अबू हाशिम तथा रबिया नसरी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है। द्वितीय चरण में रहस्य वादी प्रवृत्तियों के उदय तथा उत्तरोत्तर विकास सैद्धान्तिक विकास और दार्शनिक चिन्तन की प्रधानता रही।[१८०] तृतीय चरण मे मुस्लिम समाज में अराजकता अ व्यवस्था तथा नैतिक पतन का सामना करने तथा उसमे नवजीवन का सचार करने के लिए सूफी सतों ने खानकाट के रूप मे सगठित होने का निश्चय किया।[१८१] सूफी साधको के अनुसार परमात्मा एक है वह काल और स्थान की परिधि मे नही बाधा जा सकता है। [१८२] आत्मा को सूफी साधकों ने ईश्वर का अंश स्वीकार किया है। सूफी साधको के अनुसार मनुष्य परमात्मा के सभी गुणो को अभिव्यक्त करता है ।[१८३] सूफी साधक पूर्ण मानव को अपना गुरू मानता है। अल हक्क के साथ एकत्व प्राप्त करना सूफी साधना का चरम लक्ष्य है।

इसी प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि मुहम्मद गोरी के समय बनारस का प्रथम इक्तादार जमालुदीनन था। जिसने जमालुदीन पुरा मुहल्ले मे अपने

---

[१७७] ताराचद पृ०— ८३
[१७८] निजामी पृ०— ५०
[१७९] निजामी पृ०— ५७
[१८०] राम पूजन तिवारी सूफी मत साधना और साहित्य पृ०— ५३
[१८१] निजामी पृ०— ५७
[१८२] कल्चर हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृ०— ५६५

मृत्यु प्रयत तक ररहा । उसकी मृत्यु केबाद उसको उसी मुहल्ले में दफनाया गया जिसको शाही मजार के नाम से जाना जाता है ।[९४] बनारस के अलईपुर मुहल्ले में फखरूदीन अलवी की दरगाह का उल्लेख मिलता है।[९५] तथा बनारस के गुलजार मुहल्ले मे मखदूम शाह नामक कब्रगाह स्थित है।[९६]

इसके फलस्वरूप बनारस स्थित जगंमवाडी मठ का भी मुगल शासको द्वारा समय समय पर भूमि अनुदान मे दी गयी एवं उसकी पुष्टि की गयी। इनमे प्रमुख मुगल शासक थे—अकबर जहांगीर तथा शाहजहा।[९७] भारत मे सबसे लोकप्रिय चिश्ती सिलसिला के प्रवर्तक ख्वाजा इसहाक शामी चिश्ती माने जाते है।[९८] कुछ विद्वान ख्वाजा अबू अब्दाल को इसका सस्थापक मानते है।[९९] परन्तु भारत वर्ष में इस सिलसिला की स्थापना का श्रेय ख्ख्वाजा मुइनुदीन चिश्ती को ही है ।[१००] चिश्ती सिलसिला के प्रमुख सूफी सत हमीदुदीन नागौरी शेख कुतुबुदीन बख्तियार ककाकी फरीदुदीन मसूद शकरगज निजामुदीन अऔलिया आदि थे।[१०१]

चिश्ती सिलसिला के बाद सुहरावर्दी प्रमुख सम्प्रदाय था। सुहरावर्दी सम्प्रदाय के प्रर्वतक शेख बहाउदीन जकारिया थे।[१०२] इस सम्प्रदाय के अन्य प्रमुख सूफी सत सेख सदउदीन आरिफ सेख एकनुदीन अबुल फतह तथा सेख जलादुइीन सुर्ख थे।

एक अन्य सूफी साधको सम्प्रदाय कादिरी सिलसिला का प्रवर्तन

---

[९३] ताराचद पृ०— ७६
[९४] बनारस गजेटियर, पृ०— ४४
[९५] जनरल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बगाल
[९६] बी भटटाचार्य, बनारस रीडिस्कवर्ड मुशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स नई दिल्ली १६६६ पृ०— २१४
[९७] जंगमवाडी मठ बनारस से सकलित फर्मान
[९८] तिवारी पृ०— ४४३
[९९] यूसुफ हुसैन पृ०— ३६
[१००] आशीवादी लाल श्रीवास्तव
[१०१] के० ए० निजामी पृ०— १८५—१८८, तिवारी पृ०— ४६०
[१०२] के० एन० निजामी पृ०—२२१

अब्दुल कादिर अल जीलानी ने किया था। भारत मे कादिरी सिलजिलस के प्रवर्तक मुहिम्मद गौस थे। इस सिलसिला के प्रमुख सूफी सत अब्दुल कादिर द्वितीय सेख दाउद किरमानी तथा सेख अबुल मा अली थे।

सूफी मत की शाख्खओ मे नक्शबदी सिलसिला का पमुख स्थान है रशहात ऐन अलहयात के अनुसार इसके प्रर्वतक ख्वाजा उबैदुल्ला थे। भारत मे इस सिलसिला का प्रचार शेख अहमद फारूकी सरहिन्दी ने किया था।

तिवारी, पृ० ४६२, डा० झारखण्डे चौवे, एवमृ डा० कन्हैया लाल श्रीवास्तव, पृ० ४४६

तिवारी, पृ० ४६५

नक्शबन्दी सिलसिला के प्रमुख, सुफी सन्त मुहम्मद मासूम, ख्वाजा नक्शबन्द, हुजतुल्ला, क्यूम जुबैर, ख्वाजा मीरदर्द आदि थे। इस सिलसिला के एक अन्य प्रमुख सूफी सन्त शाहवली उल्ला थे, जिनका जन्म १७०२ ई० मे हुआ और मृत्यु १७६२ ई० मे हुई थी। इनके ऊपर सनातन पन्थी इस्लाम का प्रभाव पडा था और इनका विश्वास कुरान, शरीयत तथा हदीस पर आधारित था।[१९५]

समाज मे सूफी सन्तो का प्रभाव तब तक बना रहा। सूफी सन्तो ने अपने शिष्यो को समाज सेवा सदव्यवहार प्रथा तथा क्षमा आदि गुणो पर बल दिया। उन लोगो ने जनता के चरित्र तथा उनके दृष्टिकोण को सुधारने का प्रयास किया।[१९६] सूफी सन्तो ने खडी बोली अथवा हिन्दुस्तानी तथा क्षेत्रीय भाषाओ के विकास मे भी योगदान दिया।[१९७]

समाज में स्त्रियों की दशा

समाज मे स्त्रियो की दशा से ही सामाजिक अवस्था प्रतिबिम्बित होती है।[१९८] परन्तु मुस्लिम काल मे स्त्रियो की स्थिति प्राचीन भारतीय स्त्रियो के समान उच्च नही थी।[१९९]

मध्यकालीन समाज मे स्त्री को स्वावलम्बी बनने का विशेष अवसर प्रदान नही किया गया था। जब वे अविवाहित होती थी तो वे पिता के नियन्त्रण मे रहती थी, विवाह हो जाने पर पति के और पति की मृत्यु के बाद पुत्र के नियत्रण मे रहना पडता था।[२००]

---

[१९५] युसुफ हुरौन, पृ० ६२, ६३
[१९६] ए० रशीद, पृ० १८०
[१९७] ए० रशीद, सोसायटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया, कलकत्ता, १९६९, पृ १९६, २००
[१९८] प्रो० रेखा मिश्रा, वीमेन इन मुगल इण्डिया, प० १
[१९९] वही, पृ० १२६ तथा हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० १३६–१४०
[२००] मनु पृ० ३२७ – ३२८ तथा हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० १३६–१४०

प्रशासक वर्ग एव कुलीन वर्ग की स्त्रियो का एक विशिष्ट स्थान था। वे राज्य के कार्यों मे भी पर्याप्त रूचि लेती रही।[२०१] राजपरिवारो मे स्त्रियां को पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। शासक परिवार की स्त्रियो को उच्च स्तरीय व्यक्तिगत शिक्षा दी जाती थी। जबकि साधारण वर्ग की स्त्रियो को मात्र सामाजिक परम्पराओं एव मान्यताओ का ही पालन करना पडता था और वे घरेलू कार्यों मे ही व्यस्त रहती थी। साधारण वर्ग की कुछ महिलाए ही सगीतकार, अध्यापिका, नृत्यागना के रूप मे कार्य करती रही। मध्य–वर्गीय परिवार मे स्त्री माँ के रूप मे श्रद्धेय पत्नी, सहयोगी के रूप मे देखी जाती थी, तथा पारिवारिक मामलो मे पर्याप्त हस्तक्षेप रखती थी। यद्यपि बाह्य मामलो मे उनका हस्तक्षेप नही होता था। तत्कालीन भारतीय समाज मे स्त्रियो की स्थिति का अवलोकन निम्नलिखित माप दण्डो के आधार पर किया जा सकता है –

पर्दा प्रथा

पर्दा को फारसी शब्द के रूप मे जाना जाता है तथा शाब्दिक अर्थ होता है "आवरण" अपने मूल अर्थ के साथ ही इस शब्द ने एक और अर्थ अपना लिया। स्त्रियो की एकान्तता जिसकी सार्थकता परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा पर निर्भर करती है। यह प्रथा प्राचीन भारत मे मान्य नही थी।[२०२] भारतवर्ष मे इस्लाम के साथ ही पर्दा प्रथा का प्रचलन आरम्भ हुआ।[२०३] सम्भवत. विदेशी आक्रमणकारियो से सुरक्षित रहने तथा कुछ सीमा तक शासक वर्ग के अनुसरण के रूप मे यह प्रथा सामान्य हो चली थी।[२०४] बनारस के समाज मे पर्दा प्रथा प्रचलित थी। बनारस के मुस्लिम समाज मे उच्च वर्ग की महिलायें तो पर्दा करती थी, परन्तु निम्न वर्ग और निर्धन वर्ग की महिलाओ के साथ पेशेवर पतियो की स्त्रिया अपने पति यो के साथ जीवकोपार्जन के

---

[२०१] अन्सारी, आई० सी० एस० खण्ड–३४, पृ० –३, प्रो० रेखा मिश्रा, पृ० ५३

[२०२] ए० एल० अल्टेकर, पोजीशन आफ वूमेन इन हिन्दू सोसाइटी १६३८, वाराणसी, पृ० २०६, ए० रशीद, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया, पृ० १४१, १४२, तथा हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० १८१

[२०३] बदायूँनी, खण्ड–२, पृ० ४०४–४०६, अर्ब्दुरशीद, पृ० २०६, हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० १४७

कार्य मे सम्बद्ध रहती थी, अत इन वर्गों की महिलाओं के लिए पर्दा प्रथा का सख्ती से पालन करना सम्भव नही था।[२०५] उच्च वर्ग की महिलाए हाथी अथवा पालकी पर बैठकर यात्रा करती थी और उनके साथ अनुचर रहते थे। यात्रा करते समय उच्च वर्ग की महिलाएं पर्दा का सख्ती से पालन करती थी।[२०६]

उच्च वर्ग की हिन्दू महिलाए भी पर्दा प्रथा का पालन करती थी, जो उनके सम्मानीय होने का परिचायक था।[२०७] मध्यम वर्ग की हिन्दू और मुस्लिन महिलाए सामान्यतया बाहर जाने पर चेहरे पर आवरण अथवा बुर्के या पर्दे का प्रयोग करती थी।[२०८] हिन्दू स्त्रियो मे पर्दे के प्रचलन को घूघट कहा जाता था। सामान्यत हिन्दू परिवार की स्त्रियॉ अपने श्वसुर आदि के सामने घूघट निकालती थी।[२०९] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन समाज मे भी पर्दा प्रथा के प्रचलन के कारण हिन्दू और मुस्लिम स्त्रियो के विकास मे पर्याप्त अवरोध उत्पन्न हुए। इस प्रथा ने ही उनमे "हिनता" की भावना एव मानसिक अपरिपक्वता की भावना को प्रबल किया और उत्तरोत्तर उनकी स्थिति मे गिरावट आती गयी।

वेश्यावृत्ति

इस काल मे बनारस के समाज मे वेश्याओ की पर्याप्त सख्या थी। विशिष्ट अवसरों, सार्वजनिक समारोहों, विवाह व त्योहारो के अवसर पर वेश्याओ तथा

---

[२०४] विद्यापति ठाकुर, सन्दर्भ–६२, बर्नियर, पृ० ४१३, रेखा मिश्रा, पृ० १३४, १३५ हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० १४७

[२०५] कीर्तिलता, पृ० ३२, कबीर, पृ० २७५–७६, दो० १५, डी० लेट, पृ० ८१, टाड वाल्युम–२, पृ० ७१०ए ७११, ओविगटन, पृ० ३२०

[२०६] मनूची, खण्ड–२, पृ० ३३१, ३३३, ३३४, बर्नियर पृ० १४३, अन्सारी खण्ड–३४, पृ० ४, दी हरम आफ ग्रेट मुगल्स १९६०

[२०७] एस० एम० जाफर, समकलचरल ऐस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, दिल्ली, १९७२, पृ० १९८, १९९९

[२०८] अन्सारी, खण्ड–३४, पृ १११, ११२, ११३, ओविग टन, पृ० २१३

[२०९] जायसी कहरानामा व मसलानामा पृ० ८८, ९२, मेन्डेल–सलों पृ० ५१

नर्तकियो का बुलाया जाता था।[२९०] उन्हे सामान्यत नर्तकी वेश्या, पातुर, गणिका आदि नामो से सम्बोधित किया जाता था।[२९१] ये अवैध रूप से अपनी आजीविका मे सलग्न रहती थी, और लोग अपनी काम पिपासा की तृप्ति के लिए इन वेश्याओ पर निर्भर थे। ये औरते बाजार मे एकत्रित होकर अन्य युवतियों को अपने पेशे मे शामिल करने के लिए प्रलोभन देती थी। वे अपनी अस्वाभाविक लज्जा का प्रदर्शन करके केवल धन प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहती थी। वे पति के न होते हुए भी माग मे सिदूर धारण करती थी। बनारस की इन वनिताओ के इस वर्णन से परिलक्षित होता है कि उस युग मे वेश्यावृत्ति एक विधि सम्मत सामाजिक बुराई थी।

सतीप्रथा

मध्यकालीन हिन्दू समाज मे विधवा स्त्री के लिए सती होकर अपना जीवन समाप्त कर देना अथवा जीवित रहकर कठोर सामाजिक नियमो का पालन जीवन पर्यन्त करते रहना यही दो प्रारब्ध थे।[२९२] हिन्दू समाज मे पति के साथ स्वय को प्रज्जवलित अग्नि मे भस्मकर लेने की प्रथा अत्यन्त प्रचलित हो चुकी थी।[२९३] धार्मिक ग्रथो मे यह उल्लेख है कि पति की मृत्यु के साथ सती हो जाने वाली स्त्रियो को स्वर्ग की प्राप्ति होती है उन्हे पुन जन्म नही लेना पडेगा।[२९४] निस्सदेह हिन्दू स्त्री के जीवन मे सबसे दुखद घटना उसके पति की मृत्यु होती थी। हिन्दूओ मे निम्न वर्गो के लोगो के अतिरिक्त अन्य सभी वर्गो मे विधवा विवाह की अनुमति न थी। विधवा को या तो अपने मृत पति की चिता पर या पति की मृत्यु के तुरन्त बाद एक अलग चिता पर जलकर मर जाना पड़ता था। यदि ये दोनो बाते न होती थी अर्थात वह पति की मृत्यु के बाद जीवित रह जाती थी तो उसे एक सादा और पवित्र जीवन बिताना

---

[२९०] ज्योतिरेश्वर का वर्ण रत्नाकर १६४०, चतुर्थ कल्लोल पृ०—२६, २७, बर्नियर पृ० २७४, तथा मनूची खण्ड—२ पृ० ३३७,

[२९१] वही तथा हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० १७६—१८०,

[२९२] देखिये डा० हेरम्ब चतुर्वेदी अप्रकाशित शोध ग्रथ पूर्वोक्त

[२९३] पदमावत पृ० ८७४ पद—६५०

[२९४] जायसी कृत पदमावत् पृ० ८७२पद— ६४८,

पडता था। जिसमें किसी तरह का आर्कषण नही रहता था।[२९५] हिन्दू विधवाओं की दयनीय स्थिति और सती प्रथा की चर्चा करते हुए अलबेरूनीज लिखता है कि "यदि किसी स्त्री का पति मर जाता है तो वह किसी अन्य पुरूष से विवाह नही कर सकती उसके सामने केवल दो ही रास्ते बच जाते है," या तो वह आजीवन विधवा रहे अथवा जल मरे और दूसरी बात अर्थात उसे जल मरन को उत्तम समझा जाता है क्योकि विधवा के रूप मे जीवित रहने पर उसके साथ सम्पूर्ण जीवन, दुर्व्यवहार किया जाता है। जहॉ तक राजाओ की पत्नियो का सबध है उन्हे , चाहे वे चाहे या न चाहे जलकर मर ही जाना पडता है और इस प्रकार यह प्रबध किया जाता है कि वे कुछ ऐसा न कर बैठे जो उनके स्वर्गीय महान पति की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल हो इस सबध मे उन्ही विधवाओ को छोडा जाता है जिनकी उम्र बहुत अधिक हो गई होती है और उन्हे जिनको की बच्चे होते है, क्योकि पुत्र अपनी मॉ का उत्तरदायी सरक्षक समझा जाता है।[२९६] सतीप्रथा से सबधित धार्मिक कृत्य या तो पति के शव के साथ या उनके बिना ही किये जाते थे। पहली स्थिति मे यानी पति के शव के साथ इस प्रकार के धार्मिक कृत्य को 'सहमरण' या 'सहगमन' अर्थात पति के साथ मर जाना या उसके साथ इस ससार से चला जाना कहा जाता था और दूसरे प्रकार के धार्मिक कृत्यों को अनुमरण या अनुगमन अर्थात पति के बाद मरना या उसके पीछे पीछे इस लोक से चला जाना था फिर भी सहमरण की प्रथा लोकप्रिय थी।[२९७] जो महिलाए सती नही होना चाहती थी उनसे आशा की जाती थी कि अपने माता–पिता के साथ भक्ति और सादगी का जीवन व्यतीत करेगी। सामान्यत ऐसा विश्वास किया जाता था कि जो

---

[२९५] किशोरी प्रसाद शाहू कृत मध्यकालीन उत्तर भारतीय सामाजिक जीवन के कुछ पक्ष पृ०–२२६,

[२९६] अलबेरूनी इण्डिया–२, सचाउ पृ०– १५५

[२९७] कुतुबन की मृगावती पृ० ३३६ पद ४२३, कबीर साखी सार साखी – ३४–३६ पृ० १७२–१७३, तथा जायसी के पदमावत (पदमावती नागमती सती खण्ड) दोहा– ६४८/१, ६४६/२, ६५०/३, ६५१/४ पृ० ८७२–८७५,

महिलाए अपने मृत पति के साथ जल मरती थी वे पूर्वपापो से उद्धार पाकर सीधे स्वर्ग चली जाती थी।[२१८]

साथ ही ऐसा विश्वास भी किया जाता था कि यदि पति अपनी मृत्यु के बाद नर्क गया है और उसकी पत्नी सती हो गई तो वह पति को नर्क से वापस ला सकती है। इसके अतिरिक्त जो स्त्री अपने मृत पति के साथ जल मरती थी उसके बारे मे विश्वास किया जाता था कि फिर से जन्म न लेगी और यदि जन्म लेगी भी तो स्त्री के रूप मे नही बल्कि पुरूष के रूप मे। जो स्त्री अपने पति की मृत्यु के उपरान्त सती न होती थी तो विधवा का जीवन बिताती थी। अत सभी विधवाये जो पति की मृत्यु समय गर्भवती न रहती थी, अपने पति के शव के साथ पवित्र अग्नि की शरण मे जाना ही श्रेयस्कर समझती थी। ब्राह्मणी विधवा से अपने पति की चिता मे ही जल जाने की आशा की जाती थी। जबकि अन्य जातियो की विधवाओं के लिए अलग चिता सजाई जाती थी। जो विधवा अपने मृत पति के साथ जल जाना चाहती थी उसे इस काम से रोका नही जाता था।[२१९]

जौहर

सती प्रथा की तरह भयानक परन्तु इससे अधिक आहत एक और प्रथा प्रचलित थी, जिसे जौहर कहा जाता था।[२२०] यह प्रथा प्रमुखत वीर राजपूत घरानो तक ही सीमित थी। यद्यपि अन्य घरानो मे भी इसके लागू किये जाने के सकेत मिलते है।[२२१] जब कोई राजपूत सरदार और उसके योद्धा युद्ध में लडते–लड़ते निराश हो जाते थे तो वे पराजय को सम्मुख आया देखकर, सामान्यत अपनी महिलाओ को मौत के घाट उतार देते थे या उन्हें अग्नि के हवाले कर देते थे।[२२२] ऐसा इसलिए करते थे कि उनके

---

[२१८] मध्यकालीन उत्तर भारतीय सामाजिक जीवन के कुछ पक्ष, किशोरी प्रसाद साहू पृ० २८,

[२१९] वही,

[२२०] डा० चतुर्वेदी, पृ० १०६, तथा विद्यापति कृत कुश परीक्षा, पृ० १३ तथा तारीखे मुबारक शाही, पृ० ४६२,

[२२१] वही,

[२२२] के० एम० अशरफ, पृ०– १५६,

सतीत्व की रक्षा हो सके। जब मुहम्मद तुगलक कम्पिला के राय को इसलिए घेरा, क्योकि उसने बहाउद्दीन गुस्तास्य नामक एक राज्य विद्रोही का शरण दी थी, तब कम्पिला के राय ने "जौहर" रचाया था। इब्नबतूता के अनुसार प्रत्येक स्त्री स्नान करके चन्दन मलकर आती थी तथा राय के सम्मुख भूमि का चुम्बन करती थी और अपने आप को अग्नि को समर्पित कर देती थी।[२२३] इस प्रकार की भयावह घटनाये एव प्रथाए तत्कालीन समाज मे स्त्रियो की बिगडती स्थिति को प्रतिबिम्बित करती है।

शिक्षा विधि—

मुस्लिम भारत मे राज्य के समस्त मकतब, मदरसो, मस्जिदो एव खनकाहो मठो एव व्यक्तिगत भवनो मे शिक्षा प्रदान की जाती थी। मुख्यतया शिक्षा की तीन विधियाँ सर्वमान्य थी –

१ उच्चतर शिक्षा,

२ माध्यमिक शिक्षा,

३ प्रारम्भिक या प्राइमरी शिक्षा[२२४]

उच्चतर शिक्षा उच्च शिक्षित प्राध्यापको द्वारा दी जाती थी। विद्वान एव प्रसिद्ध सूफी सन्त छात्रो को शिक्षा प्रदान करते थे। प्राचीन नालन्दा विश्वविद्यालय के समान कोई विश्वविद्यालय शिक्षा केन्द्र नही था।[२२५] परन्तु इस काल मे विश्वविद्यालय न होने के बावजूद भी बहुत से ऐसे शिक्षा केन्द्र प्रमुख थे, जहाँ इस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

बनारस शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र था। जहाँ हिन्दुओ को विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा प्रदान की जाती थी।[२२६]

मुस्लिम शिक्षा का प्रमुख केन्द्र जौनपुर था। जहाँ विद्वान छात्रों को शिक्षा प्रदान करते थे। समस्त प्रतिष्ठित सन्तो का मकबरा शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र माना जाता था।

---

[२२३] इब्नबतूता, पृ०—६६,

[२२४] इम्पी० गजेटियर, जिल्द—४, पृ०—१६,

[२२५] नीरा दरबारी, पृ०—६२,

इन विद्वानो के असीम परिश्रम के कारण एवम् विद्वान होने के कारण लोग उनका आध्यात्मिक उपदेशक के रूप मे सम्मान करते थे।

माध्यमिक शिक्षा मस्जिदो एव मठो मे दी जाती थी।[२२७]

प्राइमरी स्कूलो एव व्यक्तिगत भवनो मे प्रारम्भिक शिक्षा की उत्तन व्यवस्था थी:। जब छात्र अच्छी तरह से लिखने एव पढने मे पारगत हो जाता था तो उसे मकतब या मदरसो मे कला एव विज्ञान के अध्ययन की अनुमति दी जाती थी।[२२८]

शिक्षा के क्षेत्र मे धार्मिक सस्थाये महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती थी। ११वी शताब्दी के लगभग मुस्लिम क्षेत्रो मे उच्च विद्या की सस्थाए धार्मिक झुकाव के साथ शिक्षा केन्द्रों के रूप मे विकसित हो चुकी थी, जिन्हे मदरसा कहा जाता था।[२२९] विशेष रूप से धार्मिक शिक्षा के मदरसे हुआ करते थे। इनमे धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ सहायतार्थ भाषा सम्बन्धी शिक्षा भी दी जाती थी। ये मदरसे कट्टर धर्मवादिता के पोषक थे तथा इन्हे सरकारी आर्थिक सहायता भी प्राप्त थी।[२३०]

हिन्दुओ के लिए किसी स्कूल की स्थापना शासको द्वारा नही की गयी। बहुत से स्थानीय राजाओ और उच्च वर्गीय जमीदारो ने "पाठशाला" की स्थापना की, जो कि मन्दिरो से सम्बद्ध कर दी गयी। कम आयु की लडकियॉ कुछ ही सख्या मे पाठशाला जाती थी। इन पाठशालाओ की स्थापना उच्च वर्गीय व्यक्तियो के विशाल भवनो मे की जाती थी।[२३१] इन पाठशालाओ मे सामान्यत पॉच वर्ष तक के बच्चो को भर्ती किया जाता था और उन्हे प्रारम्भिक शिक्षा के तौर पर सस्कृत, गणित, व्याकरण आदि हिन्दू पण्डितो द्वारा पढ़ाया जाता था।[२३२]

---

[२२६] चोपड़ा, पृ०– १३५,
[२२७] जाफर, पृ०–१६,
[२२८] जाफर, पृ० १०६, तथा डा० शेफाली चटर्जी, पृ० १८६,
[२२९] जाफर, पृ०– २०,
[२३०] डा० शेफाली चटर्जी, पृ०– १६०,
[२३१] चटर्जी, पृ०– २३८,
[२३२] नीरा दरबारी, पृ०– ८६,

मध्य युगीन विचार धारा मे धार्मिक प्रभाव बढ जाने के कारण राजनीति दर्शन शास्त्र और शिक्षा को उसके अर्न्तगत कर दिया गया था। मदरसो के अलावा मकतब मुस्लिम राज्य मे उच्च श्रेणी की शिक्षा के केन्द्र थे। जिनमे प्राथमिक तथा माध्यमिक से निम्न श्रेणी की शिक्षा दी जाती थी। धर्म समस्त शिक्षा का मूल आधार था; प्रत्येक मदरसा तथा मकतब अपनी मस्जिद के साथ सम्बन्धित रहता था

प्रत्येक मस्जिद मे छात्रो को धर्म के साथ–साथ विज्ञान के सम्बन्ध मे निर्देश देने के लिए अलग–अलग कक्षाए होती थी, जिनमे धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ धर्म निरपेक्ष शिक्षा प्रणाली को भी प्रोत्साहन दिया जाता था।

इन धार्मिक तथा शिक्षा सम्बन्धी सस्थाओ की सुव्यवस्था के लिए राज्य द्वारा अलग से विभाग खोले गये थे। सुल्तान एव अमीर वर्ग अपने व्यय पर राज्यो के विभिन्न भागो मे मकतब तथा मदरसो एव पुस्कालय खोलते थे।[२३४] सत्रहवी एव अठारहवी शताब्दी मे उच्च वर्गीय शासको, सामन्तो एव दरबारियो ने भी अपने व्यक्तिगत पुस्तकालयो की स्थापना की।[२३५]

इस काल मे शिक्षा का माध्यम तथा दरबार की भाषा फारसी थी।[२३६] मुसलमानो के लिए "अरबी" भाषा थी, क्योकि अरबी 'कुरान' की भाषा थी। प्रत्येक मुस्लिम छात्र के लिए यह आवश्यक था कि वह सर्वप्रथम कुरान का अध्ययन करे। उसके पश्चात उसे अन्य कलाओ एवं विज्ञान को पढने की अनुमति थी।[२३७]

शिक्षको को समाज मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।[२३८] शिक्षको तथा छात्रो का सम्बन्ध पिता पुत्र की भांति था[२३९] शिक्षक छात्रो से किसी प्रकार का नियमित शुल्क नही लेता

---

[२३३] जफर, पृ० २७,

[२३४] जाफर, पृ०– ६,

[२३५] बर्नियर, पृ०–३२५, थेवेनाट, खण्ड–३, अध्याय–१ पृ०–६०, पी० एन० चोपडा, पृ०– १५२, नीरा दरबारी, पृ०– ६५,

[२३६] जाफर, पृ० २०,

[२३७] प्रो० बनारसी प्रसाद सक्सेना, मुगल सम्राट शाहजहाँ, पृ०– २५८,

[२३८] कबीर, ग्रन्थावली सं० माता प्रसार गुप्ता साखी, १, पद– १,५ पृ०– १,

[२३९] जाफर, पृ० ५

था। इस काल मे शिक्षण की घरेलु पद्धति प्रचलित थी कभी–कभी एक विद्वान व्यक्ति के स्थान को निर्देशित का केन्द्र बना दिया जाता था जो यदा–कदा छात्रों के छात्रावास का भी समुचित प्रबन्ध किया करता था।[२४०]

आमतौर पर एकान्तवासी सूफी सन्त ही धार्मिक शिक्षा प्रदान करते थे। ये लोग या तो निशुल्क या नाम मात्र पारिश्रमिक लेकर शिक्षा प्रदान करते थे।[२४१] राज्य द्वारा परिचालित शिक्षण सस्थाओ के शिक्षको को वेतन दिया जाता था। उनके वेतन के लिए कुछ भू–सम्पादित राज्य की ओर से निर्धारित थी, परन्तु व्यक्तिगत स्कूलो के शिक्षक वैयक्तिक सेवा एव पुरस्कार के अतिरिक्त कुछ नही लेते थे। गाव के शिक्षको को उनका वेतन अनाज के रूप मे दिया जाता था।[२४२]

उच्चतर शिक्षा के केन्द्र के रूप मे जौनपुर विशेष रूप से उल्लेखनीय था। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए मध्यकाल से ही भारत के समस्त भागो से छात्र यहा आते थे।[२४३]

यह सिलसिला अठारहवी शताब्दी तक चलता रहा। यहा तक कि अफगानिस्तान तथा बुखारा के छात्र भी यहॉ के प्रसिद्ध विद्वानो का व्याख्यान सुनने आते थे। जौनपुरी शिक्षा की तुलना उन विश्वविद्यालयो की शिक्षा प्रणाली से की जा सकती है, जहा विभिन्न देशो मे विद्वान शिक्षा देते थे एव विदेशो में शिक्षा के नवीनतम विकास के प्रति अपने को जागरूक रखते थे।[२४४] इन विद्वानो मे अधिकतर नये थे जिन्होने अपनी शिक्षा अरब, फारस, ईराक एव ईरान से प्राप्त की थी तथा जौनपुर आकर स्थायी रूप से बस गये थे।[२४५]

---

[२४०] एन० एस० ला० प्रोमोशन आफ लर्निंग इन इण्डिया। पृ०– ११७,

[२४१] डा० शेफाली चटर्जी, पृ० १६०

[२४२] जाफर, पृ० ११

[२४३] डा० शेफाली चटर्जी, पृ० १६१

[२४४] अली मेहदी, जान, जामी उल उलूम मुल्ला महमूदस डिटर्मीनेशन एण्ड फीवील, पृ० ७, जहीरूद्दीन फारूकी कृत औरंगजेब, पृ० ३१२, एल० एन० ला, पृ० १०३

[२४५] अली मेहदी, जान, पृ० ७

छात्रो के कमिक विकास की जानकारी शैक्षिक पदाधिकारिया द्वारा मूल्याकित की जाती थी।[२४६]वर्तमान दीक्षान्त समारोह के सदृश उस समय भी प्रतिवर्ष एक समारोह का असयोजन किया जाता था। शिक्षा को उन्नत बनने के ध्येय से शिक्षको को पुरस्कृत भी किया जाता था। भारत वर्ष मे शिक्षा के क्षेत्र मे जौंनपुर को "इल–डो–राडो" के नाम से सम्बोधित किया जाता है।[२४७]इब्राहिम शाह शर्की शिक्षा के क्षेत्र मे सबसे उल्लेखनीय शासक के रूप मे माना जाता हैं। इसी के शासन काल में ही शिक्षा सम्बन्धी गौरव के कारण जौनपुर भारत का "शीराज" शीराज–ए–हिन्द होने का महत्वपूर्ण गौरव प्राप्त किया।[२४८]

जौनपुर के शैक्षिक गौरव से प्रभावित होकर "फरीद" जो बाद मे इतिहास मे शेरशाह के नाम से जाना जाता है ने अपनी शिक्षा जौनपुर के मदरसो मे ही प्राप्त की।[२४९]अपने पिता को लिखे गये एक पत्र में "फरीद" ने इसका उल्लेख किया है कि सासाराम की अपेक्षा जौनपुर शैक्षिक निर्देशन के क्षेत्र मे उत्तम स्थान है।[२५०]

मि० डंकन जो १७८७ ई० मे बनारस के रेजिडेन्ट नियुक्त किये गये थे, जो अपने लेख मे कहा है कि "शिक्षा के क्षेत्र मे यह शहर प्रतिष्ठा के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था। इस लिए इस शहर को "शीराज" तथा "भारत वर्ष का मध्ययुगीन पेरिस कहा जाने लगा था।[२५१]

स्त्री शिक्षा

शर्की शासन काल मे भी पूर्व मध्यकाल की ही भाति स्त्री शिक्षा को नकारा नही गया, किन्तु यह मात्र राजघरानों, कुलीन परिवारो एव सम्पन्न क्षेत्रो में सीमित

---

[२४६] पूर्वोद्धत, पृ० ७

[२४७] जाफर, पृ० ६३

[२४८] डा० शेफाली चटर्जी, पृ० ६१

[२४९] शेरशाह, अब्बास खां शेरवानी, पृ० २०

[२५०] वही, पृ० १६–२०, प्रोमोशन आफ लर्निंग इन इण्डिया, पृ० १०० युसुफ हुसैन, पृ० ७२

[२५१] जाफर, शर्की आर्कि० आफ जौनपुर, पृ० २१

थी।[२५२] इस काल मे जौनपुर स्त्री शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र था[२५३] जौनपुर मे इस काल मे बोद्धिक क्षेत्र मे स्त्रियो की शिक्षा सम्बन्धा प्रगति प्रशंसनीय है, लडकिया की शिक्षा के लिए पृथक स्कूलो का प्रबन्ध था।[२५४] जौनपुर को स्त्री शिक्षा के महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप मे भी जाना जाता था। शिक्षा के क्षेत्र मे महमूद शाह शर्की की विदुषी पत्नी बीबी राजी को एक अलग प्रतिष्ठा थी। विशेषकर स्त्री शिक्षा मे रूचि रखने वाली इस महिला ने जौनपुर मे स्त्रियो की शिक्षा के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये।

मध्य वर्ग की महिलाओ ने भी घरेलू कार्यों मे व्यस्त रहते हुए शिक्षा मे रूची ली।[२५५] उच्च वर्गीय स्त्रीयॉ जो शिक्षा मे रूची रखती थी। उनके लिए उत्तम व्यवस्था विद्यमान थी। अधिकतर स्त्रिया घरो मे ही व्यक्तिगत शिक्षिकाओं के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करती थी। मुस्लिम महिलाओ की शिक्षा मकतब मे होती थी। मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा मकतब मे होती थी, जो मस्जिदो से सम्बन्धित थी और हिन्दू स्त्रियो की प्राथमिक शिक्षा "पाठशाला" के माध्यम से होती थी।[२५६]

हिन्दू मुस्लिम सम्प्रदायो मे अल्पायु मे ही विवाह की परम्परा ने स्त्री शिक्षा को हतोत्साहित किया। सामान्यतया स्त्री शिक्षा को पिता या पति द्वारा प्रोत्साहित नही किया जाता था। अत यह कहा जा सकता है कि उच्च वर्गीय हिन्दू तथा मुस्लिम महिलाओ की शिक्षा के क्षेत्र मे प्रगति कुछ ठीक थी, परन्तु निम्न वर्गीय महिलाए अभी भी शोषण का शिकार थी।[२५७]

---

[२५२] पी० एन० चोपडा, सोसायटी एण्ड कल्चर ड्यरिंग दि मुगल एज, पृ० १८४

[२५३] नीरा दरबारी, पृ० ६१

[२५४] जाफर, पृ० ८

[२५५] नीरा, दरबारी, पृ० ७८, ७६, ८०

[२५६] चटर्जी, दि डिस्क्रिप्शन इज आफ हिन्दू स्कूल एजूकेशन, पृ० २३८

[२५७] की, इण्डियन, एजूकेशन, पृ० ७७

शिक्षा व्यवस्था

जौनपुर के शर्की शासन काल मे एक ओर जहा प्रशासनिक व्यवस्था उत्तम थी, वही शिक्षा के क्षेत्र मे भी जौनपुर ने पर्याप्त प्रगति की। साहित्य समाज का दर्पण होता है और शिक्षा के बिना साहित्य अधूरा रहता है।

मुस्लिम सस्कृति के विकास मे दिल्ली शासको के अतिरिक्त प्रान्तीय राज्यो ने भी शिक्षा के सामान्य प्रगति के क्षेत्र मे अभूतपूर्व योगदान दिया।[२५८]

तत्कालीन समाज मे शिक्षा ग्रहण करने का एक मात्र उद्देश्य धार्मिक एव नैतिक प्रशिक्षण प्राप्त करना था। सैनिक शिक्षा, शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अग था। घुडसवारी व धनुर्विद्या का प्रशिक्षण दिया जाता था।[२५९] सुलतान यदा–कदा विद्वान शिक्षको को राजकीय कार्यो मे सहयोग हेतु आमन्त्रित करते थे। वे राजनीतिक सस्थानो के सम्बन्ध मे अत्यन्त व्यवहारिक ज्ञान रखते थे। अत राजनीतिक ज्ञान भी शिक्षा का प्रमुख अग था। छात्रो को ललित कलाओ का भी प्रशिक्षण दिया जाता था, तथा छात्र सगीत, नृत्य, चित्रकला एव अन्य ललित कलाओ के प्रशिक्षण हेतु शिक्षक के निवास स्थान पर जाते थे।[२६०] यान्त्रिक प्रशिक्षक की भी व्यवस्था थी।[२६१]

धर्मशास्त्र एव तात्विक विषयो के अतिरिक्त इतिहास द्वन्द शास्त्र, लेखन कला और गणित पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। धार्मिक शिक्षा का भी प्राविधान था, जो छात्रो के लिए विशेष रूप से अनिवार्य थी।[२६२]

मुगलों की दरबारी भाषा फारसी थी। अरबी भाषा का प्रयोग धार्मिक कार्यो मे प्रयोग होता था। हिन्दुओ की प्राचीन भाषा सस्कृत थी, और यह अनेक प्रान्तीय

---

[२५८] सिन्हा, पृ० ४१०
[२५९] डा० शेफाली चटर्जी, पृ० १८८
[२६०] इम्पी० गजेटियर आफ इण्डिया, जिल्द–४, पृ० ४३६
[२६१] वही,
[२६२] बार्रोलोमियो, पृ० २६३, २६४

भाषाओ की जननी भी थी। इससे क्षेत्र मे हिन्दी भाषा का प्रचलन आरम्भ हो गया था।[२६]

फारसी और हिन्दी के मेल से उत्पन्न हिन्दुस्तानी का प्रयोग हिन्दु तथा मुस्लिम अपने दैनिक जीवन मे कर रहे थे।

मध्यकाल मे कागज उत्पादन के लिए सियालकोट प्रसिद्ध था।[२६४] इसी प्रकार शहजादपुर मे अच्छी किस्म के कागज का निर्माण होता था तथा देश के अन्य भागो मे यही से भेजा जाता था।[२६५] अठारहवी शताब्दी मे कागज का प्रयोग सामान्य हो चला था तथा उच्चवर्गीय समुदाय "नरकट की कलम" और दावात का प्रयोग लेखन कार्य हेतु करते थे। कश्मीर मे उत्पादित उच्चकोटि की स्याही का प्रयोग लेखन कार्य के लिए किया जा रहा था।[२६६] स्कूलो के बच्चो लेखन के लिए लकडी की तख्ती का प्रयोग करते थे।[२६७]

---

[२६३] सिन्हा, पृ० ४१०

[२६४] चोपडा, पृ० १५०

[२६५] पीटर मुन्डी, खण्ड–२, पृ ६८

[२६६] चोपडा, पृ १५८, १५६

[२६७] डेला वैले, उद्धुत, व्हीलर की हिस्ट्री आफ इण्डिया, खण्ड–४, पाठ–२, पृ ४८६, तथा नीरा दरबारी, पृ ८६

अध्याय–चार

भाग–१ आर्थिक इतिहास

(पूर्व स्थिति) [illegible] भारत की ग्रामीण व्यवस्था

भारत मे प्राचीन काल की ग्रामीण–व्यवस्था की मूल–भूत बातो का अध्ययन करने के लिए हमे धार्मिक अध्ययन का सहारा लेना पडेगा जिसके नियमो मे विकास हुए है और सुधार हुए है। परन्तु आमूल परिवर्तन कभी नही हुए।[1] हिन्दू धर्म के अनुसार ग्रामीण व्यवस्था बहुत कुछ वैसी ही थी जैसी बाद मे मुस्लिम युग के आदि काल मे हमे देखने को मिलती है।[2] मुस्लिम युग की ग्रामीण व्यवस्था से भी वह कितने ही अशों मे मिलती है।[3] पूर्व कालीन व्यवस्था मे एक छोर पर राजा है तथा दूसरे तरफ किसान है। राजा राजधानी मे तथा कृषक (प्रजा) गॉवो मे, बस उन्ही दोनो के आपसी सम्बन्धो से तत्कालीन ग्रामीण– व्यवस्था की एक पृष्ट भूमि तैयार होती है।[4] अभी कुछ ही दिनो पहले तक लोगो की ऐसी धारणा थी कि हिन्दू राजा ऐसे शासक होते थे जिनको देवता स्वरूप समझा जाता था, जिन पर पवित्र धर्म का बन्धन था, लोकमत का भी वे ध्यान रखते थे परन्तु उन पर किसी भी सगठन का अथवा किसी भी समुदाय का कोई नियन्त्रण नही था।[5] इधर कुछ वर्षो से कुछ भारतीय विद्वानो ने नई राय कायम की है जिसके अनुसार हिन्दू राजा उत्तरदायित्व पूर्ण शासक होते थे अर्थात उनके ऊपर किसी न किसी सभा या परिषद का नियन्त्रण

---

[1] मुस्लिम भारत की ग्रामीण– व्यवस्था– डब्लू० एच० मोरलैण्ड इतिहास प्रकाशन सस्थान, ४६२, मालवीय नगर, इलाहाबाद, मार्च–१८६३ (प्रथम संस्करण) पृ०–१६,

[2] वही,

[3] वही,

[4] वही,

[5] वही,

रहता था और उसके प्रति राजाओं को जवाबदेह भी होना पडता था[6] किन्तु यह सत्य है कि राजा चाहे निरकुश होता रहा हो अथवा नियन्त्रित परन्तु ग्रामीण व्यवस्था मे इसका कोई प्रभाव नही पाते है।[7] इस प्रकार ग्रामीण व्यवस्था की एक इकाई के रूप मे मोर लैण्ड ने 'किसान' शब्द चुना है जिसका वास्तविक तात्पर्य है दूसरा वर्ग। अर्थात एक है राजा और दूसरा वर्ग है –किसान'।[8] किसान के अनेक पर्यायवाची शब्दो को छोडकर केवल इसी शब्द को इसलिए चुना ताकि किसी भी भ्रम से पाठक बचे रहे।[9] किसान से हमारा तात्पर्य उस वर्ग से है, जिनका कार्य है अपने लाभ के लिए अपने परिवार वालो या मजदूरो की सहायता से कुछ खेत जोतना चाहे उसका स्वामित्व या स्वामित्व की शर्ते किसी भी प्रकार की क्यो न हो।[10]

अर्थात् यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि यह वर्ग उन मध्यस्थो से अलग तो है ही जो उत्पादन मे तो कोई सहायता नही देता परन्तु उसके कुछ अश पर दावा रखता है, साथ ही वह उन मजदूरो से भी अलग है जिन्हे वह मजदूरी देता है।[11]

हिन्दू धर्म राजा तथा कृषक के बीच द्विपक्षीय सम्बन्ध की व्यवस्था करता है, जिसमे अधिकारो के बजाय कर्तव्यो की विवेचना ही अधिक है।[12] किसान का कर्तव्य है कि वह–

१– भूमि से उत्पादन करे।

२– उत्पादन का कुछ निश्चित अश राजा को दे दे।[13]

---

[6] पूर्वोद्धत,
[7] वही,
[8] वही, पृ०–१७,
[9] वही,
[10] वही,
[11] वही,
[12] वही,
[13] वही,

इन कर्तव्यो के पालन करते रहने पर उसे यह आशा रखनी चाहिए कि राजा उसकी रक्षा करेगा और शेष उत्पादन का वह स्वय उपभोग करेगा, परन्तु उपभोग करने के लिए कोई नियम हो तो उसका भी वह पालन करेगा।[१४]

राजा का सबसे बडा कर्तव्य था कि वह प्रजा को सुरक्षा प्रदान कर और जब तक वह ऐसा करता रहे जब तक कि उसे राज्याश पाने का हक है, परन्तु उस अश को भी वह नियम के अनुसार ही खर्च करेगा।[१५] उपरोक्त वर्णन मे 'उत्पादन' शब्द पूरी पैदावार के लिए आया है जिसमे न किसी प्रकार की लागत काटी गयी हो और न राज्याश निकाला गया हो।[१६] कालान्तर मे ऐसे भी उदाहरण मिलने लगे जहॉ असाधारण खर्चो के लिए कृषक को छूट भी मिलने लगी थी, परन्तु ब्रिटिश शासन के पहले कभी और कही भी ऐसा सकेत नही मिलता जब और जहॉ लाभाश पर मालगुजारी निश्चित की गयी हो।[१७]

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त वर्णन का सम्बन्ध भूमि के स्वामित्व से नही है।[१८] धर्म केवल उत्पादन के कर्तव्य की ही व्यवस्था देता है भूमि पर स्वामित्व की नही।[१९] इसमे सन्देह नही कि व्यक्ति या परिवार को भूमि पर पैतृक अधिकार थे। वे उसकी अदला–बदली भी कर सकते थे क्योकि धर्म ग्रथो मे पैतृकता का वर्णन है, दानपत्रों द्वारा हस्तान्तरण का वर्णन है, बेचने का भी वर्णन है परन्तु यह प्रश्न अब भी अनिर्णीत है कि क्या यह अधिकार उन्हे विधान प्रदत्त था या केवल राजा की इच्छानुसार ही वे उसका उपभोग कर सकते थे।[२०]

---

[१४] पूर्वोद्धृत,
[१५] वही,
[१६] वही,
[१७] वही,
[१८] वही,
[१९] वही, पृ०–१८,
[२०] वही,

दूसरे शब्दो मे जिस प्रश्न का कोई भी निश्चित उत्तर हमे नही मिला, वह यह है कि क्या किसी भी भारतीय सस्था या व्यक्ति को इस प्रकार का वास्तविक स्वामित्व प्राप्त था जो राजा या राज भक्ति की उपेक्षा करके भी दृढ रह सकता था।

यदि भूमि पर स्वामित्व केवल राजा का था, राज्येच्छा तक ही सीमित था तो मध्यकाल मे भी ऐसी ही व्यवस्था थी।[२२] परन्तु यदि राज्येच्छा के अभाव मे भी स्वामित्व कायम रहने की व्यवस्था थी तो यह समझना भी आवश्यक होगा कि किन कारणो से अथवा कब और किसके द्वारा इस वास्तविक स्वामित्व को समाप्त किया गया और यदि मुस्लिम शाह इतना कर भी सके तो क्या उन्होने स्वामित्व की भावना को भी कुचल डालने मे सफलता प्राप्त कर ली।[२३]

किसान के स्वामित्व की स्थिति चाहे जैसी भी रही हो पर यह निश्चय है कि दो बातो पर ही विशेष ध्यान देने से उसकी स्थिति का पता लग जायेगा।[२४]

प्रथम प्रश्न यह है कि उत्पादन का कौन भाग राज्य लेता था और द्वितीय प्रश्न है कि यह निश्चय कैसे किया जाता था कि किस किसान से राज्य को कितना पाना है और वह राज्याश वसूल कैसे होता था।[२५] प्रथम प्रश्न पर धर्मग्रथो मे मतभेद है। परन्तु साधारण राज्याश उत्पादन का १/६ भाग होता था, कही १/१२ भाग भी होता था और आपत्ति काल मे वह १/४ भाग से लेकर १/३ भाग तक हो जाता था।[२६] द्वितीय प्रश्न पर प्राय: सभी धर्मग्रंथ मौन है।[२७] इससे पता चलता है कि शायद यह प्रश्न धर्म ग्रंथों के क्षेत्र से परे था और राजा की इच्छा पर आधारित था।[२८] उनसे

---

[२१] पूर्वोद्धत,
[२२] वही,
[२३] वही,
[२४] वही,
[२५] वही, पृ०–१६,
[२६] वही,
[२७] वही,
[२८] वही,

यही कहा जा सकता है कि पूर्ण उत्पादन मे से ही राज्याश बॉट कर या नाप के सिद्वान्त पर लिया जाता था, परन्तु यह नही कहा जा सकता कि क्या मध्यकाल की तरह हिन्दू युग मे भी राज कर्मचारियो द्वारा ही उसकी वसूली होती थी।[२९]

उपरोक्त वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि मौलिक हिन्दू व्यवस्था यह थी कि किसान अपने उत्पादन का एक अश राजा को देता था और वह अश राजा द्वारा ही कुछ सीमाओ के भीतर ही या कभी–कभी स्वतन्त्र रूप से निश्चित किया जाता था और वही यह भी निर्णय करता था कि उक्त अश की वसूली किन साधनो से और किस रूप मे की जायेगी।[३०] बहुत कुछ इसी प्रकार की व्यवस्था मध्यकाल मे तथा उसके आगे मिलती है। इस मूल– व्यवस्था मे विकास एवम् सुधार के उदाहरण भी आगे मिलते है।[३१]

मौलिक व्यवस्था में विकास–

पूर्ण उत्पादन मे निश्चित राज्याश की वसूली आदिम व्यवस्था थी जो सम्पूर्ण उत्तर–भारत में प्रचलित थी।[३२] कहने की आवश्यकता नही है कि उसमे सुविधाये भी थी और असुविधाये भी।[३३] यदि वसूली क्षेत्र छोटा हुआ तो यह ढग पूर्ण सुविधाजनक था। परन्तु क्षेत्र बढते जाने के साथ–ही साथ इसकी असुविधाये भी बढ़ती जाती थी।[३४] विभिन्न ऐतिहासिक कालों मे हमे इस बढती हुई असुविधा के अनुभव प्राय होते रहते थे।[३५]

---

[२९] पूर्वोद्धत,
[३०] वही,
[३१] वही, पृ०–२०,
[३२] वही,
[३३] वही,
[३४] वही,
[३५] वही,

फसलो के पकने का समय प्राय अनेक इक्ताओ मे समान ही था। फसलों मे अच्छाई और खराबी भी आती ही रहती थी ऐसी दशा मे राजा को बडी कठिनाई का सामना करना पडता था।[36] एक तो उसकी आय यका सही अनुमान नही हो पाता था। दूसरे फसल के समय निर्धारण एवम् वसूली के लिए अनेक कर्मचारी अस्थायी रूप से रखने पडते थे, अन्यथा उसके अश का कुछ भाग वसूल न होने का खतरा बना रहता था।[37] अत इसी असुविधा को दूर करने के अनेक प्रयत्नो का वर्णन ही आगे का विषय होगा।[38]

उन किसानों को समझने के लिये उनके दो वर्ग कर लेना अधिक सुविधाजनक होगा। प्रथम तो वह जिसमे राजा का कृषक के साथ सीधा सम्बन्ध था और दूसरा वह जिसमे वसूली के लिये राजा अनेक प्रकार के मध्यस्थो का सहारा लिया करता था।[39]

(अ) वैयक्तिक राज्यांश निर्णय–

इस शीर्षक के अन्तर्गत हमे दो प्रकार से विचार करना है। राज्याश निर्णय तथा मानदंड, जिनका पता हमे तेरहवीं शताब्दी के इण्डोपर्शियन साहित्य से चलता है।[40] एक और तीसरा विषय है ठेके का जो बाद के साहित्य मे मिलता है।[41]

राज्यांश– निर्णय में लगी हुई फसल का निरीक्षण सहायक होता था और राजा को देय भाग का निर्णय अनुमानित उत्पादन पर होता था और उसकी वसूली तभी हो जाती थी जब राजा को सुविधा होती थी।[42] आज भी जमीदारों द्वारा उसी ढंग से

---

[36] पूर्वोद्धत, पृ०–२०,

[37] वही,

[38] वही,

[39] वही,

[40] वही,–पृ०–२०,

[41] वही,

[42] वही,

वसूली की जाती है।[४३] परन्तु वास्तविक उत्पादन मे से राज्याश की वसूली के ढग मे राजा की दृष्टि का अत्यन्त सावधान होना आवश्यक था क्योकि सावधानी के अभाव मे राज्याश वसूल करने वाला कर्मचारी कृषक से मिलकर राजा या जमीदार को धोखा दे सकता था।[४४]

मालगुजारी का अनुमान तथा उसका बॅटवारा एक दूसरे से पूर्ण सम्बन्धित है।[४५] फलत ऐसा वर्णीत है कि उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ मे जब भी लगान की रकम उत्पादन पर निर्भर करती थी तब अनुमानित उत्पादन का सहारा लिया जाता था और जहॉ विवाद की सम्भावना होती थी और किसान या राजा अनुमान पर शका प्रगट करते थे वहॉ बॅटवारे का ढग प्रयोग मे आता था।[४६] यह ढग प्राचीन काल से ही प्रचलित था। आगे अधिकाश स्थानो मे इन दोनो शब्दो के बदले मे बॅटाई शब्द ही उपयोग मे प्रचलित था।[४७]

फसल कभी अच्छी होती थी और कभी खराब होती थी। कभी तो एक ही किसान के एक खेत मे अच्छी फसल होती थी और दूसरे मे खराब।[४८] ऐसी दशा मे अनुमानित राज्यांश काफी विवादग्रस्त हो जाता था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए जोत के नाम पर लगान लगाने का ढंग अपनाने का प्रयत्न किया जाने लगा। इस ढंग में उपज की औसत निकालने का प्रयत्न किया गया।[४९] इस प्रकार उसकी आय सदैव ही घटती बढ़ती रहती थी। इस अनिश्चितता एवम् असुविधा को दूर करने के लिये कालातर में ठेके की प्रथा का प्रचलन प्रारम्भ हुआ।[५०]

---

[४३] पूर्वोद्धत,
[४४] वही–पृ०–२०,
[४५] वही, पृ०–२१,
[४६] पूर्वोद्धत,
[४७] वही,
[४८] वही,
[४९] वही,
[५०] वही, पृ०–२२,

ठेके की प्रथा मे लगान निर्धारण करने वाले कर्मचारी से किसान एक प्रकार का ठेका कर लिया करते थे।[५७] वे अपनी अधिकृत भूमि के बदले मे निर्धारित रकम प्रति वर्ष उस कर्मचारी को दे दिया करेगा चाहे वह अधिकृत भूमि से कुछ उपजावे या नही।[५८] इस प्रणाली के गुण दोषो का विवेचन आगे देखने को मिलता है। वर्तमान काल मे प्रचलित व्यवस्था का मूल रूप ठेके की प्रथा थी।[५९]

(ब) मध्यस्थों के द्वारा लगान निर्धारण–

मध्यस्थ शब्द का प्रयोग उन सभी लोगो के लिये हुआ है जो राजा की ओर से लगान का निर्धारण या उसकी वसूली करते थे।[६०] इसका कुछ अश और कभी–कभी तो पूरा का पूरा ही उनके पास रह जाता था। इन मध्यस्थो को हम सरदार, प्रतिनिधि, जागीरदार, वक्फदार और सीरदार के नाम से जान सकते है।[६१]

किसी भी साल की प्रति बीघा औसत उपज निकाल कर उसी पर राज्याश निश्चित किया जाता था और वही तब तक लिया जाता था जब तक फिर से निर्धारण की आवश्यकता नही पड़ती थी।[५०] इस प्रकार किसान की उपज चाहे जितनी हो परन्तु लगान पर उसका कोई असर नही पडता था। लगान देनी पडती थी।[५१] बोआई की भूमि पर अर्थात वह जितनी भूमि बोता था उसके अनुसार वह लगान भी देता था। यह भूमि कभी भी फसल के समय नापी जा सकती थी और इस प्रकार वास्तविक उपज को जाने बिना भी राज्यांश का सही–सही अनुमान लगा लेना सरल हो जाता था।[५२] परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि किसान से उतनी ही भूमि का

---

[५७] पूर्वोद्धत,
[५८] वही,
[५९] वही,
[६०] वही,
[६१] वही,
[५०] वही, पृ०–२१
[५१] वही,
[५२] वही,

लगान लिया जाता था जितने मे प्रति फसल की वह बोआई करता था। अर्थात लगान का निर्धारण फसल पर न होकर बोई गयी भूमि पर होने लगा।[५३] तेरहवी से उन्नीसवी शताब्दी तक दोनो ही ढग स्थान एव समय भेद से प्रचलित रहे।[५४] कभी–कभी तो दोनो ही ढग साथ–साथ ही प्रचलन मे आ जाते थे। परन्तु इनमे जो थोडी बहुत असुविधा थी वह यही कि न केवल प्रतिवर्ष वरन् प्रति फसल के समय राजा को नया प्रबन्ध करना पडता था।[५५]

सरदार (Chieftains)- मध्यकाल के प्रारम्भ काल मे सुल्तान विदेशी थे अत भूमि का अधिकांश भाग हिन्दू सरदारों के पास था।[६२] ये सरदार लोग उस भूमि के बदले में सुल्तान को एक निश्चित रकम कर के रूप में देते थे और शाही नौकरो को उन भूमि क्षेत्रों के लिये न कुछ करना ही पड़ता था और न वे सरदारो के आन्तरिक मामलो मे कभी कुछ हस्तक्षेप ही करते थे।[६३] प्रारम्भिक लेखो मे इन्हे राजा, राना, राय, राव इत्यादि कहते थे और यह खिताब आज भी कायम है। यद्यपि उनका काम उनके हाथ से निकल गया है।[६४] इन खिताबो से यह भी पता चलता है कि सुल्तान को कर देने के मामले को छोड़कर बाकी मामलो मे वे स्वतन्त्र होते थे।[६५] उनके हिन्दू कालीन अधिकार ज्यों के त्यो रह गये थे। कालान्तर मे ये ही सरदार जमींदार कहे जाने लगे।[६६] इस प्रकार मध्य काल के जमीदारो एवम् आजकल के जमीदारों मे ऐतिहासिक समता है यद्यपि दोनो के स्वामित्व की स्थिति मे अब पर्याप्त परिवर्तन हो गया है।[६७]

---

[५३] पूर्वोद्धत,
[५४] वही, पृ०–२१,
[५५] वही,
[६२] वही, पृ०–२२,
[६३] वही,
[६४] वही,
[६५] वही,
[६६] वही,
[६७] वही,

भूत–काल मे इन सरदारो के ऊपर किस ढग से कर– निर्धारण होता था उसका कोई भी वर्णन कही भी नही मिलता है।[६८]

यह कर–निर्धारण या तो आपसी समझौते से तय होता रहा होगा या बादशाह की आज्ञा से। यह निर्णय करना सरदार का ही काम होता था कि वह किसान से मालगुजारी किस ढग से वसूल करे।[६९] सरदारो का स्वामित्व उनकी राजभक्ति पर निर्भर था जिसका मुख्य अग था कि वे नियमित रूप से समय पर कर अदा कर दिया करे।[७०] कर न पहुँचाने का फल यह होता था कि बादशाह उन्हे या तो अपदस्थ कर देता था या नई शर्तो के साथ उसे ही वह पद फिर से दे देता था।[७१] कहने की आवश्यकता नही कि इस प्रकार के कार्य के लिये कभी सुल्तान या बादशाह की आज्ञा से ही काम चल जाता था और कभी–कभी लडाई तक की परिस्थिति उत्पन्न हो जाती थी।[७२]

प्रतिनिधि (Representative)-

मध्यकाल के अधिकाश समय में किसी गॉव से राजा को कितना मिलेगा इसका निर्धारण फसल पर या सालाना होता था।[७३] यह निर्धारण लगान निर्धारक कर्मचारी और गॉव मे किसानो के प्रतिनिधि या मुखिया के बीच समझौते द्वारा होता था।[७४] इस समझौते का आधार गॉव की बोई गयी तथा बोई जाने वाली जमीन का क्षेत्रफल होता था साथ ही मौसम तथा अन्य परिस्थितियो पर विचार किया जाता था।[७५] पहले गॉव भर की लगान इकट्ठा तै कर ली जाती थी तब मुखिया उस रकम

---

[६८] पूर्वोद्धत,
[६९] वही, पृ०–२३,
[७०] वही,
[७१] वही,
[७२] वही,
[७३] वही,
[७४] वही,
[७५] वही,

को गॉव भर के किसानो के ऊपर हैसियत का विचार करते हुए लगान लगा देता था।[७६] लगान निर्धारण की यह प्रणाली बहुत कुछ सरदारो के द्वारा अपनायी गयी प्रणाली के समान ही है।[७७] कभी–कभी यह लगान निर्धारण प्रति गॉव के मुखिया के द्वारा न होकर परगना के चौधरी (मुखिया) के द्वारा सारे परगने का एक साथ ही होता था।[७८] फिर चौधरी प्रति गॉव के मुखिया के ऊपर और मुखिया अपने गॉव के प्रति किसान को लगान की रकम बता देता था।[७९] सरदारो के निर्धारण और उस निर्धारण मे इतना ही अन्तर था कि सरदारो से निश्चित रकम राजा लेता था परन्तु प्रतिनिधि निर्धारण मे राज्याश घटता बढता रहता था।[८०] सरदारों द्वारा देय कर तब तक निश्चित रहता था जब तक बादशाह उसे कम या अधिक न कर दे।[८१]

जागीरदार (Assignees)- कभी–कभी ऐसा होता था कि बादशाह किसी व्यक्ति की सेवा या किसी भी काम के बदले मे नकद रकम न देकर उस व्यक्ति को कुछ प्रदेश जागीर के रूप मे दे देते थे।[८२] उस प्रदेश का समूचा राज्याश उस व्यक्ति को मिलता था, साथ ही उसे वसूल करने मे पडने वाली बाधाओ को दूर कर पाने के योग्य प्रशासनिक अधिकार भी उस व्यक्ति (जागीरदार) को दिये जाते थे।[८३] जागीरदारी की यह प्रथा मध्य कालीन ग्रामीण व्यवस्था का एक मुख्य अग है। ये जागीरदार एक गॉव से लेकर इक्ता तथा बाद मे सूबो तक के होते थे।[८४] इन जागीरदारो से बादशाह प्राय., ऐसे ही काम लेते थे जैसे शाही कार्यो के लिये फौज रखना या सैनिको अथवा

---

[७६] पूर्वोद्धत,
[७७] वही,
[७८] वही–पृ०–२३,
[७९] वही,
[८०] वही,
[८१] वही,
[८२] वही,
[८३] वही,
[८४] वही पृ०–२४,

अन्य कर्मचारियो का वेतन देना इत्यादि। इस प्रकार उस जागीर का सारा राज्याश ही इस जागीरदार को मिलता था।[८५]

वक्फदार (Grantees)-

जिस प्रकार भविष्य मे की जाने वाली सेवा के लिये जागीरदारो को जागीरें दी जाती थी उसी प्रकार पिछली जानदार सेवा या पूर्ण कार्य करने के बदले मे पेशन के तौर पर अथवा पहलवानो, विद्वानो अथवा गौरव कलाकारो के जीवन–यापन के लिये जागीरे मिलती थी, उन्हे वक्फ कहते थे[८६] और जिन्हे इस प्रकार की जागीरे मिलती थी उन्हें वक्फदार कहते थे।[८७] दोनो मे अन्तर इतना था कि जागीरदार को अपनी जागीर के बदले मे भविष्य में आवश्यक सेवा करनी पड़ती थी, जब कि वक्फदारो के सामने ऐसी कोई शर्त नही होती थी। दोनों ही अपने दाता (बादशाह) की प्रसन्नता तक ही कायम रहते थे।[८८]

सोर-ार (Farmar)- कभी–कभी ऐसा होता था कि जब किसी व्यक्ति को इक्ता तथा सूबे की मालगुजारी वसूल करने के लिए नियुक्त किया जाता था तो अनेक उलझनो से बचने के लिये उस व्यक्ति के साथ बादशाह का एक समझौता हो जाता था कि वह व्यक्ति एक निश्चित धनराशि बादशाह को देगा चाहे उसकी वसूली कम हो या अधिक।[८९]

ऐसे सूबेदार फिर अपने सूबे के किसानों से उसी प्रकार का समझौता करते थे कि अमुक किसान निर्धारित लगान देगा चाहे वह जमीन जोते–बोये या नहीं ।[९०] सचार– साधन की कमी से यह व्यवस्था ठीक तो होती थी परन्तु इस व्यवस्था ने

---

[८५] पूर्वोद्धत,
[८६] वही,
[८७] वही,
[८८] वही,
[८९] वही,
[९०] वही,

सटोरियो को बढावा दिया।[६१] क्योकि अधिक से अधिक रकम देने वाले की ही नियुक्ति सूबेदार के पद पर होती थी और वह भी अपने छोटे से छोटे कार्यकाल मे अधिक से अधिक मुनाफा पाने की धुन मे उन्ही किसानो को भूमि देने को तैयार होता था जो उसे बडी से बडी रकम लगान के रूप मे दे सकते थे।[६२] इस प्रकार उन सीरदारो का जन्म हुआ जो या तो काफी भूमि पर खेती करते थे या काफी बडा क्षेत्र लेकर उसे छोटे किसानो मे बॉट कर मनमानी लगान लेते थे।[६३] इस प्रथा ने अनेक सरदारो और जागीरदारो को भी लालच दिया और वे भी धीरे–धीरे इन्ही बडे सीरदारो की श्रेणी मे आते गये।[६४] परन्तु उससे ग्रामीण–व्यवस्था का सम्पूर्ण ढाचा ही अस्थिर हो गया। क्योकि लगान निर्धारक, वसूली करने वाले, सरदार, जागीरदार इत्यादि सभी लोग उस श्रेणी मे आना पसन्द करने लगे।[६५]

अब तक राज्याश के रूप मे किसान के उपज की बॅटाई को पर्याप्त कहा जा चुका है। उस विषय मे भी कुछ शब्द आवश्यक होगे।[६६] उपरोक्त वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि किसान राज्याश को कैसे देता था, गल्ले के रूप मे हो या नकदी के रूप में सरकारी कर्मचारी समय–समय पर उस समय का भाव लगाकर गल्ले को नकद के रूप मे या नकद को गल्ले के रूप मे हिसाब लगाकर लगान वसूल कर लिया करते थे।[६७] जहॉ तक मध्यस्थो के पारिश्रमिक का प्रश्न था, उन्हे शासन से नकदी ही मिला करती थी।[६८] परन्तु 'किस समय किसान नकदी (Cash) के रूप मे लगान देने

---

[६१] पूर्वोद्धत,
[६२] वही,
[६३] वही,
[६४] वही,
[६५] वही,
[६६] वही,
[६७] वही,
[६८] वही,

लगा। इसका पता नहीं चलता।[९९] यह सोचना कि नकदी (सिक्को के रूप मे) लगान देने की प्रथा दर्तमान कालीन है भूल है। क्योकि अगले अध्याय मे हम देखते है कि दिल्ली के आस–पास वाले किसान तेरहवी सदी मे अपनी लगान प्राय सिक्कों के रूप मे ही चुकाते थे।[१००]

मनुस्मृति में स्पष्ट निर्देश है कि सौ गॉवो के प्रबन्धक को एक गॉव की माल गुजारी छूट मे मिलनी चाहिए।[१०१] इसी निर्देश ने शायद जागीर प्रथा को जन्म दिया जिसे मध्य काल मे इतनी प्रशंसा मिली।[१०२] हर्ष के जमाने मे राजा या राज्य की कोई भी सेवा करने के बदले वेतन न मिल कर सीर ही मिलती थी।[१०३] ह्वेनसाग ने स्पष्ट ही लिखा है कि 'राजा प्रत्येक मत्री तथा कर्मचारी को पोषण योग्य भूमि ही देता था।[१०४]

अत हम कह सकते है कि सरदारी, जागीरदारी, वक्फदार ये सब हिन्दू ग्रामीण व्यवस्था के ही अग थे।

ऐसी कोई प्रत्यक्ष सामग्री तो नही है जो यह प्रमाणित कर सके कि उस समय ऐसे भी छोटे सरदार या राजा थे जो अपने से बडे राजा को लगान देते थे परन्तु राजाओ की संख्या का आधिक्य हर समय होती रहने वाली लड़ाइयो ने ऐसा वातावरण अवश्य उपस्थित कर दिया होगा जिसमे केवल इसी प्रकार की व्यवस्था फलदापि हो सकती थी।[१०५] और अर्थशास्त्र (कौटिल्य) के अध्ययन से ऐसी सम्भावना दिखाई पड़ती है कि उस समय कर लेने वाले राजा अवश्य रहे होगे।[१०६]

—

[९९] पूर्वोद्धत,
[१००] वही,
[१०१] वही,
[१०२] वही,
[१०३] वही,
[१०४] वही,
[१०५] वही, पृ०–२६,
[१०६] वही,

कौटिल्य का अर्थशास्त्र समूचे ग्राम से कर वसूल करने की व्यवस्था देता है और यह व्यवस्था मुस्लिम कालीन व्यवस्था से एकदम मेल खाती है।[१०७] इसके अतिरिक्त दक्षिण के शिला लेखो मे भी नाप के अनुसार निश्चित अनाज राज्य को देने की बात पायी जाती है और यह बात मुस्लिम विजय से पहले की है।[१०८]

अत उपरोक्त वर्णन को देखते हुये यह निष्कर्ष निकालना सरल है कि मुस्लिम युग मे जो व्यवस्थाये पचलन मे थी उन सब का मूल रूप हिन्दू व्यवस्था से लिया गया था।[१०९] सम्भावना तो इस बात की ही अधिक दिखाई पडती है कि वे व्यवस्थाये अत्यधिक समय तक प्रचलन मे रहने के पश्चात ही लेखो मे स्थान पा सकी।[११०] अत ऐसा प्रतीत होता है कि मुस्लिम विजेताओ ने प्रचलित व्यवस्थाओ को ज्यो की त्यो स्वीकार कर लिया था।[१११] हमे यह भी ध्यान मे रखना चाहिए कि ये विजेता भी अपने साथ किसी न किसी प्रकार की ग्रामीण–व्यवस्था का आर्दश अवश्य लाये होगे और ये व्यवस्थाये अवश्य ही इस्लाम के सिद्वान्तो के अनुकूल रही होगी, भले ही आवश्यकतानुसार बादशाहो अथवा वजीरो ने समय–समय पर इनमे सुधार व परिवर्तन कर लिया हो।[११२] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य काल के शासको ने किस प्रकार की भावना साथ लाये थे और किस प्रकार हिन्दू व्यवस्थाओ से उनका सम्बन्ध स्थापित हुआ।[११३]

---

[१०७] पूर्वोद्धत,
[१०८] वही,
[१०९] वही,
[११०] वही,
[१११] वही,
[११२] वही, पृ०–२७,
[११३] वही,

इस्लाम की व्यवस्था—

आठवी शताब्दी मे अबू यूसुफ—याकूब बगदाद का प्रधान काजी था। हारून—उल—रशीद उस समय खलीफा थे।[११४] याकूब ने 'किताबुल खराज' नामक एक ग्रथ लिखा था जिसको देखने से पता चलता है कि इस्लामी व्यवस्था का मुख्य अग था लगान योग्य भूमि को दो वर्गो मे बॉटना।[११५] अरब की मुख्य भूमि को उश्री भूमि कहते थे और उस भूमि पर उपज का दसवॉ भाग लगान के रूप मे लिया जाता था।[११६] मुस्लिम शासक जब कोई देश जीत कर वहॉ के निवासियो को भूमि से बेदखल कर के वह भूमि अपने अधीनस्थ सैनिको और कर्मचारियो मे बॉट देते थे तो उस जमीन को खिराजी जमीन कहते थे।[११७] परन्तु मुस्लिम शासको ने भारत मे इस प्रकिया को नहीं दुहराया। राज्यो पर अधिकार करके जोत की भूमि को उन्होने पुराने लोगों के पास ही रहने दिया।[११८] इसका परिणाम यह हुआ कि जोत की भूमि का अधिकाश भाग हिन्दुओ के पास ही रह गया।[११९] अत· यहॉ की समूची भूमि खिराजी हो गयी।[१२०] इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओ को दो प्रकार के टैक्स देने पड गये। गैर मुसलमान होने के नाते उन्हे जजिया देना पड़ता था। साथ ही भूमि जोतने के बदले उन्हें खिराज भी देना पड गया।[१२१]

---

[११४] पूर्वोद्धत,
[११५] वही, पृ०—२८,
[११६] वही,
[११७] वही पृ०—२८,
[११८] वही,
[११९] वही,
[१२०] वही,
[१२१] वही,

खिराज के पीछे यह भावना थी कि इस कर से मुस्लिम–हित के कार्य किये जायेगे परन्तु कालान्तर मे जब स्वतन्त्र मुस्लिम रियासते कायम होने लग गयी तो धीरे–धीरे इस खिराज ने लगान का रूप ले लिया।[१२२]

मूल–रूप मे लगान उपज के किसी भाग के रूप मे थी परन्तु वह भाग कितना हो इस विषय पर इस्लाम चुप है।[१२३] हॉ वास्तविकता यह प्रतीत होती है कि लाभ का अधिकाश भाग मुसलमान शासको के उपयोग मे आवे।[१२४] याकूब ने केवल इतना विचार रखने की व्यवस्था की है जिससे अत्यधिक लगान के कारण उपज ही कम न होने लगे।[१२५] किसान से राज्य कर कितना ले यह तै करना शासक के ही जिम्मे था उसे केवल स्थानीय परिस्थितियों का ही विचार करना पडता था।[१२६] वह यदि चाहे तो किसान की सारी बढोत्तरी मॉग सकता था। परन्तु उसे इस बात का हमेशा ध्यान रखना पडता था कि कही लगान की अधिकता से तग आकर किसान भाग न जाय या कम भूमि न जोतने लगे।[१२७] लगान निर्धारण कैसे हो यह तै करना भी शासक का काम था और अबू युसूफ–याकूब के पुस्तक मे थी उन्ही दो तरीको का ही वर्णन है जिन्हे हम 'बढाई' तथा 'नाप' के नाम से जान चुके है।[१२८]

अबू यूसुफ ने वली (Governer) तथा किसानो के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने पर जोर दिया है और मध्यस्थो के विषय मे वह प्राय· कुछ नहीं कहता ।[१२९], 'सीरदारी' को उसने रमनात्मक कहा है परन्तु उसके वर्णनो से पता चलता है कि वह 'सीरदारी'

---

[१२२] पूर्वोद्धत,
[१२३] वही,
[१२४] वही,
[१२५] वही,
[१२६] वही,
[१२७] वही,
[१२८] वही,
[१२९] वही–पृ०–२९

प्रथा से परिचित था।[130] वह उसके उपयोग को वही पसन्द करता था जहाँ कई किसान एक साथ ही सामूहिक कर निरर्धारण चाहते थे।[131] उसके द्वारा वर्णित प्रथा एकदम वैसी ही थी जिसका वर्णन हम पिछले अनुच्छेद मे कर चुके है। अबू यूसुफ कही सरदारो द्वारा लगान निर्धारण की बात नही करता और न वह वक्फदारो का और न जागीरदारो का ही वर्णन करता है।[132] फिर भी यह निश्चित है कि दिल्ली मे मुस्लिम राज्य स्थापित करने वाले लोग इन व्यवस्थाओ से परिचित अवश्य थे।[133] धार्मिक सस्थाओ को दान देना इस्लामी मजहब का मुख्य अग था।[134] १२वी शताब्दी मे अफगान बादशाह बराबर जागीरे दिया करते थे और गोरी के भारत स्थित सरदार उसे तब तक खिराज देते रहे जब तक उन्होने स्वतन्त्र रूप से अपनी बादशाहत कायम न कर ली[134]

इस प्रकार मुस्लिम विजेता ग्रामीण व्यवस्था का जो आर्दश अपने साथ लाये थे उससे बिल्कुल मिलती जुलती व्यवस्था उनको भारत में भी मिली।[135] वे भूमि की उपज का एक निश्चित भाग भारतीय किसान से लेने के लिए तैयार होकर आये थे और यहाँ उन्होने पाया कि यहाँ के किसान निर्धारित लगान ऐसे किसी को भी देने को तैयार थे, जो लेने की स्थिति मे होता।[136] मुस्लिम शासक या तो नाप के अनुसार या बॅटाई के अनुसार लगान निर्धारण करना चाहते थे और उन्होने पाया कि उक्त दोनो व्यवस्थाओ से यहाँ के लोग परिचित थे।[137] विजेताओ ने यहाँ के सरदारो से उनके स्वामित्व मे रहने वाले प्रान्तो के बदले कर लेना चाहा और यहाँ के सरदार उसके

---

[130] पूर्वोद्धत,
[131] वही,
[132] वही,
[133] वही,
[134] वही,
[134] वही,
[135] वही,
[136] वही,

लिये तैयार मिले।[१३८] मुस्लिम विजेता जागीरदारी और वक्फ के हिमायती थे और भारत मे ये प्रथाये पहले से ही थी।[१३९] भारत मे प्रचलित सीरदारी से मुसलमानो का परिचय था।[१४०] अत एक बार शस्त्र के बल पर सल्तनत कायम कर पाने के पश्चात् मुसलमानो को इस बात मे कोई कठिनाई नही हुई कि दोनो व्यवस्थाओ को वे एक मे मिला दे।[१४१]

हिन्दू व्यवस्था और मुस्लिम व्यवस्था मे मुख्यतया दो भेद दिखाई पडते हैं। पहला भेद तो यह है कि इस्लामी व्यवस्था यह थी कि किसानो से पूरा लाभाश लिया जा सकता था जब कि हिन्दू व्यवस्था मे राज्यांश उपज का छठवा भाग ही होता था।[१४२] परन्तु हिन्दू धर्म की षष्ठाश व्यवस्था को अपने सॉचे मे ढाल लेने मे मुसलमानो को कोई कठिनाई नही हुई क्योकि यहॉ के जन जीवन के मुकाबले मे उनकी शक्ति बहुत ही बढी–चढी हुई थी।[१४३] दूसरा अन्तर यह था कि हिन्दू व्यवस्था सभी प्रकार के फसलो के लिये समान थी जबकि इस्लामी व्यवस्था मे विभिन्न फसलो के लिये विभिन्न दरे थी।[१४४] ये विभिन्नतायें बोई जाने वाली फसलो पर तथा सिंचाई की सुविधाओ पर आधारित थी।[१४५] जैसे अबू यूसुफ का कहना है कि गेहूँ और जौ की उपज का २/५ भाग लेना चाहिये यदि उनकी सिंचाई प्राकृतिक साधनो (नदियों इत्यादि) से की जाती हो, परन्तु यदि मानव कृति साधनों (पुर, चर्खी इत्यादि) से सिचाई की जाती हो तो ३/१० भाग लेना चाहिए खजूर, हरी फसलो तथा बाग की उपज का १/३ भाग लेना चाहिये, गर्मी की फसलो का चौथाई ही पर्याप्त समझना

---

[१३७] पूर्वोद्धत,
[१३८] वही,
[१३९] वही,
[१४०] वही,
[१४१] वही,
[१४२] वही, पृ०–२६,
[१४३] वही,
[१४४] वही,

चाहिये।[४५] दिल्ली सल्तनत मे इस प्रकार का भेद पूर्ण निर्धारण कभी हुआ या नही उसका जवाब मै नही दे सकता क्योंकि सन् १३०० ई० के पहले किसी भी निर्धारण या माग का समावेश किसी भी राजकीय लेख में नही हुआ है।[४७] सन् १३३० ई० के आस–पास ही अलाउद्दीन खिलजी ने हिन्दू व्यवस्था का सहारा लेते हुये उपज के आधे भाग की माग की, परन्तु यह माग सभी भागो में तथा सभी फसलो के लिये समान थी।[४८] कालान्तर मे शेरशाह तथा अकबर ने भी हिन्दू व्यवस्था का ही अनुसरण किया। जहॉ तक निर्धारण की विभिन्न दरो का प्रश्न है और जो पूर्णतया इस्लामी व्यवस्था है उसका प्रचलन दक्षिण भारत मे मुर्शिद कुली खॉ ने १७वी सदी के मध्य भाग में किया।[५०]

यह सत्य है कि शुक्रनीति नामक ग्रंथ मे इस प्रकार के विभिन्न दरो की चर्चा है और जिसके आधार पर कुछ लोग यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते है कि विभिन्न दरों वाली व्यवस्था यह भी हिन्दू धर्म की ही व्यवस्था है।[५१] उपरोक्त ग्रंथ अति प्राचीन न होकर काफी इधर का है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे यह ग्रथ हिन्दू कालीन व्यवस्था तथा मुस्लिम कालीन व्यवस्था को एक सा बनाने के लिए लिखा गया है।[५२] इसमे हिन्दू व्यवस्था १/६ भाग वाला विषय है परन्तु उसे सीमित कर दिया गया है केवल ऊसर तथा पहाडी भागों के लिए।[५३]

---

[४५] पूर्वोद्धत, पृ०–३०,
[४६] वही,
[४७] वही,
[४८] वही,
[५०] वही,
[५१] वही, पृ०–३०,
[५२] वही,
[५३] वही,

उपजाऊ भूमि के लिये इस ग्रथ मे चौथाई से लेकर आधे तक की व्यवस्था है। चौथाई से आधे तक का विभेद भी सिचाई के साधनो के भेद पर ही निर्भर है।[१५४] यह शायद किसी ऐसे विद्वान द्वारा लिखा गया मालूम होता है जिसे हिन्दू धर्म की व्यवस्था का पूरा ज्ञान था, साथ ही मुस्लिम व्यवस्था से भी उसका पूर्ण परिचय था।[१५५]

दोनो व्यवस्थाओ के अन्तर के उपरोक्त वर्णन के लिये पर्याप्त विस्तृत विवेचन चाहिये। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि चौदहवी शताब्दी मे जो भी ग्रामीण व्यवस्था भारत मे प्रचलित थी, वह अपने मुख्य अगो मे इस्लामी– व्यवस्था के अनुसार थी और हिन्दू व्यवस्था के भी प्रतिकूल नहीं थी।[१५६] इसलिए मुस्लिम शासकों ने इतना भर किये कि व्यवस्था के पपारिभाषिक शब्दों को अरबी या फारसी मे बदल दिया।[१५७] कुछ शब्दो के तो अरबी या फारसी शब्द प्रयोग मे आने लगे मगर कितने ही हिन्दू कालीन शब्द ज्यो के त्यो रह गये।[१५८] इस रद्दो– बदल का वर्णन इसलिए कुछ विस्तार से कर देना उचित है कि प्राचीन ऐतिहासिको को समझने मे सबसे बडी कठिनाई पारिभाषिक शब्दो तथा उनके अर्थो को ही लेकर सामने उठाती है।[१५९]

यदि यह वर्णन सर्वाधिक मुख्य व्यक्ति से शुरू करे तो 'एक किसान' के लिए प्रारम्भ में कोई शब्द नही था। किसानों के समूह के लिये "रैयत" शब्द आता था जिसे अंग्रेजो ने रियात (Ryot) के रूप मे अपना लिया है।[१६०] इस शब्द का अर्थ भी विचित्र है। मनुष्य को जीवन निर्वाह के लिये पशु भी आवश्यक होते थे और साथ ही उनकी सुरक्षा भी।[१६१] जैसे– रेगिस्तान मे ऊँट, चरागाहो में भेड, बकरी, गाय, बैल

---

[१५४] पूर्वोद्धत,
[१५५] वही, पृ०—३१,
[१५६] वही,
[१५७] वही,
[१५८] वही,
[१५९] वही,
[१६०] वही,
[१६१] वही,

आवश्यक है, खेती योग्य मैदानो में वैसे ही किसान भी आवश्यक है। इन्ही ऊँटो, भेडो, बकरियो के झुड को 'रैयत' कहते थे।[१६२] लाक्षाणिक अर्थो मे किसानो के समूह को भी रैयत ही कहने लगे। जैसे उन जानवरो की सुरक्षा आवश्यक थी, वैसी ही सुरक्षा की आवश्यकता किसानो को भी थी।[१६३] भारत मे अट्ठारहवी शताब्दी तक 'एक किसान' के लिये कोई भी शब्द प्रचलित नही रहा और पूरे मुस्लिम काल मे "रैयत" शब्द समूह वाचक सज्ञा के ही रूप मे इस्तेमाल होता रहा।[१६४] बहुबचन मे प्रयुक्त होने पर इससे 'जानवरो' का बोध होता था न कि किसानो का।

जहॉ तक सरदार (Chief) शब्द का सम्बन्ध है, यह शब्द धीरे–धीरे प्रयोग मे आया। तेरहवी शताबन्दी के मध्य के इतिहासकार मिनहाजुल सिराज ने शुद्ध भारतीय शब्दो से काम लिया है जैसे– राय, राना इत्यादि।[१६५] एक शताब्दी बाद जियाउद्दीन बरनी ने सरदार के लिये 'खूत' शब्द को इस्तेमाल किया, जो उत्तरी भारत के किसी भी लेखक के लेख मे नही मिलता।[१६६] बरनी ने 'सरदार' शब्द के लिये कही– कही 'जमीदार' शब्द का प्रयोग भी किया है परन्तु उसके बाद के इतिहासकार शम्स अफीफ ने 'जमीदार' शब्द का ही प्रयोग किया और उसके बाद 'जमीदार' शब्द पद सूचक बन गया।[१६७] गॉव शब्द के लिये फारसी का शब्द 'देह' प्रारम्भ से ही मिलता है, बाद मे अरबी के 'मौजा' ने 'देह' का स्थान ले लिया, हिन्दी मे कई गॉवो को मिलाकर परगना कहते है, इसके भी विभिन्न समयो में अलग नाम थे।[१६८] शुरू के लेखको ने परगना के लिये अरबी शब्द 'कस्बा' रक्खा। परन्तु कालान्तर मे शम्स

---

[१६२] पूर्वोद्धत
[१६३] वही,
[१६४] वही,
[१६५] वही,
[१६६] वही, पृ०–३२,
[१६७] वही,
[१६८] वही, पृ०–३२,

अफीफ ने हिन्दी शब्द परगना ही कायम रक्खा।[१६९] प्राचीन काल मे गॉवो मे और परगनो मे भी मुखिया और लेखा–रक्षक होते थे, ये पद मुस्लिम काल मे भी बने रहे। उनमे से दोनो ज्यो के त्यो रहे मगर बाकी दो के स्थान मे नये शब्द आ गये।[१७०] परगना के मुखिया को चौधरी और गॉव के लेखा रक्षक को पटवारी ही कहते रह गये, परन्तु गॉव के मुखियॉ को 'मुकद्‌दम' और परगना के लेखा रक्षक को 'कानूनगो' कहने लगे।[१७१]

प्रयोग की इस भिन्नता का कारण है वह परिस्थिति जिसमे हिन्दू तथा मुस्लिम व्यवस्थाये एक मे मिली।[१७२] जहॉ तक देखा जाता है वहॉ तक नामो मे परिवर्तन करने का कोई भी सगठित प्रयास नही किया गया। यदि किसी पद के लिये समानार्थी एवम् सरल अरबी या फारसी शब्द मिला तो रख लिया गया नही तो हिन्दी शब्द को ही बना रहने दिया गया।[१७३] ऐसा भी हुआ है कि मुस्लिम काल मे भी फारसी और अरबी के शब्दो का स्थान हिन्दी शब्दों ने ले लिया और कही–कही तो फारसी का ही एक शब्द दूसरों के बदले में आने लगा।[१७४] इस असगठित परिवर्तन से पता लगता है कि ये परिवर्तन सिद्वांत रूपेण विद्वानों द्वारा न किये जाकर उन कर्मचारियों द्वारा समय–समय पर किये गये जो इन क्षेत्रो मे काम करते थे।[१७५] इन लोगों को शब्दो का कोई मोह तो था नहीं वे तो कम से कम कठिनाई पूर्वक अपनी लगान चाहते थे और इसके लिये उनको न इसकी आवश्यकता ही पडती थी और न फुरसत ही होती थी कि शब्दो के प्रयोग के किसी काजी या मुल्ला की राय लेने जाएं।[१७६]

---

[१६९] पूर्वोद्धत,
[१७०] वही,
[१७१] वही,
[१७२] वही,
[१७३] वही,
[१७४] वही,
[१७५] वही,
[१७६] वही,

दिल्ली के पहले के मुस्लिम शासको का यही दृष्टिकोण था। प्रारम्भिक पचास वर्षो तक की तो इस प्रकार की कोई सूचना ही नही मिलती जो किसी भी ऐतिहासिक विषय पर प्रकाश डाल सके।[१७७] हॉ बलबन के शासन मत्री तथा बादशाहत को जोडकर प्राय चालीस वर्षो तक था। उसके समय मे सूचनाओ का मिलना शुरू हो जाता है। बलबन अच्छा शासक था और शासन की अच्छाई ही उसका एक मात्र लक्ष्य था। उस लक्ष्य को प्राप्त करने मे वह कानून या धर्म की कोई भी बाधा नहीं मानता था।[१७८] अलाउद्दीन खिलजी भी उतनी ही स्वच्छन्दता से काम लेता था।[१७९] मुहम्मद तुगलक केवल खलीफा का काम करता था परन्तु समय–समय पर इस्लाम के विरूद्व कार्य करने मे भी नही हिचकता था।[१८०] हॉ फिरोज तुगलक इस प्रकार का शासक अवश्य था जो पूर्णतया धार्मिक था और अपना व शासन का प्रत्येक कार्य वह मुल्लाओ तथा काजियो से सलाह लेने के बाद ही करता था।[१८१] इतना अवश्य कह सकते है कि उन विषयो में मुल्लाओ की राय को इन्होने कभी सर्वोपरि नही माना।[१८२]

मध्यकालीन अर्थ व्यवस्था–

दिल्ली मे तुर्की सल्तनत की स्थापना सन् १२०६ ई० से प्रारम्भ होती है, क्योकि मुहम्मद गोरी का गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक इसी साल गद्दी पर बैठा[१८३] इसके समय में ज्ञात होता है कि बनारस का इक्तादार जमालुद्दीन था, तथा दूसरा इसके बाद

---

[१७७] पूर्वोद्धत,

[१७८] वही,

[१७९] वही, पृ०–३३,

[१८०] वही,

[१८१] वही,

[१८२] वही,

[१८३] मुस्लिम भारत की ग्रामीण–व्यवस्था, डब्लू०एच० मोरलैण्ड, मार्च १९६३, (पहल संस्करण्उ) पृ०–३४, इतिहास प्रकाशन, सस्थान, ४९२, मालवीय नगर, इलाहाबाद।

मुहम्मद बाकर था, जो नियमित रूप से खिराज ऐबक को दता था।[१८४] इस समय तक बनारस के लोगो को मुस्लिम शासन का अनुभव हो चुका था। मुहम्मद बिन कासिम की सिध–विजय को आकस्मिक घटना कह कर छोड भी दे तो भी अफगान सुल्तान प्राय एक शताब्दी से अपने इक्तादार भारत मे रखते आ रहे थे।[१८५] चूँकि इन इक्तादारो का मुख्य कार्य यहॉ से लगान वसूल करके सुल्तान को भेजना ही होता था।[१८६] इस प्रकार तुर्को को प्राचीन– हिन्दूकालीन ग्रामीण– व्यवस्था से परिचय हो चुका था। इस परिचय को विस्तार से वर्णन करने के लिये पर्याप्त समकालीन साधन (लेख इत्यादि) नही मिलते है।[१८७] अत लगान के मामलो मे हम केवल अन्दाज भर लगा सकते है। कभी–कभी ये इक्तादार बडी परेशानी में फॅस जाते थे क्योकि उनके अधीन इतनी अधिक सेना नही रहती थी कि ये नाम मात्र के शासक, इक्तादार लोग अपनी प्रजा पर पूर्ण नियत्रण रख सके।[१८८]

भारतीय इतिहास की १३वी तथा १४वी शताब्दी अपना एक अलग स्थान रखता है। उस समय मे सिन्ध से बिहार एवम् हिमालय से नर्मदा नदी तक तुर्को का ही शासन रहा, तथा कभी–कभी उनका राज्य पूर्व और दक्षिण मे भी कुछ बढ जाया करता था।[१८९] चौदहवी शताब्दी के अन्त मे यह सल्तनत अवनति को प्राप्त होने लगी तथा अनेक छोटी–छोटी स्वतन्त्र रियासतें बन गयी।[१९०] इस युग के तीन मुख्य इतिहासकार है–

---

[१८४] मुस्लिम भारत की ग्रामीण–व्यवस्था, डब्लू० एच०मोरलैण्ड, मार्च १९६३, (पहल संस्करण) पृ०–३४, इतिहास प्रकाशन, सस्थान, ४९२,मालवीय नगर, इलाहाबाद तथा बनारस का गजेटियर, पृ०–४४,
[१८५] वही,
[१८६] वही,
[१८७] वही,
[१८८] वही,
[१८९] वही, पृ०–३५,
[१९०] वही,

१– मिनहाजुल सिराज जो तेरहवी शताब्दी के मध्य मे दिल्ली का प्रधान काजी था। उसने अपने समय तक का इतिहास लिखा।

२– उसके करीब एक शताब्दी बाद जियाउद्दीन बरनी हुआ। जहॉ तक सिराज ने लिखा था उसके आगे से लेकर फिरोज तुगलक के जमाने तक का इतिहास बरनी ने लिखा।

३– तीसरे इतिहासकार शम्स अफीफ ने १४०० ई० के बाद लिखा और बरनी के कार्य का पूरा किया।[९६१]

अतएव १३वी तथा १४वी शताब्दी की ग्रामीण व्यवस्था के बारे में जो कुछ भी कहा जा सकता है वह उन्ही तीन इतिहासकारों के वर्णनो के बल पर।[९६२] इसी समय तत्कालीन प्रशासकीय सगठन के ढॉचे पर भी प्रकाश डाला गया। राज्य बडा हो चुका था और प्रारम्भिक काल से ही हम इस बडे देश को कई प्रादेशिक भागों मे बॅटा हुआ पाते है।[९६३] इन प्रशासकीय विभागो को हम इक्ता के नाम से जानते है और इसके प्रशासक को इक्तादार के नाम से इसका तात्पर्य उन शासकीय इकाइयो से है जिनमें समूचे भारत को शासन एवम् लगान वसूली की सुविधा के लिये कई इक्ताओ मे सुल्तान लोग बॉट कर उनमे एक शासक की नियुक्ति कर देते थे।[९६४]

नदियो का प्रदेश, इस प्रदेश को प्राय इतिहासकारो ने 'दोआब' नाम से पुकारा है। परन्तु इस प्रदेश को 'दोआब' कहना भ्रम पूर्ण है। वर्तमान समय मे दोआब प्रदेश वह प्रदेश है जो गंगा, जमुना के बीचो–बीच इलाहाबाद तक फैला हुआ है।[९६५], इस प्रकार इलाहाबाद में कड़ा का क्षेत्र गंगा तथा यमुना दोनों के आगे भी विस्तृत था।[९६६]

---

[९६१] वही,
[९६२] वही, पृ०–३६,
[९६३] वही, पृ०–३६,
[९६४] वही,
[९६५] वही, पृ०–३७,
[९६६] वही,

इस प्रकार बरनी ने बलबन कालीन दिल्ली सल्तनत की आय के साधनो का वर्णन करते हुए इक्ता की संख्या जो बीस मानी है वह बहुत कुछ अंशो में सही है।[१९७] उस समय मे दो विभाजनो का पता लगता है। राज्य इक्ता मे बॅटे होते थे और परगने गॉवो मे बॅटे होते थे अर्थात कई गॉवो को मिलाकर परगना बनता था।[१९८] अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि इक्ता तथा परगना के बीच आज कल के कमिशनरी और जिला के समान और भी कोई विभाजन होता था या नही।[१९९] कुछ लेखो में 'शिक' नाम के किसी प्रकार के विभाग का वर्णन आया है। हो सकता है कि 'शिक' वर्तमान कालीन जिलों की तरह ही होता रहा हो।[२००] लेकिन चौदहवी शताब्दी मे 'शिक' शब्द उस अर्थ के लिये व्यवहार मे आता था जिस अर्थ मे हम प्रान्त, राज्य या इक्ता शब्दो को व्यवहार मे लाते है।[२०१] सरहदी इक्ताओ मे सीमा पार की जातियो की सहायता से विद्रोह करना और भी सरल था। अतएव दिल्ली सल्तनत मे ऐसे भी क्षेत्र रहे होगे जहॉ के सरदार लोग भी इक्तादार के नियन्त्रण से निकल जाते रहे होगे और इक्तादारो को भी उन्हें नियन्त्रण मे लाना कठिन होता रहा होगा।[२०३] हॉ यह निश्चय है कि सरदारो तथा किसानो के बीच वाले प्रत्यक्ष सम्बन्ध पर मुस्लिम–शासन की स्थापना से कोई खास प्रभाव नहीं पडा।[२०४] अन्तर इतना ही रहा होगा कि किसानो से ली जाने वाली लगान की दर अवश्य ही हिन्दू काल से कुछ अधिक हो गई होगी। फिर भी गॉवो मे हिन्दू कालीन ग्रामीण–व्यवस्था ही प्रचलित रही।[२०५]

---

[१९७] पूर्वोद्धत, पृ०–३८,
[१९८] वही, पृ०–३९,
[१९९] वही,
[२००] वही,
[२०१] वही,
[२०३] वही,
[२०४] वही,
[२०५] वही,

सन् १३०० ईस्वी के आस–पास अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में बनारस का इक्तादार अजीजुद्दीन था। इसके शासन काल मे अल्लाउदीन खिल्जी ने तत्कालीन ग्रमीण–व्यवस्था मे कुछ प्रभावपूर्ण परिवर्तन किया था।[२०६] मिनहाजुल सिराज इसी काल का इतिहासकार था। वह प्रधान काजी था। शहर के बाहर जाने की उसे न आवश्यकता होती थी और न इच्छा। अतएव ग्रामीण–व्यवस्था की जानकारी में उसकी रूचि का न होना स्वाभावित माना जा सकता है।[२०७]

परन्तु जियाउद्दीन बरनी की बात उससे भिन्न है। वह प्रशासकीय विभाग मे था। उसके वर्णनो से ग्रामीण–व्यवस्था मे उसकी रूचि का प्रर्दशन होता है।[२०८] तथा समूची तेरहवी शताब्दी मे भारतीय ग्रामीण–व्यवस्था मे कोई भी उल्लेखनीय परिवर्तन नही हुये। कही–कही आकस्मिक वर्णनो तथा कुछ के लिखित घटनाओं से यह पता चलता है कि किसान मालगुजारी देकर सुल्तानो का पेट भरते थे तथा सुल्तान प्राय. होते रहने वाले इक्तादारो तथा सरदारो के विद्रोहों का दमन करने मे व्यस्त रहते थे।[२०९] लेकिन इस बात का कही से कोई भी पता नही चलता कि लगान–निर्धारण के क्या सिद्वान्त थे और लगान वसूल किस तरह की जाती थी।[२१०] यह भी पता नही चलता कि किसानो के इक्तादारो अथवा सरदारो के साथ क्या सम्बन्ध थे और किसानो का रहन–सहन कैसा था।[२११] इतना ही कहा जा सकता है कि वक्फ घडल्ले से दिये जाते थे तथा जागीरदारी की प्रथा भी थी। आगे चलकर जागीरदारी की प्रथा को ऐतिहासिक महत्व मिली।[२१२] उपरोक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि बड़ी तथा छोटी जागीरदारियों को अलग कर लेना चाहिए। फारसी में दोनो को इक्ता ही कहते थे

---

[२०६] पूर्वोद्धत, तथा, शर्की मानूमेण्टल फसीह–उद्दीन, पृ०–१२–१३,
[२०७] वही,
[२०८] वही–पृ०–४१,
[२०९] वही
[२१०] वही
[२११] वही

और उनसे यह आशा की जाती थी कि समय पर वे सुल्तान को सामरिक सहायता देगे।[२९३] छोटे जागीरदार उन्हे कहा जाता था जो सेना मे थे और छोटी छोटी जागीरे उन्हे दी गयी थी। इन लोगो को अपना घोडा तथा अपने शस्त्र रखने पड़ते थे और निरीक्षण या किसी सेवा के लिए बुलाये जाने पर उन्हे सुल्तान के सामने उपस्थित होना पडता था।[२९४] इस प्रकार एक तरह से पूर्व कालीन ग्रामीण व्यवस्था ही चलती रही। लगान वसूल करने वाला अधिकारी मुहासिल कहलाता था।[२९५] लगान वसूल करने हेतू सैनिको की आवश्यकता भी पडती थी। उनके तथा किसानों के बीच विवाद तो अवश्य ही उठते रहे होगे फिर भी यह व्यवस्था स्थाई सिद्ध हुई। इसी से पता चलता है कि तत्कालीन किसान को लगान दे देने से मतलब था। कौन किस अधिकार से लगान ले रहा है इससे उन्हे कोई भी मतलब नही था।[२९६]

ऐसा प्रतीत होता है कि अलाउद्दीन खिलजी द्वारा किये गये परिवर्तन से तथा केन्द्र मे तुर्की शासन होते हुये भी सारे देश मे हिन्दू राजाओ, सरदारो, सीरदारो इत्यादि की ही बहुतायत थी और इस सख्या की अधिकता से ये लोग तुर्की शासन व्यवस्था पर छाये रहते थे।[२९७] तथा उस समय की ग्रामीण व्यवस्था भी उन्ही से प्रभावित रहती थी।[२९८] वे हिन्दू सरदार राज्य की सेवा करते थे तथा उसके बदले मे उन्हे कुछ भूमि मिल जाया करती थी जो शाही लगान से मुक्त हुआ करती थी।[२९९] उस भूमि की आय से उनका पोषण होता था। यह लगान उनका 'हक–समझी जाती थी। परन्तु ऐसा विश्वास किया जाता था और यह सही भी था कि जितना वे राज्य

---

[२९२] पूर्वोद्धत,
[२९३] वही, पृ० ४२
[२९४] वही,
[२९५] वही,
[२९६] वही, पृ० ४२
[२९७] वही पृ० ४३
[२९८] वही,
[२९९] वही,

को देते थे उससे कही अधिक वे किसानो से लिया करते थे और इसका परिणाम यह होता था 'जबर्दस्तो का बोझा निर्बलो पर पडता था'।[२२०] इससे स्पष्ट है कि लगान निर्धारण तथा वसूली सुल्तान के हाथ मे न होकर स्थानीय सरदारों के ही हाथ में होती थी।[२२१] 'सरदारो एवम् किसानो के बीच कैसा सम्बन्ध हो' इस विषय मे 'केन्द्रीय लगान महकमा' से कोई मतलब नही था। 'इक्तादारो तथा सरदारो' के बीच कैसा सम्बन्ध रहे' यह विषय आपसी समझौते का था।[२२२]

तुर्की सरदारो द्वारा नियन्त्रित एवम् शासित प्रदेशो मे भी गॉव का 'मुखिया' एक मान्यता प्राप्त अधिकारी माना जाता था। इन मुखिया लोगो को भी वैसे ही अधिकार प्राप्त थे जैसे सरदारो को जैसा की प्रतीत होता है कि ये अधिकार उन्हे शाही सेना के बदले मे मिले थे।[२२३] इस प्रकार जो भू–भाग सरदारों को नही दिये जाते उनका प्रबन्धकर्ता गॉव का मुखिया ही होता था। मुखिया के अधिकार–सीमा को स्पष्टतया निर्धारित करने वाली कोई भी सामग्री इन इतिहासकारो ने नही दी है अत इतना ही कहा जा सकता है कि 'मुखिया' के पद को तुर्की शासकों द्वारा भी मान्यता प्राप्त थी।[२२४]

लेकिन ठीक इसके कुछ समय बाद अलाउद्दीन खिलजी ने हिन्दू सरदारो तथा ग्रामीण मुखियो को काबू मे करने के लिए दूसरा कदम उठाया।[२२५] उसने तथा उसके सलाहकारों का सोचना था कि यदि सरदारों के पास आय के अधिक साधन होगे तो उन्हे विद्रोह करने में सरलता होगी क्योंकि साधारण व्यय से बची रकम वह सैनिकों की संख्या बढ़ाने तथा शस्त्रादि खरीदने मे व्यय करके अपनी शक्ति

---

[२२०] पूर्वोद्धत,
[२२१] वही,
[२२२] वही, पृ०–४४,
[२२३] वही,
[२२४] वही,
[२२५] वही, पृ०–४७,

बढायेगे।[२२६] ये हिन्दू सरदार लोग चिरकाल से अपनी तलवार के बल पर स्वतन्त्र रहते आये थे। अतएव ऐसा कोई कारण नही था कि वे सब सामूहिक रूप से उस विदेशी शासक के प्रति वफादार हो जो सर्वथा शस्त्र बल से उनके ऊपर लद गया था और अनायास ही उनके देश से अपार दौलत लगान के रूप मे वसूल कर रहा था।[२२७] इस प्रकार सरदारो मे से कुछ लोग मौका पाते ही मुस्लिम जुये को उतार फेंकने की बात निरन्तर सोचते रहते थे और इसलिए वे लोग अपनी अवशिष्ट आय सैनिक भर्ती करने, घोडे खरीदने तथा शस्त्र इकट्ठा करने मे लगाते थे और इस प्रकार अपनी शक्ति बढाने का निरन्तर प्रयास करते रहते थे।[२२८] उनकी इस भावना को अलाउद्दीन ने अवश्य समझ लिया था और इसीलिये उसने इस प्रकार की व्यवस्था करने का इरादा बनाया जो विद्रोह के मूल साधन को ही समाप्त कर दे।[२२९] उसका विचार था कि न सरदारो के पास धन बचेगा, न उनकी शक्ति बढेगी और न विद्रोह होगा। अपने सकल्प को कार्यान्वित करने के लिए उसने निम्नलिखित कार्य किये।[१३०]

१. यह निश्चय है कि कोई भी किसान जितनी भूमि अपने कब्जे मे रक्खेगा उसकी औसत पूरी उपज का अनुमान लगाया जायेगा और कुल अनुमान की आधी उपज सरकार ले लेगी।[२२३]

२ सरदारो को अपने लगान लेने का अधिकार समाप्त कर दिया गया ताकि जो भी भूमि उनके पास हो सब पर लगान लगाई जा सके। उनको भी किसी प्रकार की

---

[२२६] पूर्वोद्धत,
[२२७] वही, पृ०—४७,
[२२८] वही, पृ०—४८,
[२२९] वही,
[१३०] वही,
[२२३] वही,

अन्य छूट नही दी गयी। उनसे भी आधी उपज लिये जाने का निश्चय किया गया।[२३२] अत सरदारो के विशेषाधिकार उलाउद्दीन खिलजी ने समाप्त कर दिया।

३ अलाउद्दीन खिलजी के काल मे लगान निर्धारण के लिये नाप का तरीका अपनाया गया। किसी भी व्यक्ति के कब्जे की कुल भूमि की नाप होती थी। फिर उसकी उपज का औसत निकाला जाता था फिर प्रति नाप की इकाई की कुल अनुमानित आय का आधा कर के रूप मे दिया जाता था।[२३३]

४. चारागाहों पर भी टैक्स लगाया गया ताकि सरदार लोग उनसे भी कुछ अतिरिक्त आय अपने लिये न बचा सके।

इन परिवर्तनो से चाहे सरदारो तथा किसानों की गरीबी भले ही बढ गयी हो मगर अलाउददीन का उद्देश्य निसन्देह पूरा हो गया।[२३४] इन नियमो से बडे सरदार भी किसानो की श्रेणी मे आ गये। उनके चारागाहो की अतिरिक्त आय को भी खत्म कर दिया गया। इसका आर्थिक परिणाम सुल्तान के लिये बहुत अच्छा रहा परन्तु सरदारो तथा मुखियो के लिये बडा खराब हुआ।[२३५] सुल्तान की आय अत्यधिक बढ गयी तथा सरदार लोग अपनी रोटी चलाने के प्रश्न मे उलझ गये। अब वे लोग सुल्तान से विद्रोह करने तक की स्थिति मे भी नही रह सके।[२३६]

अतएव लगान की मॉग तथा उसकी सफल वसूली के विषय मे इतिहासकारो का कहना है कि इन नियमो को सख्ती से लगाया गया और उसका राजनीतिक उद्देश्य पूरा हो गया।[२३७] कुछ वर्षो के निरन्तर प्रयत्न से सरदारो, गॉवों तथा परगनों के मुखियो की शक्ति ही क्षीण नही हो गयी वरन् वे गरीब भी हो गये। इन लोगो के

---

[२३२] पूर्वोद्धत,
[२३३] वही,
[२३४] वही,
[२३५] वही, पृ०–४६,
[२३६] वही,
[२३७] वही,

घरो मे सोने चॉदी का नाम तक नही रह गया और इस प्रकार वे घोडे, हथियार तथा युद्व के अन्य सामान खरीदने के बिल्कुल अयोग्य हो गये।[२३८] यहॉ तक कि उनके घरो की स्त्रियो तक को रोटी की समस्या हल करने के लिये तुर्की सुल्तानो के घरो मे नौकरी का सहारा लेना पडा।[२३९] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि सरदारो को एकदम अलग कर के सुल्तान ने किसानो से सीधा सम्पर्क साम्राज्य के अधिकाश भागो मे सफलतापूर्वक स्थापित कर लिया।[२४०] ये परिवर्तन जिन क्षेत्रो मे लागू किये गये उनकी निश्चित सीमा निर्धारित करना कठिन है। इतिहासकारो ने इससे सम्बन्धित इक्ताओ की एक लम्बी सूची दी है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि दोआब क्षेत्र मे भी ये नियम लागू किये गये थे।[२४१] इस प्रकार इस नवीन व्यवस्था को इतने बडे भू–भाग पर लागू करने के कारण देश के करोडो किसानो से सुल्तान का सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस कार्य को सफल बनाने के लिये उसे बहुत अधिक कर्मचारियो की भर्ती करनी पडी होगी और इसी लिये इसका परिणाम अवश्य ही यह हुआ होगा कि अनेक भ्रष्टाचारी तथा लुटेरे लोग भी इन कर्मचारियो में सम्मिलित हो गये होगे।[२४२] अलाउद्दीन खिलजी के काल मे गॉव का जो पटवारी था वह अपने कागजो मे उन सभी रकमो का उल्लेख करता था जो नियमित या अनियमित रूप से किसी भी किसान द्वारा किसी भी कर्मचारी को दी जाती थी। इन पटवारियो के कागजात चिरकाल से ग्रामीण व्यवस्था के मूल अंग रहते आये है।[२४३] इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि अलाउद्दीन खिलजी का शासन सुदृढ़

---

[२३८] पूर्वोद्धत,
[२३९] वही,
[२४०] वही,
[२४१] वही, पृ०–४६,
[२४२] वही, पृ०–५०,
[२४३] वही,

तथा किसानो से प्रत्यक्ष सम्पर्क रखने वाला था। कृषक व्यवस्था के मध्यस्थ श्रेणियो पर उसका विश्वास नही था।[२४४]

अलाउद्दीन खिलजी द्वारा किये गये परिवर्तन व नियम तथा अन्य व्यवस्थाये उसके मृत्यु के बाद चालू न रह सकी। उसके बाद उसका पुत्र कुतुबुद्दीन मुबारक खिलजी गद्दी पर बैठा।[२४५] उसने स्वय किसी नई ग्रामीण–व्यवस्था को जन्म नही दिया। अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चलाये गये नियमो को दृडतापूर्वक पालन करना तो दूर रहा उसने स्वय ही उन्हे ढील देना शुरू कर दिया।[२४६] लगान की माग घटा दी गयी पर कितना घटा दी गयी इसका पता नही चलता। लगान का प्रशासन अव्यवस्थित हो गया। जगह–जगह सटोरिये, सीरदार दिखाई पडने लगे।[२४७] जागीरे तथा वक्फ घडल्ले से दिये जाने लगे। परिणाम स्वरूप शासन सम्पूर्ण रूप से प्रभावहीन बन गया।[२४८]

इसके बाद गयासुद्दीन तुगलक के (१३२०–१३२५ई०) शासन काल मे बनारस का इक्तादार–जलालुद्दीन अहमद था, जिसके कार्यकाल मे सुलतान ने लगान व्यवस्था को फिर से संगठित किया। उसने कितनी लगान किसानो से लेने का फैसला किया, इसका सही पता नही चलता है।[२४९] उसने 'नाप' की व्यवस्था को नापसन्द करके 'बॅटाई' की प्रथा को फिर से प्रचलित किया और सरदारों को फिर से उसी स्तर पर लाने का प्रयास किया जिस स्तर पर वे अलाउद्दीन के शासन के पहले थे।[२५०]

---

[२४४] पूर्वोद्धत, पृ०–५५,
[२४५] वही, पृ०–५६,
[२४६] वही,
[२४७] वही,
[२४८] वही,
[२४९] वही, तथा बनारस गजेटियर, पृ०–४५,
[२५०] वही,

गयासुद्दीन तुगलक के सुधारो के दृष्टिकोण का पता इस बात से चलता है कि इतिहासकारो ने लिखा है कि 'उसने' किसानो को नवीनताओ से तथा खराब फसल होने वाले साल मे भी पूरी लगान देने से मुक्ति दी।[२५१] इस प्रकार गयासुद्दीन तुगलक की व्यवस्था मे किसान को उसी भूमि पर लगान देना पडता था जिसे वह बोता था चाहे उसके कब्जे मे कितनी भी भूमि क्यो न हो।[२५२] इसलिए सिद्वान्त रूप से ऐसा समझा जाता था कि फसल चाहे खराब हो या अच्छी परन्तु किसान को पूरा लगान देना पड़ेगा।[२५३] परन्तु ऐसा नियम कार्य रूप मे परिणीत नही किया जा सकता था क्योकि पूरे तुर्की साम्राज्य मे लगान अधिक ली जाती थी। ऐसी स्थिति मे यदि फसल खराब होने की छूट नही दी गई तो किसान लगान देने मे अस्मर्थ हो जाते।[२५४] तत्कालीन ऐतिहासिक लेखो मे प्राय ऐसे वर्णन मिलते है जिनसे पता चलता है कि फसल खराब होने पर छूट मिला करती थी।[२५५] चौदहवी शताब्दी मे जैसी परिस्थितियाँ थी उनमे नाप प्रणाली द्वारा लगान निर्धारण मे भ्रष्टाचार की काफी गुजाइश थी। बल्कि बॅटाई प्रथा मे भ्रष्टाचार की गुंजाइश अपेक्षाकृत कम थी। इसीलिये 'नाप प्रणाली' देश से दो शताब्दियो के लिये गायब हो गयी जिसको शेरशाह ने १६वी शताब्दी मे उसे फिर से चालू किया।[२५६] जहॉ तक सरदारो और मुखिया लोगो का प्रश्न था, गयासुद्दीन तुगलक, अलाउद्दीन खिलजी के इस मत से सहमत न हो सका कि इन लोगो को गरीब किसानों की श्रेणी में पहुँचा दिया जाये।[२५७] उसका विचार था कि इन लोगों का कार्य काफी उत्तरदायित्वपूर्ण है और उसी उत्तरदायित्व के मुकाबले उन्हें पारिश्रमिक भी मिलना चाहिए। उनके हक की भूमि को बिना लगान

---

[२५१] पूर्वोद्धत, पृ०—५७,
[२५२] वही,
[२५३] वही,
[२५४] वही,
[२५५] वही,
[२५६] वही, पृ०—५७

के छोड देना चाहिए।[२५८] चारागाहो द्वारा होने वाली आमदनी पर भी टैक्स न लगाना चाहिये परन्तु इक्तादारो को सावधान रहना चाहिये कि कही ये सरदार तथा मुखिया लोग निर्धारित दर से अधिक लगान किसानो से न लेने लगे।[२५९] इस प्रकार उसने ऐसी व्यवस्था चालू करने का प्रयास किया जिससे सरदार लोग आराम से रह तो सके परन्तु उनके पास इतनी दौलत न हो जाये कि वे विद्रोह करने का इरादा न बना ले।[२६०]

उसके नीति का निर्णायक तीसरा तत्व यह था कि इक्तादारो की प्रतिष्ठा बढाई जाय। यह स्पष्ट है कि उसके शासन के प्रारम्भ मे सट्टेबाज किसानों की सख्या अधिक थी, उसके मत्रियो मे अनेक ऐसे प्रकार के लोग थे जो नाना प्रकार की उपद्रव पूर्ण व असतोषपूर्ण कार्यवाहियो के जिम्मेदार थे।[२६१] उनमे से कोई खुफिया (Spies) था तो कोई 'किसान' कोई 'लगान–बर्द्धक' था तो कोई कुछ। सुलतान ने इन उपद्रवियो की कार्यवाहियों को समाप्त कर दिया और उच्चकुलीन लोगों में से इक्तादार चुनना प्रारम्भ किया।[२६२] उनको आश्वासन दिया गया कि केन्द्रीय लेखा निरीक्षकगण उनके साथ उचित तथा सहानुभूमि पूर्ण व्यवहार करेगे। उनसे सुल्तान ने यह भी कह दिया कि उनकी स्थिति तथा प्रतिष्ठा उनके ही व्यवहारो पर आधारित

---

[२५७] पूर्वोद्धत,
[२५८] वही,
[२५९] वही,
[२६०] वही, पृ०–५८,
[२६१] वही,
[२६२] वही, पृ०–५८,

होगी।[२६३] वे इमानदारी से कार्य करते हुये अपने पद के 'हक' (लगान का १/२० या १/२२ भाग और लगान का १/१० या १/१५) का उपभोग स्वतत्रतापूर्वक एवम् सम्मानपूर्वक करे। उनके सहायक कर्मचारी लोग भी अपने वेतन के अतिरिक्त १ / २ % या १ % रकम लगान से ले सकते है परन्तु इससे अधिक वे नही ले सकते।[२६४]

उपरोक्त आदेशो को स्पष्ट करने के लिए इस सम्बन्ध के बारे में कुछ कहना आवश्यक होगा जो इन इक्तादारों तथा केन्द्रीय लेखा निरीक्षक विभाग के बीच स्थापित था।[२६५] उसके लिये कोई अवधि नही निर्धारित की गयी थी। किसी कर्मचारी को कुछ दिन काम करने दिया जाता था फिर उसे निरीक्षण के लिये राजधानी मे बुलाया जाता था।[२६६] इस प्रकार निरीयक्षण को 'मुहासब' तथा जो रकम उनके जिम्मे निकलती थी उसे 'मुतालबा' कहते थे। मुतालबा की वसूली के लिए कठोर शारीरिक यत्रणा तक दी जाती थी।[२६७] किसानो से बॅटाई के आधार पर लगान निर्धारण होता था अत यह फसलो के समय के अनुसार होता था। केन्द्रीय लगान विभाग बिना लगान के दर बढाये उनसे अधिक की मांग नही कर सकता था। अगर यह लगान की दर घट बढ या साधारण ही रही तो इसका उल्लेख राजकीय लेखो मे नही किया जा सकता था।[२६८] यदि इक्तादारो द्वारा देय धन बढ़ा तो वे लोग किसी न किसी प्रकार इस वृद्धि के बोझ को किसानो के ऊपर ही डाल देते थे। फलस्वरूप बनारस के किसानो का विकास रूक जाता था और अकसर सुलतान शासको का उद्देश्य भी यही होता था। अत लगान वृद्धि दस प्रतिशत तक ही सीमित कर देना अच्छी नीति

---

[२६३] पूर्वोद्धत,
[२६४] वही,
[२६५] वही,
[२६६] वही,
[२६७] वही, पृ०—६०,
[२६८] वही,

थी।[२६६] अगर लगान की सीमा यही थी तो 'खुफियो' तथा 'लगान वर्द्धको' द्वारा दी गयी सूचनाओ का जिक्र क्यो किया गया। इससे यही मालूम होता है कि उपरोक्त अर्थ इक्तादारो तथा सुलतान के बीच के सम्बन्धो को स्पष्ट करता है न कि इक्तादारो तथा किसानो के सम्बन्ध को और वृद्वि की बात लगान पर लागू होती है न कि निर्धारण पर।[२७०] किसी भी इतिहासकार ने गयासुद्दीन द्वारा निर्धारित लगान की दर का उल्लेख नही किया है और यह विश्वास करने का पर्याप्त कारण है कि गयासुद्दीन ने वही दर कायम रखी जो पूर्व काल से प्रचलन मे थी। परन्तु यह दर भी कही लिखी हुई नही मिलती।[२७१]

गयासुद्दीन तुगलक के बाद उसका पुत्र मुहम्मद तुगलक गद्दी पर बैठाा। उसकी योग्यता एवम् चरित्र के पक्ष तथा विपक्ष मे विद्वानो द्वारा बहुत कुछ कहा जा चुका है। बरनी उसका समकालीन इतिहासकार था अत. उसकी पक्षपात हीनता भी अछूती नहीं रह सकी।[२७२] एक ओर तो प्रोफेसर डाउसन ने बरनी के वर्णनो को विरूदवाली कह कर उसके अनुवाद को ही छोटा कर दिया दूसरी ओर डा० ईश्वरी प्रसाद ने मुहम्मद तुगलक को घोर विरोधी कह कर उसका परिचय दिया।[२७३] इस प्रकार मुहम्मद तुगलक के शासन काल मे एक घटना कडा प्रान्त की है! उसके एक किसान का वर्णन बरनी ने बडी ही लच्छेदार भाषा मे किया है। उसने उस किसान को घृणित तथा मूर्ख बतलाया है।[२७४] उसके पास न तो पूजी थी न अन्य साधन थे और न मददगार ही, फिर भी उसने कुछ भूमि किसी निर्धारित रकम के बदले मे ले

---

[२६६] पूर्वोद्धत,
[२७०] वही, पृ०–६०,
[२७१] वही, पृ०–६१
[२७२] वही, पृ०–६१,
[२७३] वही, पृ०–६२,
[२७४] वही, पृ०–६३,

ली। जितनी रकम देने का उसने वादा किया था उसका दसवा भाग भी वह वसूल न कर सका। तब उसने कुछ ग्रामीणो को इकट्ठा करके विद्रोह कर दिया।[२७५]

उसने सुलतान की पदवी भी धारण कर ली। समीपस्थ स्वामीभक्त इक्तादारो ने तुरन्त उस विद्रोह को कुचल दिया। विद्रोही की खाल खिचवा ली गयी और उसे दिल्ली भेज दिया गया।[२७६] ऐसी घटनाएँ जिनमे सट्टेबाज सीरदार या तो वादे की रकम ही न दे सके और न वादा खिलाफी का जुर्माना ही, वरन उल्टे ही वे विद्रोह कर बैठे भी देखने को मिल जाती है।[२७७]

मुहम्मद तुगलक के शासन काल मे जागीरदारी की प्रथा चालू थी या नही इसका कोई भी वर्णन किसी भी भारतीय ग्रथ मे नही मिलता।[२७८] भारत मे सेनापति को अपनी फौज नही रखनी पडती थी वरन वह शाही सेना का ही सचालन किया करता था। सेनापतियों की आय उनकी व्यक्तिगत आय हुआ करती थी। उसके अधीनस्थ सैनिको को सरकारी खजाने से वेतन मिला करता था।[२७९] सेनापति को वेतन के बदले मे उसी कीमत का जागीर मिल जाती थी जिसकी लगान उसकी व्यक्तिगत आय होती थी। प्रायः इन जागीरो की आय अनुमानित आय से अधिक होती थी।[२८०] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि इसी समय इक्ता, परगनो तथा गॉवो की सही आर्थिक स्थिति आकने का प्रयास किया गया।[२८१] इस प्रकार सीरदारी एवम् जागीरदारी प्रथाये तत्कालीन ग्रामीण व्यवस्था का मुख्य अग थी।

मुहम्मद तुगलक के मृत्यु के बाद उसका चचेरा भाई फिरोज तुगलक गद्दी पर बैठा। इसके पूर्व उसे मुहम्मद तुगलक के जमाने मे ही उसे शासन का कुछ

---

[२७५] पूर्वोद्धत, पृ०—६४,
[२७६] वही,
[२७७] वही,
[२७८] वही, पृ०—६६,
[२७९] वही,
[२८०] वही, पृ०—७०,

अनुभव हो चुका था।[२८२] इस प्रकार जिस समय फिरोज तुगलक गद्दी पर बैठाा उसके शासन काल मे बनारस का इक्तादार सैय्यद जियाउद्दीन था। अत सुलतान ने गद्दी पर बैठते ही देखा कि लगान की व्यवस्था अव्यवस्थित हो गयी है। अत उस विभाग के वजीर को आदेश दिया कि वह इस विभाग को पुर्नगठित करे।[२८३] इक्ता सटोरियो के हाथ चले गये थे। इन सटोरियो को न तो इससे कोई मतलब था कि जन जीवन कैसे चल रहा है और न ही वे किसी का परवाह करते थे कि लगान के नियम उपनियम क्या है।[२८४] उनका मतलब सिर्फ इससे था कि वे अधिक से अधिक लाभ उठा सके और वह भी कम से कम समय मे।[२८५] ऐतिहासिक लेखो के अभाव मे वास्तविक दर का आधार अनुमान ही हो सकता है। लगान निर्धारण के लिये बॅटाई प्रणाली प्रचलित थी। इतिहासकारो का मानना है कि अतिरिक्त मॉग की प्रणाली को खत्म कर दिया गया।[२८६]

जागीरदारो का महत्व इक्तादारो के लिये उतना नही था जितना खेतिहरो के लिये, क्योकि सुलतान जागीरदारी प्रथा को बहुत पसन्द करता था।[२८७] उसके कर्मचारियो का वेतन पहले सिक्को मे तै कर लिया जाता था, ये वेतन काफी ऊँचे होते थे और बाद मे जितनी भूमि से वेतन के बराबर लगान मिल जाती थी उतनी ही भूमि कर्मचारियो को जागीर मे दे दी जाती थी।[२८८] उपरोक्त वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय राजधानी के कार्यालय में इस प्रकार की कोई सूची अवश्य रक्खी

[२८१] पूर्वोद्धत,
[२८२] वही, पृ०–७२,
[२८३] वही, तथा सैययद एकबाल अहमद, जौनपुरी, शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास, जौनपुर, १९८८, पृ०–११४,
[२८४] वही, तथा सैय्यद एकबाल अहमद जौनपुरी, शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास, जौनपुर, १९८८, पृ०–११४,
[२८५] वही,
[२८६] वही,
[२८७] वही, पृ०–७४,
[२८८] वही,

जाती रही होगी जिससे यह पता तुरन्त लग सकता था कि अमुक गॉव, परगना तथा इक्ता की लगान इतनी है।[२८९] जब भी किसी कर्मचारी का वेतन निश्चित किया जाता था तो उतनी ही लगान वाली जागीर को उस सूची मे से खोज कर उस कर्मचारी को दे दी जाती होगी।[२९०] फिरोजशाह तुगलक 'वक्फ' भूमि देने के मामले गे भी बहुत उदार था। उसने अपने पूर्ववर्ती सुलतानो द्वारा खत्म कर दिये गये वक्फो को उसने फिर से चालू कर दिया तथा अपने शासन के प्रारम्भ के वर्षो मे भी उसने बहुत से नये 'वक्फ' भूमि दिये।[२९१]

फिरोजशाह तुगलक के शासन काल मे हिन्दू सरदारो का बहुत ही कम वर्णन मिलता है। इसके पूर्व प्राय वे ही खेतिहरो एवम् इक्तादारो अथवा सुल्तानो के मध्यस्थ हुआ करते थे।[२९१] इस समय देश मे पूर्ण शान्ति ही रही, तथा हिन्दू सरदारो के सम्बन्ध सुलतान के साथ अच्छे थे। परन्तु उनकी स्थिति क्या थी। इसके सम्बन्ध में कोई जानकारी नही मिलती है।[२९२]

फिरोजशाह तुगलक का खेतिहरों के प्रति क्या दृष्टिकोण था। इतिहासकारो के प्रशसापूर्ण वर्णनो के अनुसार फिरोजशाह का भी रूख वैसा ही था जैसा गयासुद्दीन तुगलक का था।[२९३] प्रशासन का लक्ष्य था कि खेती बढ़े तथा उपज की दर भी बढे। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये आवश्यक था राज्य किसानो के प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार भी करे।[२९४] उसने किसानो को सिचाई की सुविधा बढाने का प्रयत्न किया।

---

[२८९] पूर्वोद्धत, पृ०–७६,
[२९०] वही,
[२९१] वही, पृ०–७७,
[२९१] वही, पृ०–७६,
[२९२] वही,
[२९३] वही,
[२९४] वही,

उसने नहर खुदवाई। निसन्देह इन नहरो से उन नये नगरो की भी जलपूर्ति हो जाती थी, जिन्हे उसने बसाया था।[२९५]

नहरे देश के छोटे से भाग मे ही फैली हुई थी तथा बहुत थोडी सी कृषि भूमि की सिचाई इनसे सम्भव हो सकती थी। नहरो का निर्माण एक अंन्य दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है, वह यह कि इतिहास मे पहली बार राज्य की ओर से सिचाई की सुविधा देना राज्य का कर्तव्य माना गया।[२९६] किसानों का लगान निर्धारण बॅटाई प्रथा से होता था, परिणाम स्वरूप प्रत्येक उपज वृद्वि के साथ लगान की मात्रा मे स्वय वृद्वि हो जाती थी।[२९७] लेकिन ऊपर से सिचाई-कर भी देना पड रहा था। सिंचाई कर खास कर इसीलिये लिया जा रहा था कि सुलतान ने स्वय अपनी पूजी लगायी थी परन्तु उपज वृद्वि से स्वय उसकी आमदनी बढ रही थी।[२९८] सम्भव है कि शासकीय दबाव के अतिरिक्त धन देना भी काम मे लाया जाता रहा हो, परन्तु यह अन्दाज ही है प्रमाणिक नही। हमे सुलतानो एव कर्मचारियो की महत्वाकाक्षा का वर्णन ही अधिक प्राप्त है, शेष बातो का तो अनुमान ही लगाना पडा है।[२९९]

पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वाद्व मे दिल्ली मे फिरोजशाह तुगलक के उत्तराधिकारी लोगो का शासन रहा, उसके पश्चात् थोडे दिनो तक सैय्यद वश के लोग सुलतान रहे।[३००] इस शताब्दी का एक मात्र ग्रथ है 'तारीख मुबारकशाही' जो पन्द्रहवी शताब्दी के मध्यकाल मे लिखा गया है। इस ग्रथ के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे इसके लेखक को ग्रामीण व्यवस्था मे थोडी भी रूचि नही थी।[३०१] इस विषय मे जो कुछ भी लिखा गया है उससे तत्कालीन ग्रामीण-व्यवस्था को समझने मे थोडी भी

---

[२९५] पूर्वोद्धत,
[२९६] वही, पृ०-७६,
[२९७] वही, पृ०-८०,
[२९८] वही,
[२९९] वही, पृ०-८६,
[३००] वही, पृ०-८७,

मदद नही मिलती थी। इस चुप्पी का मतलब यह भी हो सकमता है कि लिखने योग्य कुछ अधिक रहा ही न हो, क्योकि इतिहासकारो की दृष्टि हमेशा नवीन बातो पर ही पडती है।[३०२] जो बात परम्परा से चली आ रही होती है उस पर दृष्टि का न पहुँचना स्वाभाविक ही है। सल्तनते छोटी ही थी। अधिकाश इक्ता राज्य से निकल चुके थे। हिन्दू सरदार सदैव विद्रोह करने को तैयार रहते थे।[३०३] चौदहवी शताब्दी के अन्त मे तैमूरलग के आक्रमण ने साम्राज्य को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया था साम्राज्य की सीमा सकुचित हो गयी थी। मुसलमान इक्तादार भी अनुशासनहीन हो रहे थे।[३०४]

उपरोक्त कुव्यवस्थापूर्ण परिस्थिति मे यह एक प्रकार से असम्भव ही था कि किसी प्रकार की ग्रामीण– व्यवस्था का उद्व्भव व विकास होता। शासन तन्त्र इतना निर्बल हो गया था कि अब किसी नवीन ग्रामीण– व्यवस्था का प्रचलन असम्भव ही था।[३०५] प्रचलित व्यवस्था मे परिवर्तन भी अधिक सम्भव नही था, क्योकि किसी भी व्यवस्था को प्रचलित करने के लिये अथवा प्रचलित व्यवस्था मे परिवर्तन करने के लिये सुदृढ शासन की उतनी ही आवश्यकता है जितनी उसके स्थाई होने की।[३०६] विभिन्न प्रशासक विभिन्न नीति अपनाते है तथा विभिन्न व्यवस्थाये भी चलाते है और विवश होकर खेतिहरो को उनकी बात माननी ही पड़ती है। प्रशासक का मत ही उनकी नीति होती है।[३०७]देश जिस परिस्थिति से गुजर रहा था उसमे न तो 'बॅटाई' की प्रणाली ही काम दे सकती थी और न कि 'नाप' की प्रणाली।[३०८]

---

[३०१] पूर्वोद्धत,
[३०२] वही,
[३०३] वही,
[३०४] वही, पृ०–८८,
[३०५] वही,
[३०६] वही,
[३०७] वही,
[३०८] वही,

अत उस समय 'सामूहिक निर्धारण' (Group Assissment) ही सर्वाधिक उचित व्यवस्था हो सकती थी। अनुमान से आगे बढने का कोई साधन ही नही मिलता। यत्र–तत्र कुछ ऐसे भी वर्णन मिलते है जिनसे यह पता चलता है कि जागीरदारी की व्यवस्था उस काल में भी थी। इससे अधिक कोई भी प्रमाण नही मिलता।[३०९]

इसके बाद १४५१ ई० मे सैय्यद वश के हाथ से राजसत्ता निकल कर लोदियो के हाथ मे आ गयी। लोदियो के शासन काल मे दिल्ली फिर पुराने शान व शौकत की ओर लौटने लगी।[३१०] जागीरदारी ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यवस्था थी।[३११] इस समय मे जागीरदारो को केवल शाही खिदमत की ही पूर्ति नही करनी पडती थी वरन् उन्हे सुलतान को किसी भी समय काम देने के लिये अपने खर्चो से फौज भी रखनी पड़ती थी।[३१२] इस प्रकार की व्यवस्था मे अवश्य ही जागीरो की सख्या कम होगी, तथा उनका क्षेत्र अवश्य ही बडा होता रहा होगा।[३१३]

बहलोल लोदी इस वश का सस्थापक था। उसकी सारी सत्ता उसके सहयोग व समर्थन पर ही आधारित थी। अतः उसने जागीरदारी व्यवस्था को ही प्रचलित रखा। लोदी वंश द्वारा दी गई जागीरो का क्षेत्र बहुत बड़ा था शायद इसी से दूर–दूर के देशो के अफगान सरदार भारत की ओर आकर्षित हुये तथा इन जागीरों को स्वीकार करके उन्होने लोदियो की शक्ति बढायी।[३१४] बडी से बडी जागीरो के मालिक भी अपने सेवको तथा कर्मचारियो को छोटी बडी जागीरे उसी शर्त पर दे दिया करते थे जिस शर्त पर खुद उन्होने सुलतान से पाया था।[३१५] इसी प्रकार जागीर के अन्दर जागीर की व्यवस्था पूरे देश में प्रचलित थी। सुलतान के निजी खर्च के लिये रख

---

[३०९] पूर्वोद्धत, पृ०–८९,
[३१०] वही,
[३११] वही,
[३१२] वही,
[३१३] वही,
[३१४] वही, पृ०–९०,

लिये गये रक्षित प्रदेश को छोड कर शेष सारा देश इसी प्रकार की जागीरदारी की व्यवस्था से शासित होता था। वेतन भोगी कर्मचारी तो नही के बराबर थे।[३१६]

अफगान सरदारो का इन जागीरो के प्रति कैसा रूख था इसका अदाज इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि एक बार उन्होने सुलतान पर यह दबाव डाला कि इन जागीरो को पैत्रिक सम्पत्ति के समान बना दिया ताकि ये जागीरे उनकी वशगत सम्पत्ति समझी जाए और उनकी मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारियो में विभाजित कर दिया जाये।[३१७]

इसके बाद सुलतान ने इस पर निर्णय दिया कि इन जागीरो को व्यक्तिगत सम्पत्ति से हमेशा अलग रक्खा जायेगा। व्यक्तिगत सम्पत्ति व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियो को मिल जायेगी, परन्तु नौकरिया चूकि वशगत नही हो सकती। अत. इन नौकरियो के वेतन रूप मे मिली जागीरे भी वशगत नही हो सकती।[३१८] उपरोक्त वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि उस वक्त खेतिहर लोग इन्हीं जागीरदारो से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित थे और सल्तनत का सारा कार्य जागीरदारो के बल पर ही होता था।[३१९] सल्तनत काल मे चली आ रही लगान निर्धारण तथा लगान वसूली ये दो भिन्न कार्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन जागीरदारों को दोनो प्रकार के कार्यो को करने के लिए पूर्ण स्वतत्रता प्राप्त थी। कोई अकुश उन पर नही होता था।[३२०] लोदी सुलतानो के समय का जो बहुत कम वर्णन हमे प्राप्त होता है उनसे यह पता नही लगता कि इन सुल्तानो के समय मे कौन सा भाग उपज के रूप

---

[३१५] पूर्वोद्धत, पृ०–६०,

[३१६] वही, तथा इलियट एण्ड डाउसन, भारत का इतिहास, भाग–४, पृ०–४१०, तथा भाग–७, पृ०–७५,

[३१७] वही, पृ०–६०,

[३१८] वही,

[३१९] वही,

[३२०] पूर्वोद्धत, पृ०–६१,

मे लिया जाता था।[321] उपर्युक्त परिस्थितियो से तो यह स्पष्ट है कि इन सुलतानो ने उतना तो अवश्य ही वसूल किया होगा जितना वे अधिक से अधिक वसूल कर सकते थे।[322] इस प्रकार दरो की विभिन्नता का अनुमान भी लगाया जा सकता है क्योकि किसी प्रकार का तत्सबन्धी उल्लेख किसी भी तत्कालीन साहित्य मे नही मिलता है। कुछ समय तक तो लगान अवश्य ही सिक्को के रूप मे ली जाती रही होगी, क्योंकि यदि ऐसी परम्परा न रही होती तो इब्राहिम लोदी को यह आदेश निकालने की आवश्यकता न पडती कि 'लगान आगे से केवल गल्ले के रूप मे ही ली जाया करेगी।'[323] जागीरो के स्वामित्व सम्बन्धी कुछ विस्तृत वर्णन अवश्य प्राप्त हैं। थोडी सी कठिनाई उस समय यह पड रही थी कि इन जागीरो के अन्तर्गत कुछ 'वक्फ' भी आ गये थे।[324] अतएव सिकन्दर लोदी ने यह आदेश दिया कि 'हर जागीरदार उन लोगो के स्वामित्व का पूरा सम्मान करे जो उन लोगो के जागीर मे पहले से चले आ रहे है।' इसी सम्बन्ध मे इतिहासकारो का यह भी कहना है कि उस समय जागीरदारो को हिसाब देखने की प्रणाली सीधी–सादी तथा हर प्रकार की कठिनाइयो से मुक्त थी। केन्द्रीय लगान विभाग इसमे कोई हस्तक्षेप नही करता था।[325] सिकन्दर लोदी के समय मे जागीरदारो को यह भी आदेश था कि जागीरदार जो कुछ भी निर्धारित लगान के अतिरिक्त अपनी जागीर से प्राप्त करे वह अपने निजी खर्च के लिये रख सकता है तथा उससे सुलतान को कोई मतलब नही रहता था।[326] खेतिहरो के वास्तविक मालिक भी यही जागीरदार लोग ही होते थे तथा सुलतान का उनसे कोई

---

[321] वही, पृ०–६६,
[322] वही,
[323] वही,
[324] वही
[325] वही, पृ०–६७, तथा इलियट एण्ड डाउसन भारत का इतिहास, भाग–४ पृ०–४४७, व ४४८,
[326] पूर्वोद्धत, पृ०–६७,

प्रत्यक्ष सम्पर्क नही होता था। इस प्रकार लोदी कालीन ग्राम– व्यवस्था पूर्व काल से चली आ रही व्यवस्था पर ही निर्भर थी।[३२७]

लोदियो के पतन के पश्चात् सन् १५२६ ई० मे मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई, परन्तु साम्राज्य स्थापित्व को नही प्राप्त हो सका। इसके संस्थापक बाबर थे, इनके शासन काल मे हमे ज्ञात होता है कि बनारस का इक्तादार हुसैन शर्की को नियुक्त किया गया था। जिसने पूर्व निर्धारित लगान व्यवस्था को ही बनाये रखा। इसके बाद उसका पुत्र हुमॉयू के शासन काल मे बनारस का इक्तादार–मीर फजली था। इसने भी लगान व्यवस्था को पूर्ववत बनाये रखा।[३२८] इसके बाद मुस्लिम शासको मे शेरशाह का नाम लगान निर्धारण मे महत्वपूर्ण रहा है। इसके भी समय मे कुछ समय तक बनारस का शासन मीर फजली ने सभाला। लेकिन कुछ दिन के बाद उस्मान खान को बनारस का इक्तादार नियुक्त किया गया। शेरशाह अपने जीवन के प्रारम्भिक अवस्था मे ही स्वय खेतिहरो से सीधा सम्पर्क रखकर प्रबन्ध किया था।[३२९] भारत एक कृषि प्रधान देश था तथा उस बादशाह को ही सफलता प्राप्त करने की सम्भावना थी जो किसानो की समस्याओ को पूर्णतया समझता हो।[३३०]

शेरशाह कालीन शासन प्रबन्ध मे परगना ही इकाई का काम करता था। इन परगनो मे दो अधिकारी होते थे। प्रथम शिकदार तथा द्वितीय 'अमीन' इनके साथ एक खजान्ची तथा कुछ क्लर्क भी रहते थे।[३३१] नियन्त्रण के ख्याल से कई परगनो को मिलाकर एक जिला बनाया जाता था जिसे उस समय मे 'सरकार' कहते थे।[३३२]

---

[३२७] वही,

[३२८] वही, पृष्ठ–५३ तथा निजामुद्दीन अहमद, तबकाते अकबरी, पृ०–३२०, सैय्यद अतहर अब्बास रिजवी, हुमॉयू, भाग–२ पृ०–२६४,

[३२९] बनारस गजेटियर, पृ०–४८–४६,

[३३०] मुस्लिम भारत का ग्रामीण व्यवस्था, डब्लू० एच० मोरलैण्ड इ०प्र०स०, ४६२, मालवीय नगर, इलाहाबाद मार्च–१९६३ (प्रथमसंस्करण) पृ०–६६,

[३३१] वही, पृ०–१०० तथा इलियट एण्ड डाउसन भाग–४, पृ०–४१३,

[३३२] वही, पृ०–१००,

शेरशाह के शासन प्रबन्ध की नीति के निर्धारक तत्वो का पता उन निर्देशो से चलता हैं जो नियुक्ति के समय सरकार के अधिकारिया को दिये जाते थे, "यदि लोग किसी प्रकार की अराजकता का प्रर्दशन करे और लगान देने मे किसी प्रकार की हीला हवाली करके या इनकार करके अपनी विद्रोही प्रकृति का परिचय दे तो सरकार के अधिकारी को चाहिए कि उन्हे कुचल दे, और इतनी सख्त सजा दे कि दूसरे लोग उससे भयभीत हो जाये तथा विद्रोह या विरोध की आग दूर–दूर तक न फैल सके।"[३३३] इसके फलस्वरूप लगान निर्धारण प्रणाली के विषय मे शेरशाह का दृष्टिकोण ही बदल गया था। उसने किसानो को ही स्वतंत्रता दे दी थी कि वह चाहे जो प्रणाली अपने लिये चुन ले, परन्तु बादशाह की हैसियत से इस बार उसने नाप–प्रणाली को ही प्रचलित कर दिया।[३३४]

उपज का कौन सा भाग लगान के रूप मे लिया जाता था, इस पर इतिहासकारो ने कुछ स्पष्ट नही लिखा है । ऐसा प्रतीत होता है कि खेतिहर अपने लिये एक भाग रख लेता था और उसका आधा मुकद्दम को दे दिया करता था।[३३५] इसका मतलब यह हुआ कि उस समय मे लगान उपज की एक तिहाई होती थी। मूल प्रतियो मे इस प्रकार का कोई वर्णन नही मिलता। शायद अनुवादकर्ता ने भूल से ही ऐसा लिख दिया हो।[३३६] इसके अतिरिक्त हमे 'आइन–ए–अकबरी' के एक अध्याय से इसकी पुष्टि हो जाती है जिसमे शेरशाह के समय के लगान की दरे दी हुई है, साथ ही लगान का हिसाब लगाने का ढग भी दिया गया है।[३३७]

कुछ विशेष फसलों (तरकारी इत्यादि) के लिये लगान सिक्कों के रूप में निश्चित की गयी थी परन्तु कितनी उपज के लिये कितनी लगान ली जाती थी, यह

---

[३३३] वही, पृ०–१०१,
[३३४] वही,
[३३५] वही,
[३३६] वही,

नही दिया गया है।[३३८] लेकिन कुछ खास–खास फसलो की उपज के लिये 'उत्तम' 'मध्यम' तथा 'निकृष्ट' तीन श्रेणियॉ बना दी गयी थी। इन तीनो श्रेणियो की प्रति बीघा उपज जोडी जाती थी। इन तीनो प्रकार की उपज के जोड का तिहाई लगान (महसूल) के रुप मे लिया जाता था।[३३९]

जहॉ तक उपज के सामान्य स्तर का प्रश्न है, उत्तम मध्यम तथा निकृष्ट, इन उपजो का वर्गीकरण किसी वैज्ञानिक आधार पर नही हुआ था बल्कि यो, ही, सामान्य अनुभव के आधार पर किया गया था।[३४०] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि शेरशाह को इन विषयो का व्यक्तिगत अनुभव था और वह अपनी सल्तनत के कृषि सम्बन्धी सारे कार्यो को वह स्वय देखता था, उसके सारे कार्यो का आधार वही पुराना अनुभव था जो उसने अपने पिता की जागीर का प्रबन्ध करते समय प्राप्त किया था।[३४१] इस प्रकार शेरशाह की यह व्यवस्था बहुत थोडे समय तक ही रही क्योकि उसका वश थोडे ही दिनों तक गद्दी पर रहा और इस बात की भी सम्भावना अधिक है कि शेरशाह ने यह व्यवस्था पूरे देश मे भी प्रचलित की होगी।[३४२]

इसके बाद शेरशाह की मृत्यु के बाद दस वर्षो का समय घोर दुर्व्यवस्था का था, और इस समय लगान सम्बन्धी कोई बात ही नहीं हो सकती थी। उसका जितना साम्राज्य नष्ट होने से बचा रह गया था, उसमे शेरशाह द्वारा चलायी गयी व्यवस्था ही प्रचलन मे रही।[३४३]

अकबर ने भी शेरशाह की लगान निर्धारण सम्बन्धी व्यवस्थाओं को ही अपनाया और जब तक उनमे कोई परिवर्तन नही किया जब तक उनकी उपयोगिता खत्म न

---

[३३७] पूर्वोद्धत, पृ०–१०२,
[३३८] वही,
[३३९] वही,
[३४०] वही, पृ०–१०३,
[३४१] वही,
[३४२] वही,

हो गयी।[३४४] लगान निर्धारण के अर्न्तगत तीन दरे एक के बाद दूसरी प्रचलित होती रही। इसमे पहली को 'शेरशाह' दूसरी को 'कानूनगो' तथा तीसरी को 'दसवर्शीय' के नाम से पुकारते है।[३४५] इस प्रकार उपरोक्त तीनो प्रणालियॉ नाप–प्रणाली के ही अर्न्तगत आ जाती है अर्थात ये सभी प्रकार के निर्धारण उपज के अनुसार 'प्रति बीघा लगान' लेने की व्यवस्था को अपनाते थे।[३४६] यह लगान किसी साल या फसल मे उतनी ही भूमि पर ली जाती थी जितनी भूमि उस वर्ष या उस फसल मे बोई गयी थी। इस प्रकार की लगान हर फसल पर तथा हर वर्ष घटती बढती रहती थी। इन्ही सब असुविधाओ को दूर करने के लिये बीच–बीच मे विभिन्न प्रकार के नियम एव एक के बाद दूसरी व्यवस्थाये छोडी तथा अपनायी जाती रही।[३४७]

इन दिनो बैरम खॉ अकबर का सरक्षक था। बैरम खॉ ने लगान–व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिये लगान की वही दरे प्रचलित कर दी जो शेरशाह के समय मे लागू थी, जिसमे खेतिहरो से उपज की एक तिहाई भाग मागी जाती थी।[३४८] यह लगान गल्लो के रूप मे मागी जाती थी तथा केवल कुछ फसलों के बदले में सिक्कों मे लगान मागी जाती थी। अकबर के शासन काल में बनारस का प्रथम सुबेदार मुनीम खॉ था। इसके बाद ज्ञात होता है कि दूसरे सूबेदार राय सूर्जन को नियुक्त किया गया। इससे ज्ञात होता है कि पूरी लगान की दर सिक्को मे ही ली जाने लगी और सरकारी दरो के स्थान पर बाजार की तत्कालीन वास्तविक दर काम मे लायी जाने लगी।[३४९] लेकिन इस प्रकार की व्यवस्था से काम चलने मे कठिनाइयॉ

---

[३४३] पूर्वोद्धत, पृ०–१०५,
[३४४] वही,
[३४५] वही, पृ०–११०,
[३४६] वही,
[३४७] वही, पृ०–१११,
[३४८] वही पृ०–११,
[३४९] पूर्वोद्धत, तथा आर्शीवादी श्रीवास्तव, अकबर महान, आगरा, १९६७ भाग–१, पृ०–१०७, टाड एनाल्स एण्ड एंटीक्वीटीज आफ राजस्थान पृ०–३८४,

आने लगी। सरकारी लेखो मे इस ढग के लिये कहा गया है कि "अत्यधिक कठिनाईयॉ सामने आने लगी' तथा इस व्यवस्था को छोड दिया गया तथा बाद मे 'कानूनगो' नामक दरे प्रयोग मे लायी जाने लगी।[३५०]

अकबर के शासन के कुछ समय बाद ज्ञात होता है कि १५७६ ई० मे मुहम्मद मासूम खॉ फरनखुदी बनारस का सूबेदार था। छठवे से नवे वर्ष तक इलाहाबाद सूबे मे एक ही प्रकार की परिवर्तन दरे निश्चित होती थी, यदि कुछ विभिन्नता भी थी तो वह स्थानीय थी। उस समय मे भी आज कल की तरह विभिन्न क्षेत्रो मे विभिन्न स्तर की उपज होती थी तथा प्राय. एक ही प्रदेश मे कही की फसल खराब तथा कही की अच्छी हो सकती थी।[३५१] अकबर के शासन के तेरहवे वर्ष मे यह ज्ञात होने पर कि मुजफ्फर खॉ का स्वास्थ्य खराब हो रहा है, उससे रक्षित प्रदेश का प्रबन्ध ले लिया गया और शहाबुद्दीन अहमद खॉ को दे दिया गया। इस नयें अधिकारी ने लगान निर्धारण की सालाना कष्ट पूर्ण व्यवस्था को समाप्त कर दिया तथा उसके बदले मे 'नसक' व्यवस्था चालू किया। 'नसक' शब्द सामूहिक निर्धारण का अर्थ देता है या सीरदारी का यह सामूहिक निर्धारण एक गॉव भर का भी हो सकता है या एक परगने भर का या पूरे सूबे का।[३५२] यह प्रथा कब तक चलती रही इसके बारे मे कोई लिखित प्रमाण नही मिलते लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि जब शासन के १५वे वर्ष मे कानूनगो दरे प्रचलित हुई तो इसको समाप्त कर दिया गया।[३५३]

लगान की इन दरों को कैसे निश्चित किया जाता था इसका उल्लेख नही प्राप्त होता है। लेकिन तत्कालीन प्रमाणो से जो सूचनाये प्राप्त है उनसे यही परिणाम निकालना उचित होगा कि हर कानूनगो अपने परगने की प्रत्येक उपज की सूचना

---

[३५०] वही,
[३५१] वही, बदायूनी, भाग–२, पृ०–२९०,
[३५२] वही, पृ० ११५
[३५३] पूर्वोद्धत,

उन शक्लो मे दे देता रहा होगा जो शक्ल उस समय मे पहले से ही इस्तेमाल होती रही हो।[३५४] वही यह भी बताता होगा कि किस अन्न के बारे मे लगान कितनी लेनी चाहिए। वह इस लगान की सूचना अन्नों के वजन मे ही देता रहा होगा।[३५५]

निस्सदेह उस वक्त उपज की तिहाई लगान रूप मे ली जाती थी। इसका मतलब यह हुआ कि लगान निर्धारण मूल रूप से अपरिवर्तित ही रहा परन्तु प्रत्येक परगने के लिये वह अलग रूप से लागू किया जाता था न कि सारे साम्राज्य पर एक रूप से।[३५६] इसी गल्ले को स्थानीय भाव से सिक्को के रूप मे बदल दिया जाता था परन्तु इस प्रकार के हर फसल के लगान की आखिरी स्वीकृति बादशाह ही देता था और सभी कर्मचारी उस लगान की वसूली प्रारम्भ करते थे।[३५७] इस व्यवस्था मे तथा पिछली व्यवस्थाओ मे मुख्य अन्तर यही था कि यह लगान (गल्ले के रूप मे) प्रत्येक परगने मे उपज पर आधारित थी न कि समूचे साम्राज्य की उपज पर।[३५८] अन्त मे स्वयम् बादशाह ने कानूनगो के दरो की कमियों को दूर करने के लिये एक नयी व्यवस्था 'दस वर्षीय' प्रबन्ध व्यवस्था को चलाया। इस व्यवस्था में सबसे बडी कठिनाई थी 'परिवर्तन दरों' को निश्चित करने की।[३५९] हर वर्ष की हर फसल मे अनेक प्रकार के प्रयत्नो एवम् गणनाओ के पश्चात् दर निर्धारित हो पाती थी, परन्तु उसमें इतना विलम्ब लग जाता था कि वसूली प्राय देर से शुरू हो पाती थी। अत इस नवीन व्यवस्था ने लगान की दर निर्धारित करने की समस्या ही खत्म कर दिया।[३६०]

इसके बाद यह व्यवस्था की गयी कि लगान की मांग गल्लो के रूप मे न होकर सीधे सिक्को के रूप में ही की जाने लगी। यह लगान किस ढग से निश्चित

---

[३५४] वही,
[३५५] वही,
[३५६] वही, पृ ११५
[३५७] वही,
[३५८] वही पृ० ११६
[३५९] पूर्वोद्धत, पृ० ११८

की गयी थी इसका तो कोई वर्णन नही मिलता, हॉ तत्कालीन लेखो एवम् ग्रन्थो के अध्ययन से यह परिणाम अवश्य निकाला जा सकता है कि यह लगान उतनी ही थी जितनी पिछले दस वर्षों के लगान की औसत थी।[३६१] इस व्यवस्था मे कई परगनो को मिला कर निर्धारण विभाग बनाये गये तथा हर विभाग के लिये खास लगान दर (दस्तूर) निश्चित कर दी गयी। इस प्रकार निस्सदेह यह व्यवस्था सफल हुयी।[३६२]

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि अकबर कालीन लगान निर्धारण मे दूसरी बार के परिवर्तन (कानूनगो व्यवस्था) से जागीरदार सन्तुष्ट नही थे क्योकि आईन मे उनके द्वारा की गयी शिकायतो का स्पष्ट वर्णन है।[३६३] इसके फलस्वरूप तृतीय परिवर्तन अर्थात् "दस वर्षीय व्यवस्था" का असर जागीरदारो पर भी तथा सरकारी वसूल करने वाले कर्मचारियो पर भी पडा था और दोनो उसे मानने को बाध्य थे।[३६४]

इसके बाद यह व्यस्था की गयी कि लगान की माग गल्लो के रूप मे न होकर सीधे सिक्को के रूप मे ही की जाने लगी। यह लगान किस ढग से निश्चित की गयी थी इसका तो कोई वर्णन नही मिलता, हा तत्कालीन लेखो एवम् ग्रन्थो के अध्ययन से यह परिणाम अवश्य निकाला जा सकता है कि यह लगाान उतनी ही थी जितनी पिछले दस वर्षो के लगान की औसत थी।[३६१] इस व्यवस्था मे कई परगनो को मिला कर निर्धारण–विभाग बनाये गये तथा हर विभाग के लिये खास लगान–दर (दस्तूर) निश्चित कर दी गयी। इस प्रकार निस्सन्देह यह व्यवस्था सफल हुई।[३६२]

---

[३६०] वही,

[३६१] वही, पृ ११६

[३६२] वही,

[३६३] वही, पृ १२३

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि अकबर कालीन लगान निर्धारण मे दूसरी बार के परिवर्तन (कानूनगो व्यवस्था) से जागीरदार सन्तुष्ट नही थे क्योकि आईन मे उनके द्वारा की गयी शिकायतो का स्पष्ट वर्णन है।[३६३] इसके फलस्वरूप तृतीय परिवर्तन अर्थात "दसवर्षीय व्यवस्था" का असर जागीरदारो पर भी था सरकारी वसूल करने वालो पर भी पडा था और दोनो उसे मानने को बाध्य थे।[३६४] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर के शासन काल मे नही तो उसके अधिकाश भाग मे बादशाह से स्वीकृत दर उस प्रदेश की सभी प्रकार की भूमि पर लागू हुई थी जिस प्रदेश मे उसे लागू किया गया था अर्थात उस प्रदेश मे पडने वाली जागीरो की भूमि भी इसी व्यवस्था के अन्तर्गत थी।[३६५]

उपरोक्त व्यवस्थाये केवल उन्ही प्रदेशो पर लागू नही होती थी जहा के सरदार निर्धारित कर (लगान नही) बादशाह को दिया करते थे। उन प्रदेशो की उपज से बादशाह को कोई मतलब नही होता था। सरदारो द्वारा निश्चित रकम (Tribute) उसे प्रति वर्ष मिल जाया करती थी।[३६६] अकबर ने अपने शासन काल के २४वे वर्ष यानी की १५८० ई० मे उसने सम्पूर्ण साम्राज्य को प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से १२ सूबो मे विभाजित किया। जिसमे इलाहाबाद सूबे के अन्तर्गत बनारस की गणना एक सरकार के रूप मे किया जाने लगा।[३६७] इलाहाबाद सूबे मे ६ सरकार (जिले) और १५ दस्तूरूल अमल (राजस्व सहिताये) है।[३६८] जिसमे इलाहाबाद सरकार मे १५ महल ३ दस्तूरूल अमल थे।[३६९]

---

[३६४] पूर्वोद्धत,
[३६५] वही,
[३६६] वही,
[३६७] आइने अकबरी, खण्ड–३, पृ ५
[३६८] वही, पृ ७२
[३६९] वही,

बनारस सरकार मे ८ महल तथा एक दस्तरूल अमल था। इसका विवरण इस प्रकार है – हवेली बनारस, शहर बनारस, पन्द्रहा, कसवार, हरदुआ, बयालसी इत्यादि।[३७०]

सरकार बनारसः–

सरकार बनारस मे १७७ परगने थे। इनका कुल राजस्व २१ करोड २४ लाख २७ हजार और ४१६ जब्ती थे अर्थात वहा पर फसलो से खास दर पर मालगुजारी ली जाती थी। बनारस सरकार की नापी हुई भूमि ३६६८०१८ बीघा और ३ बिस्वा थी। बनारस सरकार की मालगुजारी २०,३६,७१,२२४ दाम पर थी। यहा के ४६ परगने नगदी थे अर्थात यहा पर सामान्य दर से मालगुजारी ली जाती थी। इन परगनो की मालगुजारी ६४,५६,५६५ दाम थी। इन परगनो का सुयूरगाल ११६५४१७ दाम था। बनारस सरकार मे प्रशासनिक व्यवस्था को सुदृढ रखने के लिए सेना की विभिन्न टुकडिया तैयार की गयी थी। बनारस सरकार की सेवा मे ११३७५ सवार, २३७८७० पैदल सिपाही और ३२३ हाथी थे। अकबर के शासन काल १५८४ ई० मे बनारस का फौजदार मिर्जा चीन किलीज खॉ का नाम ज्ञात होता है।[३७१]

इस प्रकार बनारस सरकार में कुछ प्रमुख फसलो का भी वर्णन आइने अकबरी मे देखने को मिलता है। इस सरकार के क्षेत्र की "रवी" की प्रमुख फसलो मे गेहू, काबुली चना, देशी चना, जौ, मसूर, मुअसफर का बीज, पोस्ता, तरकारी, अलसी, सरसो, अर्जल, मटर, गाजर, प्याज, मेथी, विलायती खरबूजा, देशी खरबूजा, जीरा, काला जीरा, कूर धान, आजवाइन इत्यादि थी।[३७२]

---

[३७०] आइनें अकबरी, खण्ड–३, पृ० ७२

[३७१] आइने अकबरी, खण्ड–३, पृ० ५, ब्लाकमैन आइन–ए–अकबरी, कलकत्ता, १९३९, पृ ५६१, तथा बनारस गजेटियर पृ० ४६

[३७२] आइने अकबरी, खण्ड–३, पृ० ७४

"खरीफ" की प्रमुख फसलो मे पोडा, साधारण गन्ना, काला धान, आलू, कपास, मोठ, अर्जन, नील, मेहदी, सन, तरकारी, पान, सिघाडा, जुआर, कोरी, विलायती खरबूजा, तिल, मूग, हल्दी, मूली, धान, माश, गाल, तुरिया, तरबूज, लोबिया, गाजर, अरहर, लहदारा, कोदरम, मडवा, सावा और कुल्त थी।[३७३]

इसके अतिरिक्त इलाहाबाद सूबे मे चादी के सिक्को की ढलाई होती थी। जबकि २८ नगरो मे केवल तांबे के सिक्के ढाले जाते थे। जिसमे बनारस भी एक प्रमुख नगर था।[३७४]

इस प्रकार अकबर की मृत्यु के बाद उसका पुत्र सलीम जहागीर के नाम से गद्दी पर बैठा। जहागीर के शासन काल मे ज्ञात होता है कि बनारस का फौजदार नवाब चीन किलीज खॉ थे। इसके बाद जहागीर का उत्तराधिकारी शाहजहा था इसके शासन काल मे बनारस का फौजदार मुज्फर बेग था। अर्थात इन दोनो बादशाहो का शासन काल सत्रहवी शताब्दी के मध्य तक रहा।[३७५] इस शताब्दी के प्रारम्भिक पचीस वर्षों तक का समय ऐसा रहा कि इसमे ग्रामीण–व्यवस्था की स्थिति का ठीक ठीक पता देने वाली कोई सामग्री नही मिलती। वरन् तत्कालीन इतिहाराकारो ने भी इस विषय मे कुछ लिखना आवश्यक नही समझा।[३७६] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि उसने अकबर कालीन ग्रामीण–व्यवस्था को अपरिवर्तित रूप मे ही चालू रखी।[३७७] परन्तु निरन्तर जटिल होती इन समस्याओ ने औरगजेब के शासन काल मे बनारस का फौजदार ख्वाजा सादिक बख्शी था। तथा कुछ समय बाद १६६३ ई० मे अर्सला खॉ को बनारस का फौजदार नियुक्त किया गया। इस

---

[३७३] मोरलैण्ड, पृ० ११६

[३७४] वही तथा हरिशंकर श्रीवास्तव मुगल शासन प्रणाली, पृ० १६६

[३७५] वही, पृ० १६५ तथा ब्लाक मैन, आइन–ए–अकबरी, कलकत्ता, १६३६, पृ० ५६१ तथा दि ट्रवेल्स आफ पीटरमण्डी, टेपिल, लन्दन १६१४ पृ० १२२–१२३

[३७६] पूर्वोद्धत,

[३७७] वही,

प्रकार बादशाह के शासन काल मे लगान व्यवस्था विकराल रूप धारण कर लिया। अठारहवी शताब्दी मे इन समस्याओ ने राजनीति को प्रभावित करते हुए मुगल साम्राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त किया।[३७८]

औरगजेब के शासन काल के उत्तरार्ध मे इस सकट का प्रमुख कारण था – जागीरो की अत्यधिक कमी।[३७९] औरगजेब के काल मे जागीरे प्राप्त करने के इच्छुको की सख्या अत्यधिक थी। मसब प्राप्त होने के बाद भी जागीर प्राप्त होने मे वर्षों लग जाते थे। अभियान के समय अन्य अमीरो की जागीरे छीनकर ऊँचे मनसबदारो को प्रदान की जाती थी।[३८०] जागीरो मे कमी का प्रमुख कारण उस काल मे अमीरो की सख्या और मसबो मे अत्यधिक वृद्धि थी। जहॉगीर के शासन काल के प्रारम्भ मे १६०५ ई० मे मसबदारो की सख्या २०६६ थी, १६३७ ई० मे शाहजॅहा के शासन काल मे यह बढकर ८००० हो गयी, वही १६६० ई० मे औरगजेब के शासन काल मे मसबदारो की सख्या मे अत्यधिक वृद्धि हुई और यह बढ़कर ११,४५६ हो गयी।[३८१]

अमीरो की सख्या जो १६२८ ई० से १६५८ ई० के मध्य ४३७ थी। यह १६७६ ई० से १७०० ई० के मध्य बढ़कर ५७५ हो गयी।[३८२] इसका प्रमुख कारण १६७८ ई० के बाद मराठो और दक्षिण के अमीरो को प्रसन्न करने हेतु बडी–बडी मसबे प्रदान करना था।[३८३] औरगजेब के शासन काल के पूर्व कागज पर आमदनी बढाने से अमीरो को जागीरो से प्राप्त होने वाली वास्तविक आय मे ह्रास आया। उदाहरण स्वरूप, शाहजॅहा

---

[३७८] वही, पृ० २०२ से २०७, सतीश चन्द्र, उत्तर मुगल कालीन भारत का इतिहास। पृ० २३, तथा शाहनवाज खॉ, मासिर–उस–उमरा (हिन्दी अनुवाद, वाराणसी १९६५) भाग–२, पृ० २७०

[३७९] मोरलैण्ड, पृ० १६८,

[३८०] अबूल फजल मामूरी, तारीखे औरंगजेब, पृ० १५७ अ तथा ब, बर्नियर, पृ० २२७, अतहर अली, दि मुगल नोबिलिटी अण्डर औरगजेब, पृ० ८७ हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ० १६२

[३८१] अतहर अली, दि मुगल नोबिलिटी अण्डर, औरगजेब, पृ० ३१, सतीश चन्द्र पृ० २३

[३८२] तुजुके जहागीरी, वारिस बादशाहनामा, पृ० ७०, जवाबिते आलमगीरी, पृ० १५अ, एस० आर० शर्मा, रीलिजियस पालिसी ऑफ दि मुगल एम्पायर्स, पृ० १३३, पार्टीस एण्ड पालिटिक्स, अतहर अली, पृ० ३१, सतीश चन्द्र पृ० २३, २४

[३८३] श्री राम शर्मा, दि रिलीजियस पालिसी आफ दि मुगल एम्पायर्स, पृ० १३३

के शासन काल में जागीरे ८ माहा या ६ माहा अर्थात् निर्धारित आय से २/३ या १/२ मूल्य से अधिक मूल्य की नही होती थी। साथ ही मसबदारो के वास्तविक सवारो की सख्या भी उनकी सवार श्रेणी से १/३ या १/४ कर दी गयी अर्थात् ६००० जात, ६००० सवार का मसबदार वास्तविक रूप से केवल २००० या १५०० घुडसवार रखता था।[३८४] फलस्वरूप जागीरदार को अपनी जागीर स्वय उसके पास रहने की निश्चितता प्राय समाप्त हो गयी। उक्त काल के फलस्वरूप जागीरदारो ने भूमि को धनधान्यपूर्ण करने का प्रयास नही किया और इस कारण कृषि को प्रोत्साहन प्राप्त नही हुआ। अत्यधिक कर वसूली ने कृषको मे असन्तोष पैदा किया और कृषि उत्पादन मे निरन्तर ह्रास हुआ।[३८५] इस प्रकार अमीर और किसान दोनो ही असन्तुष्ट हो गये। अमीर विकास कार्यो मे बाधा डालने, गुटबन्दी और कुछ तो स्वतन्त्र रियासते स्थापित करने जैसे कार्यो मे लिप्त हो गये।[३८६] मध्यकालीन समाज मे देश के उत्पादक साधनो का अपव्यय सामाजिक व राजनीतिक तत्वो द्वारा भोग विलास और ऐश्वर्य मे किया गया, जो उत्पादक साधनो की वृद्धि के प्रति प्राय उदासीन रहते थे।[३८७] मुगलो की शासन व्यवस्था का मुख्य आधार जमीदार थे और इनकी शक्ति मूल रूप से कम नही हुई क्योकि जमीदारो के बिना शासन सम्भव नही था।[३८८]

जमींदार

मुगलो की शासन व्यवस्था का मुख्य आधार जमीदार थे। जमीदार फारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है – भू–धारक। जमीदार मध्यस्थो के माध्यम से

---

[३८४] लाहौरी, बादशाहनामा, ११, पृ० ५०५ से ५०७, अतहर अली, दि मुगल नोबिलिटी अण्डर औरगजेब, पृ० ११ से १४

[३८५] भीमसेन, नुस्खा–ए दिलकुशा, पृ १३८ ब तथा १३६ ब, इरफान हबीब, पृ १८०, १८१ तथा १८५ से १८७, अतहर अली, पृ ६४, सतीश चन्द्र पार्टीज एण्ड पालिटिक्स एट दि मुगल कोर्ट, पृ २६ से ३४, हरिशकर श्रीवास्तव, पृ १६३

[३८६] अतहर अली, अध्याय–१, हरिशकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ १६१

[३८७] सतीश चन्द्र, पृ २५

[३८८] वही,

लगान अथवा भू–राजस्व एकत्रित करके सरकार को भेजा करते थे।[३८] इस्लाम के आने पर इन्हे जमीदार कहा गया। भूमि को खण्डो मे बाट दिया जाता था और प्रत्येक जमीदार को एक "सनद" और "नानकार' प्रदान किया जाता था। जमीदार अपनी जमीदारी को बेच सकता था। यदि जमीदार किसी अपराधो में लिप्त पाया जाता था तो उसे दण्डित भी किया जाता था। राजा को यह अधिकार था कि वह जमीदार से उसकी जमीदारी छीनकर किसी अन्य को प्रदान कर दे। सामन्त और सूबेदार इस अधिकार का प्रयोग नही कर सकते थे।[३६०] जमीदारो को भू–स्वामित्व प्राप्त था और वे "आसामी" और "रैयत" कहे जाने वाले कृषको से भिन्न और श्रेष्ठ थे।[३६१]

जमीदार मूलत उस व्यक्ति का परिचायक था जिसके पास भूमि होती थी। परन्तु अब उसका आश्रय उस व्यक्ति से है जो किसी गॉव या नगर में भूमि का स्वामी हो और कृषि कार्य मे संलग्न हो।[३६२] इस प्रकार भू–सुधारक और गॉव अथवा नगर की भूमि पर अधिकार रखने वाले उस व्यक्ति के मध्य भेद किया है और जमीदार शब्द का प्रयोग दूसरे प्रकार के अधिकार युक्त व्यक्ति के लिये किया गया है।[३६३]

वास्तव मे जमीदार शब्द का चलन मुगल काल में आरम्भ हुआ था। इसका प्रयोग स्वायत्त सरदारो, ग्रामीण स्तर के मध्यस्थो और वंशानुगत हितो के अधिकारियो

---

[३८] बर्नार्ड एस० कोहन, पालिटिक्स सिस्टम इन १८ सेन्चुरी इण्डिया, जर्नल आफ दि अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी वाल्युम न० ८२, अक – ३, जुलाई – सितम्बर १९६२, पृ ३१५

[३६०] नोमान, अहमद सिद्दीकी मुगल कालीन भू–राजस्व व्यवस्था, पृ ४५, अतहर अली, पृ १२, १३

[३६१] एस० नुरूल हसन, पृ० ४०, नोमान अहमद सिद्दकी, मुगल कालीन भू–राजस्व व्यवस्था, पृ० ३५, अतहर अली, पृ० १२, १३

[३६२] आनन्द राम मुखलिस, मीरात–उल–इस्तिलाह, पृ० १२२ बी तथा एस० नुरूल हसन, पृ० ४०

[३६३] इरफान हबीब, दि एग्रेरियन सिस्टम आफ मुगल इण्डिया, पृ० १४०

को निर्दिष्ट करने के लिए होता था।[364] मुगल काल मे बनारस मे भी जमीदार शब्द का यही तात्पर्य था।[365]

इस काल मे स्वायत्त सरदारो से लेकर ग्रामीण स्तर तक के अधिकारी विद्यमान थे। अत जमीदारो को श्रेणियो मे विभाजित करने का प्रयास किया गया। मुगल साम्राज्य की अवनति के समय गोशवारा या परगना जमीदार तथा ग्राम स्तर के जमीदार विद्यमान थे।[366] जमीदारो को उनकी जमीदारी के आधार पर तीन मुख्य श्रेणियो मे विभाजित किया गया है – प्रथम – स्वायत्त जमीदार, द्वितीय – मध्यस्थ जमीदार तथा तृतीय – प्राथमिक जमीदार।[367]

स्वायत्त जमींदार:–

स्वायत्त सरदारो की श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले जमींदारों का स्थान सर्वोच्च था। मुगल शासन के अधीन होते हुए भी ये सैनिक एव वित्तीय दायित्वो से मुक्त थे।[368] इनके प्रदेशो मे मुगल मुद्रा ही प्रचलित थी। जो मुगल शासन व्यवस्था के परिचायक थी, दूसरे वे जमीदार थे, जो मुगल सम्राट का आधिपत्य स्वीकार करते थे और वार्षिक उपहार प्रदान करने और प्रान्त के नाजिम की सैनिक सेवा करने की

---

[364] एस० नुरूल हसन, मुगलों के अधीन जमींदार, मध्यकालीन भारत, अक–१, १९८१, पृ० ४०, वी आर ग्रोवर, प्रोसिडिंग्स आफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, प्रेसीडेन्सियल एड्रेस, मेडिवल सेक्शन ०३७, सेशन, कालीकट, १९७६, पृ० १४६, १५० एस० नुरूल हसन, थाट्स आन एग्रेरियन रिलेशन्स इन मुगल इण्डिया, पृ० १६

[365] बी० ए० नारायन, जोनाथन डकन एण्ड वाराणसी, पृ० ५३, के० पी० मिश्रा, बनारस इन ट्रान्जिशन, पृ० ३७, ५८, ५६

[366] विल्टन, ओल्टम, हिस्टारिकल एण्ड स्टैटिटकल मेमायर आफ दि गाजीपुर, डिस्टिक्स, वाल्युम–२, पृ० ४३, ६३

[367] एन० नुरूल हसन, मुगलों के अधीन जमींदार – सम्पादित इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत, अंक–१, १९८१, पृ० ४०

[368] सैयद नजमुल रजा रिजवी, ए स्टडी आफ जमींदार्स आफ ईस्टर्न उत्तर प्रदेश इन एट्टीन्थ सेन्च्युरी शोध प्रबन्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय १९८३, पृ० ५३

शर्तों पर अपने इलाको पर अधिकार रखने की राजाज्ञा प्राप्त कर लेते थे।[३९९] बनारस सरकार मे सैनिक और वित्तीय दायित्वो से मुक्त एव नाम मात्र के लिए मुगल सम्राट के आधिपत्य को स्वीकार करने वाला कोई जमीदार नही था। इस क्षेत्र मे निश्चित वार्षिक पेशकश तथा सैनिक सहायता देने वाले जमीदार थे।[४००]

मध्यस्थ जमींदारः–

प्राथमिक जमीदारों से राजस्व एकत्रित करके उसे स्वायत्त सरदारो या जमीदारो को प्रदान करने का कार्य मध्यस्थ जमीदार करते थे। मध्यस्थ जमीदार अपने क्षेत्र मे कानून और व्यवस्था पर भी नियन्त्रण रखते थे। पैतृक उत्तराधिकार प्राप्त ये जमीदार कभी–कभी अनुबन्ध पर भी अपनी सेवाए प्रदान करते थे। व्यवहारिक रूप से सम्पूर्ण देश किसी न किसी प्रकार के मध्यस्थ जमीदारो के अधिकार क्षेत्र मे आता था।[४०१] अठारहवी शताब्दी मे मुगल साम्राज्य के विघटन का लाभ उठाकर मध्यस्थ जमीदारो ने स्वायत्त सरदार बनने का भी प्रयत्न किया।[४०२] हम देखते है कि बनारस तथा आस–पास के क्षेत्रों मे बहुत से जमीदारो को अर्द्धस्वतन्त्र सरदारो के रूप मे मान्यता प्रदान की गयी है।[४०३]

प्राथमिक जमींदार

तृतीय श्रेणी के प्राथमिक जमींदार भूमि पर स्वयं काश्त करते थे अथवा कृषकों के माध्यम से कृषि कार्य करते थे। इन्हें कृषि योग्य और निवास योग्य भूमि

---

[३९९] नोमान अहमद सिद्दकी, मुगल कालीन भू–राजस्व व्यवस्था, पृ० ३६

[४००] सैयद नजमुल रजा रिजवी, पृ० ५३

[४०१] एस० नुरूल हसन, "जमीदार्स अण्डर दि मुगल्स" सम्पादित राबर्ट एरिक फ्राइकेन बर्ग, लैण्ड कन्ट्रोल एण्ड सोशल स्ट्रकचर इन इण्डियन हिस्ट्री, १६७६, पृ० २४, २५

[४०२] सी० ओ० जी० (गोरखपुर) वाल्यूम नं० १५, फाईल नं १७, सीरियल नं ११, १० मार्च १८२१ ई० पृ० ६३, ६४

[४०३] डंकन रिकार्डस, बस्ती नं० २, रिकार्ड नं० १०, पृ० १८१, विल्टन ओल्टम, हिस्टारिकल एण्ड स्टैटिकल मेमायर पार्ट ११, पृ० १८०, १८१ ई० टी० एट किंसन, स्टेस्टिकल डिस्क्रिप्टिव वाल्यूम ६, पार्ट ११ (गोरखपुर) पृ० ४४३, ४४६

पर स्वामित्व प्राप्त था। इस वर्ग मे अपने हाथ से या किराये के मजदूरों की सहायता से खेती करने वाले कृषक स्वामी ही नही बल्कि एक या अधिक गॉवों के स्वामी भी आते थे।[१०५] प्राथमिक जमीदारो की श्रेणी के अन्तर्गत ग्राम स्तर के जमीदार[१०६] पट्टीदार अथवा थोकदार[१०७] तथा विर्तिया जमीदार[१०८] शामिल थे। जमीदार और कृषक दोनो ही अपने जीवन को समृद्ध बनाने के लिए कृषि पर आधारित थे। कृषि में विस्तार और कृषि कार्य मे लगे लोगो की सख्या मे वृद्धि से जमीदार प्रायः स्वामिभक्ति पूर्ण सेवाए भी प्राप्त करता था। जमीदार स्वय भी कृषको की महत्ता को समझते हुए उनसे सद्‌भाव पूर्ण व्यवहार करता था। यद्यपि कृषको की कमी को ध्यान मे रखकर जमीदार काश्तकारो को भूमि छोडने से रोकने और प्राप्त की हुई योग्य भूमि, छोडने से रोकने और प्राप्त की हुइ समस्त कृषि योग्य भूमि मे खेती करने के लिए बाध्य करने के अधिकार का भी प्रयोग करता था।[१०९] वह कृषको को निवास हेतु ग्राम मे भूमि, खेती के लिए ऋण, भू–राजस्व का सरल किश्तों मे भुगतान और प्राकृतिक आपक्ष में ऋण व तकावी आदि भी प्रदान करता था।[११०] करते थें, परन्तु फिर भी कृषक और जमीदार के माध्य अविश्वास की कावना

---

[१०५] एस० नुरूल हसन, थाट्स आन ....पृ० ३० तथा मुगलो के अधीन जमींदार, पृ० ४६

[१०६] के०पी० मिश्रा, बनारस इन ....पृ० ६६, बी० ए०, नारायन, जोनाथन डकन एण्ड . . पृ० ५५, ५६

[१०७] के० पी० श्रीवास्तव, हिस्ट्री एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन २१६, २२०

[१०८] बनार्ड एस० कोहन, स्ट्रक्चर वेन्ज इन इण्डियन रूरल सोसायटी, १५६६–१८८५ ई० सम्पादित राबर्ट एरिक फ्राईकेन वर्ग, लैण्ड एण्ड सोशल स्ट्रक्चर इन इण्डियन हिस्ट्री, पृ० ६४, ६५, एक दलित जाति का परिवर्ती स्तर, बर्नार्ड एस० कोहन की रिपोर्ट पर आधारित, सम्पादित मेकिम मेरियट, ग्रामीण भारत {अनुवादक हरिश्चन्द्र उत्प्रेती} पृ० ५५, ५६ एस० नुरूल हसन, पृ० ३६, सैय्यद नजमुल रजा रिजवी, दि विर्तिया जमीदार्स आफ इस्टर्न उत्तर प्रदेश, यू०पी० हिस्टारिकल रिव्यू नं० १, अगस्त १८८२, पृ० ५७

[१०९] एस,नुरूल हसन, मुगलों के अधीन जमींदार, मध्य कालीन भारत, अंक–१,१६८१, पृ०–४७ तथा हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ०–१६०,

[११०] सी० ओ० जी० गोरखपुर, वाल्म लं० –१४, फाइल–नं०–१६,सरियल नं०–३४,पृ०–१८०, ११६, कैलेण्डर आफ पर्शियन करसफन्डेन्स वाल्यूम नं०–४, लेटर नं०–६०५, हरिशंकर श्रीवास्तव, पृ०–१६०,

बनी रही। इसका एक मात्र कारण जमीदारो द्वारा कृषको के शोषण की प्रकृति रही।[111] *अठारहवी शताब्दी के पाचवे दशक से ऐसे जमीदार वर्ग का उदय हुआ जो अपने जमीदारो का `माल गुजारी के अतिरिक्त निकटवर्ती जमीदारो या निश्चित क्षेत्र की मालगुजारी वसूल करने का ठेका लेकर सरकार को भू–राजस्व देते थें, ताल्लुकेदार कहे जाने लगे। ताल्लुकेदारी का क्षेत्र विस्तृत होने के बावजूद जमीदार के अधिकार ताल्लुकेदार से अधिक थे। मुगल काल मे ताल्लुकेदार को एक छोटे जमीदार से अधिक नही समझा जाता था।*[112] *इस प्रकार निष्कर्ष के तौर पर हम कह कहते है कि अठारहवी शताब्दी मे बनारस तथा गोरखपुर जौनपुर,गाजीपुर,बलिया आदि के क्षेत्रों मे जमींदार प्रतिष्ठित वर्ग के रूप मे मान्यता प्राप्त कर चुके थे। यद्यपि वे कृषकों के हित के प्रति जागरूक थे।* परन्तु उनके व्यक्तिगत हित कही ज्यादा सर्वोपरि थे। मान प्रतिष्ठा, धन धान्य पूर्ण जीवन के प्रति वे अत्यधिक सचेत रहते हुए कृषकों के हितों की अनदेखी भी करते रहे। जिसके कारण कृषक सदैव शोषित वर्ग के रूप मे ही रहा।

औरगजेब की मृत्यु के बाद यह स्पष्ट हो गया था कि बनारस,गाजीपुर, जौनपुर ,बलिया,गोरखपुर आदि के सरदारो ने स्वतन्त्र रियासतों की स्थापना कर ली थी। विघटन से उत्पन्न परिस्थितियों के कारण स्थानीय सरदार आपस मे सघर्षरत थें। अत: आम जनता के आर्थिक जीवन में भी स्थायित्व की भावना नही के बराबर थी। ऐसे समय में आर्थिक विकास का दायित्व स्थानीय अधिकारियो ओर जमीदारो के उपर आ गया। अतिरिक्त उत्पादन के लाभांश के प्राप्त करने की अदम्य इच्छा ने इन वर्गो को कृषि, उद्योग एवं व्यापार की उन्नति के प्रति आकर्षित किया।

---

[111] के०पी० मिश्र, बनारस इन————पृ०–७२, एफ०एच०फिरार, स्टैस्किल डिस्किप्टिव————— वाल्यूम नं०१३, पार्ट–१ पृ०–१०४

[112] दफ्तर–ए–खालसा, फुतनोत–६बी, १०ए, हरिशंकर श्रीवास्तव, पृ०–१६०, नोमान अहमद सिद्दीकी, पृ०–२५, २६, २७,

कृषि

सरकार की आय का प्रमुख श्रोत कृषि थी। कृषि से प्राप्त राजस्व से जहाँ सरकार को लाभ था, वही स्थानीय जमीदार भी लाभान्वित होते थे। उनकी आय का प्रमुखश्रोत "सीर–" अथवा निज जोत की भूमि होती थी।[५१३] इस भूमि पर किराये के मजदूरो की सहायता से खेती होती थी। प्रत्येक जमीदार अपनी सामर्थ्य के अनुसार अधिक से अधिक भूमि पर स्वय खेती करता था और शेष भूमि खुद काश्त या पाही काश्त रैय्यतो को देकर उनसे कृषि करवाता था।[५१४] भूमि पर कृषि करने वाले मजदूरो की कमी के कारण कृषकों को बसाने के लिए विशेष प्रयत्न करने पडते थे। प्राकृतिक विपत्तियो मे जमीदार अपनी ओर से विशेष सुविधाए प्रदान करते थें।[५१५] उदाहणरणार्थ, राजा बलवन्त सिह ने परगना सैदपुर को भगवन्त राय को "ताहुद" अनुबन्ध पर प्रदान किया। भगवन्त राय ने परगने को आबाद करने एवं कृषि को प्रोतसाहित करने के लिए सैकडो रूपये व्यय किये।[५१६] वीरान तथा जगली भू–भाग मे खेती करने वाले कृषको को विशेष सुविधाएं दी जाती थीं और उनसे राजस्व के रूप मे उपज का केवल पांचवा भाग ही लिया जाताा था ।[५१७] जो कृषक आर्थिक रूप से कमजोर था वहा राजा, सरकार की तरफ से नहर अथवा बाध बनाने की व्यवस्था भी की जाती थी।

---

[५१३] के०पी० मिश्रा बनारस इन——————पृ०–६६,

[५१४] इरफान हबीब, सं० मध्यकाजीन भारत, अंक–२, १९८३ में प्रो० इरफान हबीब काही लेख पृ०–११४, १४२, से १४४,

[५१५] सी०–ओ० जी०– गोरखपुर वाल्यूम नं०–१४, फाइल नं०–१६,सीरियल नं०–३४, १० नवम्बर १८ २८, पृ०–११८, ११९,

[५१६] कैलेण्डर आफ पार्रीयन करसपान्डेन्स, वाल्यूम नं०–७,लेटर नं०–३०,२९,३७२,

[५१७] डंकन रिकार्डस बस्ता नं.–६, रिकार्ड नं०–३१, पृ०–३३५, से ३३५ बस्ता न०–१८, रिकार्ड नं०–९६, २५ मार्च १७९० ई०पू०–१०६ से १०८,

मुगलो की भाति स्थानीय राजाओ ने भी मुक्त हस्त से जमीदारी का वितरण किया बेकार पडी भूमि को कृषि भूमि मे परिवर्तित करने के लिए बडे जमीदारो ने "विर्त" देने की नीति अपना रखी थी।[४१८]

भू—राजस्व

बनारस के राजाओ व जमीदारों ने कृषि को प्रोत्साहित करते हुए राजस्व को भी प्रमुख स्थान दिया। कृषि से प्राप्त होने वाला राजस्व जहाँ राजााओ एवं जमीदारों के लिए लाभप्रद था। वही कृषको को भी सुविधाए प्राप्त होती थी और कृषि को भी विशेष प्रोत्साहन दिया जाता था। राजस्व की प्राप्ति एव वसूली के लिए विभिन्न अधिकारी भी नियुक्त किये गये थें। अगोरी के राजा सुदिस्ट नारायण को निष्कासित करके उसकी जमीदारी पर बनारस के राजा बलवन्त सिंह ने अधिकार करके जमीदारी की व्यवस्था हेतु एक नायब की नियुक्ति की ।[४१९] यह नियम भी प्रतिपादित किया गया कि जो लोग जंगलों को काटकर उसमें खेती करने के इच्छुक होगे, उन्हें नायब की तरफ से आसान शर्तो पर दीर्घकालिक पट्टे प्रदान किये जायेगें। कृषको की फसलो की रक्षा हेतु "बकन्दाज" नियुक्त किये जाते थे। व्यवस्था के अभाव मे फसलो को नुकसान पहुंचने पर उसका समस्त दायित्व "अमीन" नामक अधिकारी पर होता था।[४२०] राजा के अमीन को यह भी आदेश था कि राजस्व की वसूली के लिए कृषकों को अनाज बेचने और खलिहान से राजस्व के रूप में अनाज वसूल करने के लिए मजबूर न किया जाय। कृषकों से उचित व समान किश्तों पर ही राजस्व वसूल करने के निर्देश दिये गये। इस कारण अगोरी महाल परगना का राजस्व पॉच—छः

---

[४१८] माट गुमरी, मार्टिन, ईस्टर्न इण्डिया, वाल्यूम—११, पृ०—५४६, सैयद नजमुल रजा रिजवी, दि विर्तिया जमींदार्स आफ ईस्तर्न उत्तर प्रदेश, "यू०पी० हिस्टारिकल रिब्यू न०—१ अगस्त—१६८२, पृ०—५६, ६२,

[४१९] सैय्यद नजमुल रजा, रिजवी।

[४२०] अकबर—नामा, भाग—३, पृ०—२२६, ४०३, ६०१, निगारनामा—ए, मुन्शी, पृ०—१३६, मीराते अहमदी, खण्ड—१ पृ०—३७४, खुलासत—उल—सियाक, उद्धत—नोमान अहमद सिद्दीकी।

हजार से बढकर अस्सी हजार रूपये हो गया।[४२१] बनारस के राजा बलवन्त सिह ने कृषि को विस्तार हेतु आमिलो और राजस्व अधिकारियो के लिए कठोर नियम बनाए थे। प्रत्येक आमिल को कृषको से समस्त वार्षिक राजस्व वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के पूर्व ही एकत्रित करना अनिवार्य था ताकि वर्षा के प्रथम तीन माह मे कृषक निश्चिन्त होकर खेती कर सके। इस प्रकार अमिल कृषको से वर्ष के नौ महीनो अक्टूबर से जून तक मे ही राजस्व वसूल कर सकते थे।[४२२] कृषको के राजस्व सम्बन्धी भार को हल्का करने के उद्देश्य से उसे दो भागो मे विभाजित करके देने की सुविधा प्रदान की गयी।[४२३] ये नियम थोड़ी कम कठोरता के साथ राजा चेतसिह के समय मे भी लागू रहे। आमिलो को जब राजस्व दर बढ़ानी होती थी तो वे उपकरो को लगाने की नीति अपनाते थे। परन्तु राजा बलवन्त सिंह और राजा चेतसिह के समय कठोरता से आमिलो की इस कार्यवाही पर अंकुश लगाया। समस्त जमीदारो मे "अबवाब" के रूप मे एक रूपया नौ आना प्रति सैकडा की दर से परगनो के प्राचीन राजस्व दर के साथ एकत्रित करने का नियम बना दिया। इस कार्य से खेती के विस्तार के साथ–साथ राजस्व सरलता पूर्वक एकत्रित होता रहा और आम जनता भी सन्तुष्ट रही।[४२४] मुगलो के समाप्त प्राय साम्राज्य में इस काल के राजाओ और जमीदारो के विभिन्न संगठनो के मध्य भूमि हड़पने के लिए संघर्ष भी हुए, जिसका प्रत्यक्ष एव सीधा प्रभाव कृषि पर पडा।[४२५] शक्तिशाली राजाओं ने कृषि की भूमि को वीरान भी बनाया।

---

[४२१] डंकन रिकार्डस, बस्ता नं०–६, रिकार्ड नं०–३१, पृ०–३२३ से ३३५, बस्ता न०–१८, रिकार्ड नं०–६६, २५ मार्च, १७६० ई० पृ०–१०६ से १०८,

[४२२] विल्टन ओल्टम, हिस्टारिकल एण्ड स्टेस्टिकल मेमायर——पार्ट–२, पृ०६४,

[४२३] के०पी० मिश्र, बनारस इन————पृ०–८३,

[४२४] विल्टन ओल्टम, टेनेन्ट राइट एण्ड आक्शन सेल्स इन गाजीपुर एण्ड दि प्राविन्स आफ बनारस, सेक्शन–२ टेनेन्ट राइट इन बनारस, पृ०–१०,

[४२५] गोरखपुर, कलेक्ट्रेट जुडिशियल लेटर्स इश्यूड, सीरीज नं०–१, बस्ता नं० १६६ सीरियल नं० १०२१० नवम्बर १८०६ ई०, लेटर नं० ५, जे० थामसन, रिपोर्ट आफ दि कलेक्टर आफ आजमगढ, १६ दिसम्बर १८३७ ई० प्र०–११ खैरा नं० ३८, मोहम्मद अ०ग० फारुकी, शजहे, शादाब, पृ०–६१

आपसी सघर्ष ने बहुत से जमींदारो की जमीदारी से वचित भी कर दिया। जमींदारी से वचित होने वाले जमीदार अथवा उनके परिवार के सदस्यो ने लूट पाट को अन्तत अपना वस्त्र बना लिया।[४२६] इस अराजकता के कारण कृषि को पहुँचने वाली क्षति को रोकने के प्रयास भी जमीदारो ने किये। इसी प्रकार बनारस के राजा भी अवध के नवाब को निश्चित राजस्व देते रहे परन्तु चेत सिह के विद्रोह के पश्चात बनारस के कृषि राजस्व मे कमी हो गयी।

भू–राजस्व का निर्धारण

भू–राजस्व का निर्धारण मुगल काल में केन्द्र सरकार, जागीरदार और मदद–ए माश भूमि धारको द्वारा किया जाता था।[४२७] बहुत से महल भी खालसा भूमि के रूप मे थे। इन महल का भू–राजस्व दीवान –ए–आला द्वारा नियुक्त "आमिल" और "करोडी" द्वारा एकत्रित करके सरकारी खजाने मे जमा किया जाता था। बहुत से महालो का भू–राजस्व वेतन भोगी मनसबदारो द्वारा अपने आमिलो के माध्यम से एकत्रित कराया जाता था। सभी सूबों मे इस भू–राजस्व का कुछ भाग जरूरतमन्द लोगो, सन्तो, शेखो और सैय्यदो को भी प्रदान किया जाता था। बहुत से परगनो की भूमि मदद–ए –माश के तौर पर दी गयी थी और इस भूमि को धारण करने वाला व्यक्ति ग्राम का भू–राजस्व प्राप्त करने का अधिकारी होता था।[४२८] जामीदारी प्रथा और मदद–ए–माश भूमि ने भारत की ग्रामीण व्यवस्था को अत्यधिक प्रभावित किया।

खालसा भूमि पर सबसे अधिक प्रभाव जागीरदारी परम्परा ने डाला। शाहजहाँ ने अपने शासन काल के प्रारम्भ में खालसा भूमि का भू–राजस्व एक करोड पचास लाख

---

[४२६] तारीख–ए–आजमगढ, पृ० ३२ ए, सैयद अमीर अली रिजवी, सर–गुजश्त–ए– आजमगढ, पृ०–२८ वी, २६ए, गिरधारी, इन्तजाम, एराज–ए आजमगढ, पृ०–१०४ए १०५ ए, नागेश्वर प्रसाद सिंह वर्मा, नाग कौशलेत्तर खण्ड–प्रथम।

[४२७] नोमान अहमद सिद्दीकी, लैण्ड रेवेन्यू————————पृ०–१०२,

[४२८] इलाहाबाद डाक्यूमेन्ट्स, न०–३, १५६, १५७, १६२,

रूपये निर्धारित किया।[४२९] धीरे–धीरे यह बढकर तीन करोड रूपये पहुँच गयी।[४३०] शाहजहॉ के शासन काल के अन्त मे खालसा भूमि के भू–राजस्व लगभग चार करोड रूपये हो गयी।[४३१] औरगजेब के शासन के तेरहवे वर्ष मे यह भू–राजस्व चार करोड रूपये निर्धारित कर दिया गया।[४३२] खालसा भूमि औरंगजेब के शासन काल मे भी बढती रही।[४३३] औरगजेब की मृत्यु के बाद खालसा भूमि कम होने लगी और मुहम्मद शाह के समय मे ये भूमि सरदारो को प्रदान की गयी। मुहम्मद शाह के काल मे अयोग्य सरदारो को भी उॅचा मनसब प्रदान किया गया, जिसके कारण भू–राजस्व मे काफी कमी आ गयी।[४३४] हालॉकि इसके पूर्व दक्षिण के अमीरो को अत्यधिक मनसब प्रदान किये गये थे। जिसका प्रतिकूल प्रभाव परवर्ती शासन काल मे पडा। इस काल मे जागीरों की काफी कमी हो गयी।[४३५] बहादुर शाह के समय तक खालसा भूमि काफी कम हो गयी। औरगजेब शासको की नियुक्ति करने लगे और राजनैतिक वातावरण अस्थिर हो गया। फलस्वरूप समस्त खालसा भूमि इन्हीं मनसबदारो और जागीरदारो के हाथ मे चली गयी।

प्रत्येक ग्राम ,विशेषतया महाल का मूल्याकन किया जाता था। इसके अन्तर मुल्यॉकित सभी प्रकार की आय सम्मिलित थी, जिसे "जमा" अथवा "जमीदामी " कहा जाता था। जमा का मूल्याकन माल–ओ–जिहात, सैर –जिहात तथा सैर–उल–वजूह नामक अधिकारी करते थे। जमा का मूल्याकन महाल के अर्न्तगत आने वाली कृषि योग्य भूमि पर होता था। जिसके द्वारा आय का अनुमान लगाया जाता था। इस बात का भी विशेष ध्यान रखा जाता था कि कृषि योग्य भूमि पर खेती

---

[४२९] शाह नवाज खॉ, मआसिर–उल–उमरा, भाग–२ पृ०–१४८,
[४३०] बादशाहनामा, खण्ड–२, पृ०–७११, मआसिर–उल–उमरा, खण्ड–२ पृ०–८१५,
[४३१] शाड्नवाज खॉ मआसिर–उल–उमरा, खण्ड–२, पृ०–८१४, ८१५,
[४३२] शाहनवाज खॉ, मआसिर–उल–उमरा, खण्ड–२ पृ०–८१३
[४३३] जवाबित–ए–आलमगीरी, फुटनोट–८१ एबी.
[४३४] अव्वाल–उल–ख्यानीन, पृ० १८२, शाबनामा–ए–मुनव्वर–उल–कलाम, फुटनोट ८६ए

हो रही है अथवा नही। इस बात को देखते हुए ही जमा को मूल्याकित किया जाता था।[४३५] जहाँ विभिन्न प्रकार की खेती होती थी वहाँ जमा, जो कि मूल्याकित किया जाता था, और हाल–ए– हासिल जो कि वास्तविक मूल्याकन होता था, के मध्य वर्ष के भू–राजस्व के निर्धारण मे काफी अन्तर पैदा कर देता था । अत भू–राजस्व प्रशासन ने पहले ही जमा के स्थित रिकार्ड दस्दूर–उल–अमल और हाल–ए– हासिल के ऑकडो को अलग–अलग कर दिया। अकबर के समय मे जमा की राशि पॉच सौ करोड दाम तक पहुँच गयी थी।[४३७] जबकि जहॉगीर के समय मे यह सात सौ करोड दाम से भी अधिक हो गयी ।[४३८] शाहजहॉ के शासन काल में जमा और हाल–ए–हासिल के मध्य के अन्तर को दूर करने का प्रयास नही किया गया। परन्तु ये निश्चित है कि जमा प्रत्येक सूबे, सरकार और परगने की निश्चित आय को प्रदर्शित करते थे। जिससे भू–राजस्व के निर्धारण मे सहातया मिली। उत्तर प्रदेश मे अकबर कालीन भू–राजस्व बन्दोबस्त ब्रिटिश कालीन बन्दोबस्त के समान ही था और कुछ बातो मे तो वह पूर्णतया आधुनिक था।[४३९] मुगल कालीन राजस्व नियम कडाई के साथ केवल खालसा भूमि पर लागू थे। अधिकतर भूमि जागीरदार, जमीदारी, मदद–ए–माश तथा वतन जागीर के रूप में थी, जिन पर वे नियम पूर्गतया लागू नहीं थें। भूमि के विभाजन तथा उपज की तालिका में से औसत निकालकर मालगुजारी वसूल की जाती थी। इससे ऐसे किसानों को जिनके पास द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी की भूमि थी, लगान अधिक देना पड़ता था और ये लगान उपज के १/२ से अधिक ही था।[४४०]

२।७।१८ प्रशासन का संगठन

---

[४३५] खाफी खॉं, मुन्तखब्बुल लुबान, खण्ड–२ पृ०–४१३, ४१४,

[४३६] बर्नियर, भाग–२, पृ ५, मोर लैण्ड, पृ १२

[४३७] आइने अकबरी, भाग–२, पृ० ४८

[४३८] बादशाहनामा,भाग–२, पृ० ७११,

[४३९] मोरलैण्ड,द रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन, आफ दि यूनाइटेड प्रोविन्सेज, पृ०–१६, हरिशकर श्रीवास्तव पृ०–१६६

मुगल काल मे भू–राजस्व का निर्धारण और उसका एकत्रीकरण "दीवान–ए–विजारत" नामक विभाग करता था।[४४१] जो कि केन्द्र, सूबे, सरकारो और परगने के स्तर पर कार्यरत था। इस विभाग के मुख्य अधिकारी को दीवान–ए–कुल या वजीर अथवा दीवान–ए–आला के नाम से जाना जाता था।[४४२] औरगजेब के काल मे इस पद को "वजीर–ए–आजम" अथवा "वजीर–ए–मुअज्जम" भी कहा गया।[४४३] वजीर को अपरिमित अधिकार प्राप्त थे। वजीर को भू–राजस्व एकत्रित करने वाले अधिकारियो जैसे–सूबेदार, दीवान, फौजदार ,अमीन और करोडी को नियुक्त करने का अधिकार था। मदद–ए–माश भूमि का प्रबन्ध एव नियन्त्रण वजीर के हाथो मे केन्द्रित था। वजीर को बहुत से राजकीय पत्रो में मदद–उल–महमई और "जुमुदात–उल–मुल्की" भी कहा गया है।[४४४] अन्य कई अधिकारी जैसे मीर–ए–सम्मन, बख्शी, मुशर्रिफ, तहवीलदार और जमीदार उसके अधीन रहते थे।[४४५] वजीर को राजकीय कार्यो से सम्बन्धित महत्वपूर्ण अभिलेखो पत्रों आदि पर अपने हस्ताक्षर करने पडते थे।[४४६] भू–राजस्व मंन्त्रालय के अन्तर्गत "दीवान–ए–खालसा" "दीवान–ए–तन" "मुस्तफी " और" दारूल–इंशा" नामक विभाग थें जो आपकी सामजस्य से भू–राजस्व व अन्य प्रकार के राजस्व को नियंत्रित व एकत्रित करने के

---

[४४०] हरिशकर श्रीवास्तव पृ० १६६,

[४४१] कुरैशी दि एड मिनिस्ट्रेशन आफ दि सन्तनत आफ देहली, पृ०–८४, ८५

[४४२] हुसेन हसन, सेन्ट्रल स्ट्रक्चर आफ दि मुगल एम्पायर पृ० १४८, नोमान अहमद सिद्दकी, पृ० ६१

[४४३] खाफी खॅा, मुन्तखब्बुल लुबान,भाग–२ पृ०२३५, शाहनवाज खॉ, मआसिर,उल–उमारा, खण्ड–१ भाग १ पृ० ३१० ३१३ भाग–२, पृ०५३१, ५३२, ५३३, आलमगीरनामा, पृ०–८३२, ८३७,

[४४४] दस्तूर–उल–अमल–ए–आलमगीरी,फुटनोट–१७३ए,

[४४५] दस्तूर–उल–उमल–ए–आलमगीरी,फुटनोट–११२ए,

[४४६] दस्तूर–उल–उमल–ए–आलमगीरी, फुटनोट–१४४बी, १४५, जवाबित–ए–आलमगीरी, पृ०३१, ३०बी, ३७ बी १४७,

कार्य मे सलगन थे।[४४७] औरगजेब के काल में फजल खान, जफर खॉ और असद खॉ जैसे योग्य वजीर थे। जिन्हे सैन्य एव प्रशासनिक अनुभव प्राप्त था और इन्होने प्रशासन मे अपनी विश्वसनीयता और कार्य क्षमता को प्रदर्शित किया था। लेकिन औरगजेब ने वजीर द्वारा सम्पादित कार्यो मे अपनी व्यक्तिगत रूचि प्रर्दशित की और समस्त राजकीय कार्यो पर नियन्त्रण रखा।[४४८] बहादुर शाह के राज्याभिषेक के साथ ही वजीर की स्थिति मे परिवर्तन आया। वजीर ने प्रशासन पर अपना सुदृढ नियंन्त्रण बनाया। यह बात मुनीम खान, जुल्फिकार खान, अब्दुला खॉ और मुहम्मद अमीन खॉ की नियुक्ति से सिद्ध हो जाती है।[४४९] उत्तर मुगल काल मे शासक और शासन की स्थिरता वजीर पर निर्भर हो गयी।

जहॉदार शाह के वजीर जुल्फिकार खान ने अपना समस्त कार्यभार दीवान–ए–तन सभाचन्द्र को सौप दिया था। फरूखसियर के काल मे दीवान और सदर की नियुक्ति को लेकर शासक एवं वजीर मे मतभेद हो गये।[४५०] फरूखसियर अपने शासन काल मे वजीर के हाथो कठपुतली बना रहा।

निजामुलमुल्क ने १७२१ ई० मे वजीर का पद ग्रहण किया और सशक्त रूप से इस पद को गौरवन्वित किया। उसने प्रशासन में भू–राजस्व सहित बहुत से सुधार भी किये।[४५१] १७२३ ई० मे वजीर पद से निजामुलमुल्क के हटने के उपरान्त वजीर की स्थिति कमजोर हो गयी। वह अपने विभाग से सम्बन्धित कार्यों के प्रति उदासीन और अक्षम हो गये। जुलाई १७२३ ई० में क[illegible]दीन खॉ ने वजीर का पद सम्भाला

---

[४४७] दस्तूर–उल–अमल–ए– आलमगीरी, फुटनोट, १४१ए, १४६ए, जवाबित–ए–आलमगीरी, फुटनोट–८६बी, ६३ए।

[४४८] मआसिर–उल–उमरा, खण्ड १, अंक १, पृ० ३५५

[४४९] इर्विन, लेटर मुगलस।

[४५०] तजकिरात –उल–मुल्क, फुटनोट–१२२ए,

[४५१] खाफी खॉ , मुन्तखब्बुल–लुबाब, भाग–२, पृ० ६४८, गुलाम हुसैन ताबातबाई, सियार–उल–मुन्तखाबिरीन, पृ० ४५५, ५४६, शिवरास लखनवी,शाहनामा–ए–मुनव्वुर–ए–कलाम,उद्त,नोमान अहमद सिद्दीकी पृ० ८६६

और वह लगभग बीस वर्षो तक वजीर के पद पर रहा।[४५२] अत ये स्पष्ट है कि शासक और वजीर के मध्य विवादों ने उत्तर मुगल कालीन भारत की राजस्व व्यवस्था को अत्यधिक हानि पहुँचायी। शासक कमश एव कमिक रूप से उत्तर मुगल काल मे अक्षम एव अयोग्य सिद्ध हुए जो वजीर पर नियन्त्रण स्थापित न कर सके। वजीर सदैव अपनी भूमिका के प्रति सशकित रहे फलत अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए कोई प्रयास अधूरा नही छोडा। परवर्ती युग मे ऐसी स्थिति आ गयी कि अधिकारियो की नियुक्ति उनकी बर्खास्तगी मनसब का नियन्त्रण ,सैनिको का वेतन आदि बांटने की व्यवस्था अब पेशकारों और लिपिको के हाथ मे आ गयी।[४५३] अकबर के काल मे प्रान्तीय भू-राजस्व व्यवस्था को सुदृढ बनाने के उद्‌देश्य से दीवान-ए-सूबा की नियुक्ति की गयी थी जो केन्द्रीय भू-राजस्व विभाग के सीधे प्रतिनिधि के रूप मे कार्य करता था।[४५४] बाद मे इन्हे सूबेदार दीवान-ए-आला के माध्यम से सम्राट के प्रति उत्तरदायी था। भू-राजस्व से सम्बन्धित समस्त कागज वह वजीर के सम्मुख प्रस्तुत करता था।[४५५] दीवान-ए- सूबा की नियुक्ति वजीर की संस्तुती पर होती थी।

दीवान-ए-सूबा का कार्य अपने क्षेत्र के परगनो की कृषि योग्य भूमि का प्रबन्ध करना था। वह इस कार्य में आमिल और फोतदार की सहायता लेता था। परगनों में काजी, मुफ्ती, कानूनगो और चौधरी की नियुक्ति सीधे केन्द्र सरकार द्वारा की जाती

---

[४५२] मुन्तखाब्बुल लुवाब,भाग-२ पृ० ६५७, ६७३, मआसिर-उल-उमरा। भाग-१, पृ० ३५८, ३६१

[४५३] तजकिरात-उल-मुल्क, फुटनोट- १३२ए

[४५४] हरिशंकर श्रीवास्तव, पृ० १००

[४५५] अकबर नामा, भाग-२ पृ० ६७०,इब्ने हसन दि सेन्ट्ल आफ दि मुगल एम्पायर, पृ०-१६५ शरण,प्राविन्शियल गवर्नमेन्ट , पृ०-१८६ , हरिशंकर श्रीवास्तव पृ० १००

थी। ये आमिल के कार्यों पर नियन्त्रण रखते थे।[४५६] समस्त ग्रामीण प्रपत्रो की देखभाल पटवारी करता था।

राजकीय करो की वसूली के लिए सूबे को सरकार, परगना और महाल में बॉटा गया था। बहुत से गॉवो का भू–राजस्व एक साथ निर्धारित किया जाता था, ये कम या अधिक भी हो सकता था। राजकीय कर की इस अनुमानित भू–राजस्व इकाई को महाल कहा जाता था। बहुत से परगनो को मिलाकर सरकार बनती थी और सरकार के उस भू–राजस्व का प्रशासन दीवान–ए–सरकार के अधीन था। सूबे को अन्य छोटी इकाइयो मे विभाजित किया गया था जिसे फौजदारी कहते थे और फौजदारी का अधिकारी फौजदार होता था।[४५७]

बहुत से स्थानों पर फौजदारी को चकला भी कहा गया। फौजदार के अधीन सैन्य, न्यायिक और भू–राजस्व का प्रशासन था।[४५८] परगने के अन्तर्गत भू–राजस्व का प्रशासन आमिल[४५९] और अमल गुजार नामक अधिकारी के अन्तर्गत था। आमिल के अधीन मुख्य अधिकारी "वितिकची" था।[४६०] परगने में दो अन्य अधिकारी थे – "कारकुन" और "खासनवीस"।[४६१] परगने में "खिजानदार" नामक अधिकारी एकत्रित राजस्व को सुरक्षित रखने का कार्य करता था।[४६२] प्रत्येक परगने का अपना कोषागार था और उसका मुख्य अधिकारी खिजानदार था। कोषागार की सुरक्षा के लिए विशेष

---

[४५६] दस्तरूल–उल–आमिल–ए–बेकास, फुटनोट–३७६, ३८६, ४१६, ४२६, ४२ए, ४३एबी, निगार नामा–ए–मुन्शबी, पृ ८३, ६०, ६१, १४०

[४५७] आइने अकबरी, जैरेट एव सरकार, भाग २, पृ० ४१४ कुरैशी, दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ द मुगल एम्पायर, पृ० २३१ सरकार, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० ६४, ६५

[४५८] फौजदारी एण्ड फौजदार्स अण्डर दि मुगल्स, मेडिवल इण्डिया क्वाटरली खण्ड–४, १९६१, पृ० २२ से ३५

[४५९] कुरेशी, इस्लामिक कल्चर, खण्ड–१६, १९४२, पृ० ८७ से ६६, कुरेशी, द एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० २३१ से २३३ आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव, पृ० २३१ से २३३

[४६०] पी० शरण, प्रोविन्शियल गवर्नमेन्ट आफ दि मुगल्स, पृ० २८४

[४६१] आइने अकबरी, भाग–३, पृ० ३८१

[४६२] आइने अकबरी, जैरेट एवं सरकार, भाग–२, पृ० ५२, ५३ हरिशंकर श्रीवास्तव, पृ० ११६

प्रबन्ध किये जाते थे। इस कार्य हेतु "दरोगा–ए–खजान" नामक अधिकारी नियुक्त किया गया था। इसी प्रकार परगना कानूनगो[४६३] चौधरी[४६४] नामक अन्य भू–राजस्व अधिकारी थे, जो राजस्व प्रशासन मे कार्यरत थे।

अमीन[४६५] पटवारी[४६६] और मुकद्दम[४६७] मुगल प्रशासन के अन्तर्गत भू–राजस्व एकत्रित करने वाले अन्य अधिकारी थे।

खालसा भूमि

मुगल सम्राट के अन्तर्गत आने वाले महाल और परगनो की व्यवस्था मनसबदारो को सौपी गयी थी। इस कार्य हेतु मनसबदारो को प्रशासन की ओर से नगद वेतन प्रदान किया जाता था। साम्राज्य के सभी सूबो मे शेष बचे परगने और महाल के अन्तर्गत आने वाली भूमि खालसा भूमि कहलाती थी। इसे खालसा–शरीफा भी कहा जाता था। इस भूमि से प्राप्त समस्त आय सरकारी कोष मे जमा की जाती थी। खालसा भूमि से प्राप्त आय स्थानीय प्रशासन के मद मे खर्च की जाती थी।[४६८] खालसा भूमि से प्राप्त आय मुगल काल में काफी सन्तोष जनक थी।[४६९] मुगलो के अधीन खालसा भूमि विभिन्न शासको के काल में कम या अधिक होने लगी। जहागीर के समय मे राजस्व प्रशासन भ्रष्ट हो गया था। अतः उस काल में खालसा भूमि से प्राप्त आय मे लगभग पचास लाख रूपये की गिरावट आई। लेकिन शाहजहॉ के काल में खालसा भूमि पर ध्यान दिया गया। इस कारण इससे प्राप्त आय में काफी वृद्धि

---

[४६३] सिद्दीकी, लैण्ड रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० ८७, हरिशंकर श्रीवास्तव, पृ० १२०

[४६४] सिद्दीकी, पृ० ६०, ६१, इरफान हबीब, एग्रेरियन सिस्टम, पृ० २६१ से २६४ तथा हरिशकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ० १२१

[४६५] कुरैशी, इस्लामिक कल्चर, खण्ड–१६, १६४२, पृ० ८७ से ६६, कुरैशी, द एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० २३१ से २३३

[४६६] हरिशकर श्रीवास्तव, मुगल शासन प्रणाली, पृ० १२३

[४६७] इरफान हबीब, एग्रेरियन सिस्टम, पृ० १३३

[४६८] निगार–नामा–ए–मुन्शावी, पृ० १४८

[४६९] वक्का–ए–अजमेर, पृ० ६५

हुई।[४७०] शाहजहॉ के काल मे खालसा भूमि से प्राप्त कुल जमा तीन करोड रूपये हो गया।[४७१] शाहजहॉ के शासन काल के अन्त तक यह "जमा" चार करोड रूपये तक पहुॅच गयी।[४७२]

औरगजेब की मृत्यु के बाद खालसा भूमि काफी कम हो गयी। मुहम्मदशाह के शासन काल मे खालसा महाल प्रमुख दरबारियो को प्रदान कर दी गयी। मुहम्मदशाह के समय मे अत्यधिक मनसब प्रदान किये जाने के कारण जागीरो की कमी पड गयी। स्पष्टत. जिसका प्रभाव क्षालसा भूमि पर पड़ा और यह अत्यधिक कम हो गयी।

मदद–ए–माश

ऐसी भूमि जो बीमार व्यक्तियों, असहाय, सन्तो, धार्मिक व्यक्तियो, धार्मिक व शैक्षिक सस्थानो, निराश्रित विद्यार्थियो को प्रशासन द्वारा प्रदान किया जाता था और ये भूमि कर रहित होती थे। इसे मदद–ए–माश या मिल्क कहा जाता था।[४७३]

मदद–ए–माश को एक प्रकार का ऋण कहा जा सकता है, न कि भूमि पर पूर्ण स्वामित्व। यह सुविधा सम्राट द्वारा व्यक्ति विशेष को प्रदान न कर बल्कि उसकी आने वाली पीढ़ियो के लिए भी प्रदान किया जाता था। इस प्रकार के आदेश औरगजेब ने १६६० ई० मे जारी किये थे। व्यक्ति की मृत्यु के बाद जब भूमि उसके पुत्र अथवा पौत्र को प्रदान की जाती थी।[४७४] यदि पत्नी जीवित है तो उसे मदद–ए–माश भूमि का स्वामित्व प्रदान किया जाता था। विवाहित पुत्रियो का इस भू–सम्पत्ति मे कोई हिस्सा नहीं होता था।[४७५] यह भूमि ऐसे भी लोगो को प्रदान की

---

[४७०] मआसिर–उल–उमरा, खण्ड–२, पृ० १४८
[४७१] बादशाहनामा, खण्ड–२, पृ० ७११, ७१२, मआसिर–उल–उमरा, खण्ड–३, पृ० ८१५
[४७२] मआसिर–उल–उमरा, खण्ड–२, पृ० ८१४, ८१५
[४७३] आइने अकबरी, भाग–१, पृ० १४१, इण्डियन इकनामिक एण्ड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, वाल्युम.१, अंक–१, यू० एन० डे, मुगल गवर्नमेण्ट, पृ० १४३, १४४, हरिशंकर श्रीवास्तव, पृ० १६४
[४७४] इलाहाबाद डाक्यूमेन्ट्स, पृ० १६७, १६६, १७३, १७५, १५४
[४७५] इरफान हबीब, पृ० ३०६, इलाहाबाद डाक्यूमेण्ट, ११, पृ० ५३ से ६५

जाती थी जो उच्च कुल से सम्बन्धित थे परन्तु कालान्तर मे जिनकी आर्थिक स्थिति एव सामाजिक स्तर काफी कम हो गया और वे अन्य कोई कार्य अथवा व्यापार आदि नही करते थे।[४७६] मदद–ए–माश भूमि का समय–समय या निश्चित समयावधि पर प्रमाणित किया जाता था। ये कार्य सदर का कार्यालय करता था। जो व्यक्ति भूमि धारण करता था उसे प्रमाण गवाहों सहित देना पड़ता था कि भूमि उसके अधिकार में है और वह उसका सही प्रयोग कर रहा है। सदर के सन्तुष्ट होने पर मदद–ए–माश धारक को नई सनद प्रदान की जाती थी जो कि उसके स्वामित्व की पुष्टि करता था।[४७७] मदद–ए–माश भूमि रो सम्बन्धित एक अलग कार्यालय था जो कि सदर या सद्र–ए–सुदूर के अधीन था।[४७८] सद्र–ए–सुदूर पद के चयन मे व्यक्ति की व्यापारिक बुद्धि और उसके अच्छे प्रबन्धक होने के गुणो की महत्ता दी जाती थी।[४७९] मुगल फरमानो के अनुसार यह भूमि गैर मुसलमानो या अवकाश प्राप्त अधिकारियो को भी दी जाती थी।[४८०] मदद–ए–माश के अनुरूप ही "अलतमगा" नाम से जागीरे दी जाती थी जो कि वशानुगत होती थीं। कभी–कभी ये धार्मिक व्यक्तियो को भी प्रदान की जाती थी।[४८१]

इजारा

---

[४७६] आइने अकबरी, भाग–१, पृ० १४०, १४१

[४७७] इलाहाबाद डाक्यूमेण्ट, न० २, पृ० १६५, १६८, १७४, १७६ हरिशंकर श्रीवास्तव, पृ० ७६

[४७८] नोमान अहमद सिद्दीकी लैण्ड रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० १२८

[४७९] आइने अकबरी, भाग–१, पृ० १४०

[४८०] सैयद नुरूल हसन, थाट्स आन एग्रेरियन सिस्टम, पृ २१, तथा हरिशकर श्रीवास्तव, पृ० १६४

[४८१] तुंजुके जहागीरी, रोजर्स, भाग–१, पृ० २३, इरफान हबीब, एग्रेरियन सिस्टम, पृ० २६०, २६१ कुरैशी, दि एड्मिनिस्ट्रेशन आफ दि मुगल एम्पायर, पृ० १५८

इजारा को भू–राजस्व कृषि भी कहा गया है। अठारहवी शताब्दी के आरम्भ के पचास वर्षों मे इजारा प्रथा का तीव्र गति से विकास हुआ। भू–राजस्व की प्राप्ति हेतु ये कृषि खालसा भूमि मे ही की जाती थी। इजारा ने जागीरदारो को जन्म दिया, जो अपनी आवश्यकताओ और हितो के प्रति सचेत थे। मुगल काल मे खालसा भूमि मे भू–राजस्व कृषि को अमान्य कर दिया गया था और ये कुछ ही भागो में प्रचलित थी। लेकिन बहादुर शाह की मृत्यु के बाद इजारा प्रथा का तेजी से विकास हुआ और समस्त भू–राजस्व की प्राप्ति का साधन इसे मान लिया गया। इस प्रथा का विकास सत्रहवी शताब्दी के अन्त से आरम्भ हो गया और इसने मध्यस्थो के एक नए वर्ग को जन्म दिया जिसने कि भू–राजस्व एकत्रित करने वाली एक नई सस्था को जन्म दिया। इस नये प्रकार के वर्ग को जमीदार कहा गया। इजारा एक प्रकार का समझौता था जिसके अन्तर्गत जमीदार अथवा इजारादार को एक निश्चित धनराशि प्रशासन को देना पडता था। प्रशासन को दिया गया यह भू–राजस्व इजारादार अपने महाल या परगने मे कृषि कार्यों में सलग्न कृषको से वसूल करता था। इस प्रकार की वसूली के द्वारा जमीदार अधिक से अधिक भू–राजस्व कृषको से वसूल करने का प्रयास करता था। अपने विलास पूर्ण जीवन और व्यक्तिगत हितो ने जमीदारों को क्रूर बना दिया। जिसका विपरीत प्रभाव कृषि और कृषकों पर पडा। इजारादारो की आय का प्रमुख साधन इजारा से प्राप्त भू–राजस्व ही रहा और इस भू–राजस्व को प्राप्त करने के लिए विभिन्न अधिकारियो की नियुक्ति की गयी।[४८२]

राजस्व के अन्य स्रोत

[४८२] बाला–दस्ती रिसालाब–ए–जिरात पृ० १३६

मुगल काल मे भू–राजस्व के अतिरिक्त अन्य प्रकार के भी कर लगा कर राजस्व की प्राप्ति की जाती थी। इन करों मे प्रमुख मार्ग कर, चुगी कर, जजिया, तीर्थयात्रा कर और विदेश से आयातित वस्तुओं पर कर इत्यादि थें।

मार्ग कर

मुगलो के राजस्व का प्रमुख स्रोत मार्ग कर था। ये कर आन्तरिक व्यापार एव वाह्‌य व्यापार मे सलग्न व्यक्तियों पर आवागमन के सन्दर्भ में लगाया गया था। मुगल भारत में ये कर सामान्य रूप से जारी रहा। हालॉकि समय–समय पर विभिन्न शासको ने इन करों में छूट भी प्रदान की। लेकिन ये छूट स्थायी रूप से नही प्रदान की गयी।[४८३] मार्ग कर के सम्बन्ध में सामान्य एवं व्यवहारिक बात यह थी कि व्यापारी एक सूबे से दूसरे सूबे माल पहुँचायेगे। जब ये सूबे मे प्रवेश करेंगे और राज्य द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का लाभ उठायेगे, जैसे सड़कें सराय, पुल इत्यादि। इस कारण राज्य अपना व्यय इन करो के माध्यम से प्राप्त करते थे।

मार्ग कर (राहदारी) १० अप्रैल १६६५ ई० मे औरगजेब के आदेश के अनुसार मुसलमानो पर २•३० प्रतिशत और हिन्दुओ पर ५ प्रतिशत मार्ग कर लगाया। ६ मई १६६७ ई० के बाद मुस्लिम आयातको को मार्ग कर से पूर्णतया छूट दे दी गयी।[४८४] मार्ग कर वस्तुओं की महत्ता के अनुसार लगाये जाते थे।[४८५] मुस्लिम आयातको ने मार्ग कर में पूर्ण छूट का लाभ उठाते हुए हिन्दुओ से कम धन लेकर उन्हे मार्गकर से बचा लेते थे और हिन्दुओं के व्यापार को प्रोत्साहित करते थे। इस कारण प्रशासन को राजस्व में काफी हानी भी होती थी।

---

[४८३] जगदीश एन० सरकार, जे० वी० आर० एस० पटना – १९५१, खण्ड–३८, कस्टम हाउस इन बंगाल एण्ड बिहार इन १६७०–७१ (मार्शल की डायरी पर आधारित, पृ० ६५)

[४८४] चटर्जी, पृ० १०२

[४८५] इरफान हबीब, पृ० ६७

जजिया

तुर्की शासन के आरम्भ से ही ये कर हिन्दुओ और मुसलमान नही थे, के ऊपर लगाया गया था। यह कर अकबर के शासन काल तक जारी रहा। जजिया हिन्दुओ को मुस्लिम राज्य मे प्राप्त सुरक्षा के बदले मे लिया जाता था। औरगजेब ने अपने शासन काल मे बहुत से ऐसे करों को वापस ले लिया जो शरीयत के विरूद्ध थे, परन्तु जजिया को उसने लागू किया। दक्षिण अभियान जागीरो की कमी और शासन के बढते घाटे ने औरंगजेब को १६७८ ई० में जजिया लगाने पर पुन. मजबूर किया। २ अप्रैल १६७६ ई० को यह कर ईसाइयो, यूरोप के लोगो, आर्मेनियन व हिन्दुओ पर लागू किया गया। विरोध के बावजूद भी इन्हे कुरान के नियमों के अनुसार छूट नहीं दी गयी।[४८६]

जकात

भारत में यह कर धार्मिक कर के रूप मे नही बल्कि आयात कर के रूप मे लिया जाता था और यह मुसलमानो से लिया जाने वाला कर था। यह कर मुसलमानों से उनकी आय का १/४० वें हिस्से के रूप मे लिया जाता था।[४८७]

जिस प्रकार गैर मु[illegible] से जजिया की वसूली की जाती थी, उसी प्रकार उसी के समानान्तर मुसलमानो से भी एक धार्मिक कर वसूल किया जाता था, जिसे जकात कहते थे। जकात के रूप मे वसूल की गयी राशि मस्जिदो, मदरसों के रखरखाव जैसे धार्मिक कृत्यों पर ही व्यय की जा सकती थी। इनमें फकीर जकात एकत्र करने वाले कर्मचारी, कर्जदार, धर्मयुद्ध (जिहाद) में भाग लेने वाले तथा यात्री

---

[४८६] भीमसेन, नुस्खा–ए–दिलकुशा, पृ० – ७४ बी, मनूची, खण्ड–२, ईश्वरदास, औरंगजेब, खण्ड–५, पृ० २५७, तथा यू० एन० डे, मुगल गवर्नमेण्ट, पृ० १३३ से १३५

[४८७] टी० पी० ह्यूम्स, डिक्शनरी आफ इस्लाम, पृ० ६६६, ७००, एन० पी० अथनाइड्स, मुहम्मडन थ्योरीज आफ फाइनेन्स, पृ० २०७, २६७, ३१८, आर० पी० त्रिपाठी, सम आस्पेक्ट्स आफ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० ३४५, हरिशंकर श्रीवास्तव, पृ० १२६, १३०

शामिल थे।[४८८] अपने शासन के अन्त मे इस कर को वसूल करने का आदेश औरगजेब ने पुन दिया था।[४८९]

---

[४८८] टी० पी० ह्यूम्स, डिक्शनरी आफ इस्लाम, पृ० ६९९, ७०० हरिशकर श्रीवास्तव, पृ० १२९, १३०

[४८९] कुरेशी, द एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि मुगल एम्पायर, पृ० १४७, जहीरूद्दीन फारूकी, औरगजेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ० १६४, १७०, ४७९

भाग—२

(आर्थिक . तिहास)

मध्य युग मे बनारस की औद्योगिक सरचना और व्यापार के सम्बन्ध मे संकलित तथ्यो का विश्लेषण किया जा रहा है। बनारस की प्राचीन ऐतिहासिक सरचना के कारण इस नगर के निवासियों ने विकास कर लिया था। इसके फलस्वरूप यह नगर अपनी परम्परागत सास्कृतिक और व्यावसायिक निरतरता बनाये रखने मे भी सफल रही। इस परिप्रेक्ष्य मे डॉ० मोती चन्द्र का यह कथन उल्लेखनीय है कि "अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण बनारस का बहुत प्राचीन काल से व्यापारिक महत्व रहा है। उसके तीर्थ तथा धार्मिक क्षेत्र बनाने के प्रधान कारण निःसन्देह वहॉ के व्यापारी रहे होंगे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत के लोग धर्म प्रचार में व्यापारियो का, चाहे वे हिन्दू, बौद्व अथवा जैन कोई भी हो, उनका योगदान रहा। बनारस में अभी कुछ समय पहले तक व्यापारियो के बल पर ही धर्म प्रचार और सस्कृत शिक्षा चल रही थी। धर्म, शिक्षा और व्यापार से बनारस का घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण इस नगर का इतिहास केवल राजनीतिक इतिहास न रहकर एक ऐसी सस्कृति का इतिहास बन गया, जिससे भारतीयता का पूरा दर्शन होता है।———बनारस उस सभ्यता का सर्वदा परिपोषक बना रहा है, जिसे हम भारतीय सभ्यता कहते हैं और जिसके बनाने में अनेक मत—मतान्तर और विचारधाराओं का सहयोग रहा है।"[१] अगर बनारस में व्यापार न होता तो यह नगर केवल एक आश्रम बन कर रह जाता और इसमें उस नागरिक संस्कृति का अभाव होता।[२]

---

[१] डॉ० मोती चन्द्र, का इ० पूर्वोक्त, पृ०—६

[२] वही पृ०—११

बनारस के इस व्यापारिक महत्व के अनेक साहित्यिक और पुरातात्विक प्रमाण मिले है। बौद्ध साहित्य मे बनारस के व्यापारियो की प्रशंसा की गयी है जिसके लिए बनारस आज भी विख्यात है और उसके व्यापार के प्रधान अग "काशी के बने कपडो" और "चन्दन" के अनेक उल्लेख आये है। जहॉ तक रेशमी वस्त्रो के उत्पादन का सम्बन्ध है, बनारस अपनी पुरानी परम्परा को बनाये रखा है। यहॉ के व्यापारियो ने हमेशा देश, समाज और शिक्षा की उन्नति मे सहयोग दिया है।[3]

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने "काशी का इतिहास"[4] की भूमिका में लिखा है कि"गंगा तट के इस घ्रुव बिन्दु पर बसने के कारण काशी की जन्म कुडली मे दो ग्रह बडुत उच्च के पड़ गये, एक व्यापार या अर्थ समृद्धि के लिये और दूसरा धर्म के लिये। काशी मध्यवर्ती जनपद था। उसके पीछे कोसल और वत्स जैसे महाजनपद थे, जो कृषि और ग्रामोधोग से परिपूर्ण थे, और उसके सामने के ऑगन मे विदेह और मगध के दो बडे जनपद थे। जहॉ के अन्न कोठारों की अतुलित शशि काशी की ओर बहती थी। उत्तर की ओर श्रावस्ती और दक्षिण की ओर कोसल प्रदेश भी काशी के साथ सदा हाथ मिलाये रहते थे। काशी मे गंगा पर नावो के ठट्ठे जुडे रहते थे, और यहॉ के साहसी महानाविक गंगा के तो राजा थे ही, ताम्रलिप्ती से आगे बढकर पूर्व के महोदधि समुद्र को पार करने के खतरा को भी महसूस नही करते थे। जैसा कि संस्कृत और प्राकृत की कहानियों में उल्लेख मिलता है कि काशी के व्यापारिक सूत्र द्वीपान्तरो (वर्तमान हिन्देशिपा) के साथ मिले हुए थे।

इसका एक पक्का प्रमाण काशी का 'सप्तसागर' मुहल्ला है। यहॉ अभी तक सप्त समुद्रों के कूप और मंदिर है जहॉ 'सप्तसागर' महादान और पूजा आदि होता है। गुप्त युग में जब भारत का विदेशी व्यापार बहुत बढ़ा तथा प्रत्येक महानगर में इस प्रकार के स्थान बन गये, जहॉ समुद्र यात्रा से लौटने वाले व्यापारी उपार्जित धन

---

[3] पूर्वोक्त,

[4] वही, पृ०–१३–१७ (भूमिका, वासुदेव शरण अग्रवाल)

का सदुपयोग 'सप्तसागर' नामक महादान के रूप मे करते थे। अब तक खोज करने पर ऐसे स्थानो के अवशिष्ट प्रमाण हमे मथुरा, प्रयाग, काशी, पाटलीपुत्र और उज्जैन मे मिले है। काशी मे जो कोटय्यसुपति व्यापारियो का प्रमुख सगठन था। उसे निगम कहते थे। वह सर्राफे जैसा सगठन था। जिसके सदस्यों की संख्या निश्चित होती थी, और जिनका चुनाव सर्वसम्मति से होता था।[५] कालीदास ने भी गुप्तकाल के 'नैगम महाजनो का उल्लेख किया है। राजघाट से लगभग छ· मुहरे निगम संस्था की प्राप्त हुई है। उन पर एक बडे कोठार (कोष्ठागार) का चिन्ह अकित है जिसे बनारस के निगम ने अपनी मुद्रा के लिये चुना था। तीन मुहरों पर भरत, श्रीदत्त और शौयध्यि, ये नाम अकित है। इससे ज्ञात होता है कि ये निगम के तत्कालीन सभापति थे जिन्हे–'महाश्रेष्ठी' भी कहा जाता था। निगम सभा के शेष सदस्य केवल महाजन या श्रेष्ठी कहे जाते थे। गुप्त काल मे महाजनों को बहुत ही महत्वपूर्ण और सम्मानित स्थान प्राप्त था। राजा के समान इन्हें भी हाथी की सवारी करने का अधिकार था।[६]

इस प्रकार विभिन्न प्रकार के कुटीर उद्योगों की श्रेणियां प्राचीन काल से ही बन गयीं थीं। उनमें से दो की मुहरें मिली है, जिसमें एक पर ग्वाले या अहिरों की श्रेंणी, जिनकी बड़ी जनसंख्या अभी तक काशी जनपद की शोभा है (गवायक श्रेणी) और दूसरी 'वाराणस्थारण्यक श्रेणी' अर्थात बनारस के चारों ओर बसने वाली जंगली जातियो का सगठन जो शहर के जीवन के लिये उपयोगी बहुत से धन्धो मे लगी हुई थी। लकड़ी, काटना, कोयला फेंकना, टोकरी पत्तल बनाना आदि कितने ही उद्योग इन्ही के सहारे आज भी चलते हैं। इनके अतिरिक्त और भी शिल्पियों की श्रेणियां काशी में रही होगीं। उनकी मुहरें नहीं मिली पर उनकी कारीगरी के लिखित प्रमाण हमारे सामने हैं, जैसे कुम्भकार श्रेणी, जिनके बनाये हुए मिट्टी के भाड़ों और खिलौनो के भंडार भारत कला भवन (का०हि०वि०वि०) वाराणसी में भरे पडे हैं, मणियो को

---

[५] पूर्वोद्धत

[६] वही पूर्वोक्त (भूमिका) पृ०–१४,

तराशकर भॉति–भॉति की गुरिया बनाने वालो की मणिकार श्रेणी जिनके बनाए हुए कई सहस्त्र मनके राजघाट की खुदाई के फलस्वरूप प्राप्त हुए है, और कला भवन तथा लखनऊ के सग्रहालयो मे सुरक्षित है। पत्थर की मूर्तियॉ बनाने वाली शिल्प श्रेणी भी काशी मे बहुत सक्रिय थी। जिसका प्रमाण सारनाथ के सग्रहालय में विभिन्न प्रकार की मूर्तिया शिल्प की उकेरी के रूप मे प्राप्त है। काशी के वस्त्र तो जातक युग से ही प्रसिद्ध हो गये थे, जिन्हें कासय्यक या वाराणसेय्यक कहते थे। वे वस्त्र तो नही रहे, पर उनकी सजावट में प्रयुक्त होने वाले अलकरणो का एक छटापूर्ण नमूना सारनाथ के धमेख स्तूप के शिला पट्टो से निर्मित आच्छादन पर अभी भी शोभा की वस्तु है।[७]

इसके वल्लरी प्रधान और सर्वतोमद्रादि आकृतियों से पूरे हुए अलकरण अपरिमित सौन्दर्य के साक्षी है। काशी के वस्त्रो की वह पुरातन कला अपने यश से आज भी गमक रही है। काशी की फूल गली भी प्रसिद्ध रही होगी। जातकों मे इसका नाम ही पुष्पवती आया है, अर्थात यह फूलों की नगरी थी, जो अभी तक काशी के रूचिपूर्ण नागरिक जीवन का एक विशेष लक्षण है।[८]

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टि मे रखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मध्ययुगीन बनारस की व्यापारिक संरचना, व्यापार में बनारस का योगदान और व्यापारिक क्रिया कलापों के केन्द्र के रूप में इसकी भूमिका के सम्बन्ध में प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों का क्रमबद्ध विवेचन किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में विभिन्न इतिहासकारो, स्थानीय संतों एव कवियों, भारतीय एवं विदेशी व्यवसायियो तथा विदेशी यात्रियों द्वारा बनारस के व्यापारिक जीवन पर जो कुछ भी लिखा गया है, उसे प्राथमिक तथ्यो के रूप मे संकलित करते हुए इस नगर के व्यापारिक परिदृश्य का विवरण दिया गया है।

---

[७] पूर्वोद्धत

[८] वही, पृ०–१५

विश्व की प्राचीनतम् जीवित सस्कृति को उज्जवलित करने का एक प्रधान कारण इसका व्यापारिक केन्द्र के रूप मे होना भी रहा है। इस प्रकार बनारस मे सास्कृतिक निरतरता को बनाये रखने में व्यापार की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

प्राचीन काल से ही इस नगर की व्यावसायिक संबद्धता के विषय में यत्र–तत्र उल्लेख प्राप्त होते है। नगरीय सरचना के जो गुण होने चाहिए, वे सभी बनारस मे निहित थे। नदी तट पर नगरो का बसना, जहॉ जीवन–यापन की मौलिक सुविधाओ की उपलब्धता के कारण आवश्यक माना जाता था, वही व्यापार के लिए यातायात की सुविधा की दृष्टि से जल मार्ग की सुलभता भी महत्वपूर्ण होती थी।

किसी भी नगर के व्यापारिक उत्थान मे आधुनिक यातायात की सुविधाओ के पूर्व जलमार्ग की सुविधा ही प्रधान थी। बनारस प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल के प्रारम्भ तक अपने व्यावसायिक क्रिया–कलापों के लिए मूलतः जलमार्गो पर ही आश्रित था। यातायात विषयक जो विवरण प्राप्त होते हैं उनसे यह स्पष्ट होता है कि १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सडको के विकास और १९वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में रेल यातायात के प्रारम्भ होने तक (१८४८ई०) बनारस का व्यापारिक क्रिया–कलाप जलमार्ग पर आश्रित था।[९]

व्यापार और वाणिज्य

व्यवसाय

इस काल में बनारस शहर बहुत ही व्यस्त एवं समृद्व बाजार था।[१०] इस बाजार मे भिन्न–भिन्न व्यवसायों द्वारा अपनी आजीविका सुनिश्चित करने वाले हर वर्ग के व्यवसायी थे[११] इस काल में प्रमुख रूप से जो व्यवसाय प्रचलित थे, वे निम्नवत हैः–

---

[९] डा० मोतीचन्द्रः का. ई., द्वितीय संस्करण, पूर्वोक्त, पृ०–१९–१७

[१०] कार्तिलता, पृ०–४७,

[११] डा० शैफाली चटर्जी,–पृ० २१७

शराबोत्पा ·न का व्यवसाय

इस काल मे शराबोत्पादन तथा शराब की बिक्री का व्यवसाय काफी समृद्ध था। कबीर दास ने शराब की बडी भट्ठियो का उल्लेख किया है, जिसमे लहड 'खाद्यान्न' मे गुड़ आदि मिलाकर मदिरा तैयार की जाती थी।[12] इस प्रकार इस काल मे मदिरा का व्यवसाय फल–फूल रहा था तथा, इसे बनाने वाले कल्लाल की आजीविका का प्रमुख साधन था।[13]

सोने के आभूषणों का व्यवसाय

इस काल में बनारस मे सोने के आभूषणो का व्यापक प्रचलन था तथा इस काल मे लोग सोने की सफाई तथा शुद्धता की प्रकिया से भली–भॉति परिचित थे।[14] अत स्वर्णकारो द्वारा स्वर्ण धुलाई, आभूषण बनाने, ढालने तथा काटने का कार्य बारीक एवं प्रशिक्षित ढग से होता था,[15] इस प्रकार इस काल में स्वर्णकार के रूप मे एक व्यावसायिक वर्ग विद्यमान था[16] यह व्यवसाय एक वर्ग की आजीविका के प्रमुख रूप मे फल फूल रहा था।

सूत ·ातन तथा कपड़ा तैयार करने का व्यवसाय

इस समय बनारस मे कपड़ों की बिक्री एक प्रमुख व्यवसाय के रूप मे विद्यमान थी। जुलाहों द्वारा सूत कातने तथा कपड़ा तैयार करने का उल्लेख मिलता है।[17] जिससे स्पष्ट होता है कि इस काल में सूत कातने तथा उससे कपड़ा तैयार करने तथा बेचने का व्यवसाय काफी समृद्ध था।[18]

---

[12] कबीर ग्रन्थावली, दो० ३, पृ० २३४
[13] कबीर, दो. २, पृ० ३२ तथा दो० ५१, पृ० ४६
[14] हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ.–६७
[15] वही, पृ.–६६–१००
[16] कबीर ग्रन्थावली, दो० १७, पृ० १५४–५५ तथा मृगावती, दो० ५५, पृ० २८
[17] कबीर, दो ०–४४,पृ.–२६४,
[18] अबरूनी, पृ.–४७

लोहे का व्यवसाय

लोहे के सामानों को बनाने तथा विक्रय के उल्लेख से यह प्रमाणित होता है कि इस काल मे लोहे का व्यवसाय होता था,[१९] तथा तलवार से लेकर साधारण मकान व मदिरो मे प्रयुक्त होने वाली लोहे सामग्री का व्यापक स्तर पर उपयोगा होता था।[२०]

मिट्टी के बर्तनों का व्यवसाय

मध्य कालीन समाज में धातुओ के बर्तनों का चलन था ही, परन्तु अनेक सामाजिक, धार्मिक आयोजनो मे प्रायः मिट्टी के बर्तन इत्यादि प्रयुक्त होते थे। नाना प्रकार के बर्तन बनाने में कुम्हार प्रवीण हो गये थे।[२१] कबीर ने अनेक दोहो मे कुम्हार के विकसित चाक का वर्णन किया है। साथ ही कबीर ने मिट्टी के कच्चे बर्तनों को पकाने की विधि का उल्लेख किया है।[२२] अत. स्पष्ट है कि इस काल मे यह व्यवसाय एक वर्ग की आजीविका का प्रमुख साधन था।

लकड़ी का व्यवसाय

लोहे की ही भॉति लकड़ी भी मकान, आदि के निर्माण मे, खिडकी, दरवाजे तथा रोशनदानो के माध्यम से आवश्यक हो गयी थी।[२३] इस काल मे घुडसवारों की बढ़ती सख्या व सेना में उनके महत्व को देखते, घोडे की काठी का निर्माण एक बडे उद्योग के रूप मे विकसित हो गया था।[२४] इस काल मे बनारस का काफी नाम था और यहॉ से काष्ठ निर्मित्त बड़े बैक्सले, बिस्तर, स्याही रखने की दावात आदि अन्य स्थानों पर निर्यात की जाती थी। कश्मीर में काष्ठ निर्मित वस्तुएं काफी चमकदार

---

[१९] कबीर, प.–७, दो.–२८, पृ.–४६, दो.–५१ तथा पृ.–११
[२०] मृगावती, दो.–३५, पृ.–२८ तथाकबीर, दो–५, पृ.–४४, तथा हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ–६५–६६,
[२१] डॉ. हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ.–८९–९१,
[२२] कबीर, दो० १, पृ० ३१, तथा दो० ३८, ३६, पृ० ४४,
[२३] कबीर, दो० १, पृ० ३१,
[२४] मृगावती, दो.–३५, पृ.–२८

और पालिस की हुई होती थी।[25] इस प्रकार से घर के बैठने के आसनो से लेकर कृषि हेतु हल आदि तथा बच्चों के झूलो तक का कार्य इस कुटीर उद्योग के अन्तर्गत होता था।[26]

वस्त्र उद्योग

इस समय भारत वर्ष वस्त्र उद्योग के लिए बहुत प्रसिद्ध था, तथा बनारस वस्त्र उद्योग में व्यापक स्तर पर विद्यमान था। ज्योतिरेश्वर ने २० प्रकार के देशी वस्त्रों का उल्लेख किया है।[27] विद्यापति ने "कीर्तिलता" मे मौजला मोजो का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'बनारस के शहर में मोजा बिकते हुए देखा।[28] इस प्रकार इस काल में बनारस मे वस्त्र उद्योग काफी विकसित पैमाने पर होता था।

तेल बनाने का व्यवसाय

इस काल मे तेल बनाने तथा बेचने का व्यवसाय भी होता था तथा तेल बनाने व बेचने वाला तेली के नाम से जाना जाता था।[29] इस समय एक वर्ग जो तेली के नाम से सम्बोधित होता था विशेष रूप से इस व्यवसाय में संलग्न था तथा अपनी आजीविका के साधन के रूप मे इस व्यवसाय को करता था।

कपड़ो की रंगाई का व्यवसाय

इस काल में कपड़ो की रंगाई एक प्रमुख व्यवसाय के रूप में विद्यमान थी।[30] कपडों को विभिन्न रगो में रंगने का तकनीकी ज्ञान इस समय के रंगरेजो को प्राप्त था। इसके अतिरिक्त इस काल में अनेक छोटे–छोटे बहुत से व्यवसाय विद्यमान थे, जिससे लोग अपनी आजीविका चलाते थे:–

---

[25] पूर्वोद्धत, दो० ३४८, पृ० ३०१, तथा हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० ६४
[26] मनूची, खण्ड २, पृ ४२८,
[27] डॉ० हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० ६५
[28] विद्यापति, कीर्तिलता, पृ० २७
[29] कबीर, दो० २३, पृ० १६, तथा ज्योतिरेश्वर, प्रथम कल्लोल पृ० १
[30] कबीर, दो०४, पृ० १०२,

बाल काटने तथा हज्जाम करने का व्यवसाय नाइयो द्वारा होता था।[३१] ये नाई तथा इनकी पत्नियॉ सामाजिक एव धार्मिक अनुष्ठानो मे भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते थे।[३२] कपडो की सफाई, धुलाई करने का कार्य भी एक व्यवसाय के रूप में स्थापित था तथा इस कार्य को करने वाले "धोबी" कहे जाते थे।[३३] कुलीन तथा अभिजात्य वर्ग के लोगो की अधिक सख्या होने के कारण इस व्यवसाय से सम्बद्ध लोग बडी सख्या मे रहे होंगे।[३४] इस काल मे पान तथा सुपाडी बेचने का व्यवसाय प्रचलित था, इस व्यवसाय को करने वाले को तम्बोली कहा जाता था।[३५] प्राय इस युग के शासक वर्ग उनकी रानियॉ, तथा अभिजात्य वर्ग के लोग तम्बोली को विधिवत वेतन भोगी, कर्मचारियो के रूप मे नियुक्त किया जाता था।[३६]

विभिन्न करतबो को दिखाकर लोगो का मनोरजन करना भी एक आजीविका अर्जित करने का साधन था तथा इस कार्य को करने वाले को "नट" की सज्ञा दी गयी है।[३७] प्रायः समकालीन साहित्य में उनकी स्त्रियो द्वारा भी खेल तथा तमाशे दिखाने का उल्लेख मिलता है। उन्हे "नटी" अथवा "बाजीगरनी" कहा जाता था।[३८]

वेश्यावृत्ति समाज के एक अविच्छेद अंग के रूप में विद्यमान थी। ये वेश्याये वेश्यावृत्ति के माध्यम से अपनी आजीविका निर्धारित करती थी। बनारस शहर में हमे वेश्याओ के अस्तित्व का पता चलता है। विद्यापति इनका वर्णन करते हुए कहा है कि "राजपथ के निकट चलने पर वेश्याओं के अनेक घर दिखाई पड़ते थे।"[३९] इन

---

[३१] कबीर, दो० ११, पृ० ३७५,
[३२] मृगावती, दो० ४२४, पृ० ३६७, तथा हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० ८७–८८,
[३३] कबीर, दो० ११, पृ० ४२४, पृ० ३६७, तथा मृगावती दो० ४२०, पृ० ३६७,
[३४] हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० ८६, ८७,
[३५] कबीर, दो० २६, पृ० ४२, तथा अलबरूनी, पृ० २३७,
[३६] मृगावती, दो० ३५, पृ० २८,
[३७] कबीर, दो०२६, पृ० ११ तथा दो० १०६, पृ० २०६,
[३८] हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० १२७
[३९] कीर्तिलता पृ० ३३,

वेश्याओ के श्रृगार का जो सजीव वर्णन कीर्तिलता मे किया गया है। उससे प्रतीत होता है कि ये वेश्याये अपनी आजीविका के प्रति अधिक सचेत रहा करती थी।[४०]

इस काल मे व्यापार एवं वाणिज्य से लेकर यातायात के साधन के रूप मे नदी मे नाव का इस्तेमाल भी परिलक्षित होता है,[४१] जिससे नॉव चलाने वाले वर्ग का ज्ञान होता है, जिसे "केवट" कहा जाता था। यह वर्ग नाव द्वारा अपनी आजीविका सुनिश्चित करता था।[४२]

बनारस मे भवनो के साथ– विद्यमान उद्यान एव बाग–बगीचे इस बात के सकेत देते है कि इन्हे सुव्यवस्थित करने तथा इनकी देख रेख का कार्य भी आजीविका के साधन के रूप में प्रचलित था। इस कार्य को करने वाले वर्ग को माली की संज्ञा दी गयी है।[४३] जिन्हें शासक सामंत व समृद्ध वर्गो द्वारा नियुक्ति भी प्रदान की जाती थी।

इस काल मे भवन निर्माण का कार्य व्यापक स्तर पर होता था। इसके निर्माण के लिए कुशल कारीगरो का अस्तित्व विद्यमान था।[४४] जो अपनी आजीविका के साधन के रूप मे इस कला का उपयोग करते थे।[४५]

भवन निर्माण के कारण अन्य उद्योग भी अस्तित्व में थे। जैसे–पत्थर, गारा, चूना, ईट, लोहा इत्यादि भवन सामग्री जो भवन निर्माण के लिए आवश्यक होती है, छोटे व्यवसायों का प्रमुख माध्यम थी।[४६]

---

[४०] पूर्वोद्धत, पृ० ३६,
[४१] अलबरूनी, पृ० १२२, १२४,
[४२] डॉ. हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० ८२–८५
[४३] मृगावती, पृ०१६२, दो० २०१,
[४४] पर्सी ब्राऊन, पृ० ४२, ४४,
[४५] वही,
[४६] फर्ग्युसन, पृ० १८८, तथा पर्सी ब्राउन, पृ० ४२–४५,

चर्म उद्योग

इस काल मे चर्म उद्योग का भी विकास हुआ। इस काल मे चमडे की वस्तुओ की माँग बढ़ी। मध्यकालीन भारत मे सिंचाई के लिए पानी निकालने के लिए चमडे की मोट, घोड़ो के लिए रास व जीन, तलवार रखने के लिए म्याने, जूतो, जूतियो आदि का निर्माण चमडे से ही होता था।[४७] यह उद्योग प्रोत्साहन के अभाव में ज्यादा पनप नही सका।

टेण्ट निर्माण

इस काल में टेन्ट निर्माण का कार्य बहुतायत से हो रहा था। टेन्ट की सजावट हेतु उसमे सोने, चाँदी और रेशम के धागो से कढ़ाई की जाती थी। टेन्ट को घेरने के लिए "कनात" का प्रयोग किया जाता था जो कि तीन या चार मोटे कपडे का बना होता था।[४८] फर्श को सुन्दर एव स्वच्छ रखने के लिए "कनात" के इस कपड़े को फर्श पर भी बिछाया जाता था।[४९] टेन्ट का प्रयोग अधिकतर युद्ध के मैदानो में किया जाता था। टेन्ट निर्माण इस काल मे चरमोत्कर्ष पर था और उस समय आरामदायक, टिकाऊ और सुन्दर टेन्टो का निर्माण होता था।

कालीन उद्योग

उच्च वर्गीय समुदाय फर्श पर बिछाने के लिए कालीन का प्रयोग करते थे। इस समय कालीन निर्माण के प्रमुख केन्द्र वाराणसी और आगरा थे। फारस से भी कालीन का आयात किया जाता था। फारसी कालीनों के आयात ने इस उधोग को एक नई दिशा प्रदान की और यह उधोग लगातार उन्नति के पथ पर अग्रसर रहा।

---

[४७] राधेश्याम, पृ० ३८२,

[४८] बर्नियर, पृ० ३६१, ३६२

[४९] मनूची, खण्ड २, पृ० ४२४, निज्जर, पृ० १५३

इस काल मे मछली पकड़ने तथा उसे बेचने का व्यवसाय मछुवारो द्वारा सम्पन्न होता था।[५०]

ग्वाल तथा ग्वालिन मध्ययुगीन अर्थव्यवस्था मे महत्वपूर्ण व अपरिहार्य भूमिका निभाते थे। चूँकि समाज के प्रत्येक वर्ग को साधारणतया दूध से दुग्ध उत्पादो की सामान्य खान–पान मे आवश्यकता होती थी अत इनका महत्व था। अत यह व्यवसाय उस काल मे विकसित तथा सम्पन्न था।[५१]

सुगन्धियॉ

विभिन्न प्रकार की सुगन्धियॉ निर्मित करने का उद्योग इस काल मे काफी विकसित था। उच्च वर्गीय समाज मे ये फैशन के रूप मे प्रचलित था और इसकी अत्यधिक मॉग थी। बनारस मे दिल्ली और आगरा मे निर्मित सुगन्धियो की अत्यधिक मॉग थी। हिन्दू और मुस्लिम समाज के उच्च वर्गीय समुदाय के लोग अपनी आय का एक बडा भाग सुगन्धियो पर व्यय करते थे।

धातु उद्योग

इस काल में धातु की अत्यधिक उपलब्धता थी। सोना दक्षिण भारत मे पाया जाता था। असम मे चॉदी, तॉबा, और टिन काफी मात्रा मे प्राप्त किया जाता था।[५२] इससे सम्बन्धित उद्योग इस क्षेत्र में भी उपलब्ध थे। पटना और बनारस के धातु उद्योग से सम्बन्धित व्यापारी जलमार्ग से कच्चा माल प्राप्त करते थे। बनारस कॉसे के उद्योग का एक प्रमुख केन्द्र था और यहॉ कॉसे के बर्तन आदि का उत्पादन होता था।

---

[५०] कीर्तिलता, पृ०३०,

[५१] डॉ० हेरम्ब चतुर्वेदी, पृ० १००–१०५

[५२] गेट, पृ० १४५

जहाज निर्माण उद्योग

जहाज निर्माण उद्योग का समुद्र से सम्बन्ध है। हालांकि बनारस का क्षेत्र इस उद्योग से अछूता था। परन्तु मुगल काल मे अग्रेज व्यापारियो के आगमन ने जहाज निर्माण के उद्योग को प्रगति दी। मुगल शासक इस सन्दर्भ मे ज्ञान की कमी के कारण इस उद्योग की ओर ध्यान न दे सके। समुद्री रास्तो और जहाज निर्माण के अज्ञान ने भी इस उद्योग की तरफ से मुगलो को उदासीन रखा। अग्रेजो के भारत मे पॉव रखने के साथ ही जहाज निर्माण को नई गति दी। इसी कारण नए–नए बदरगाहो का विकास भी हुआ। बम्बई, हुगली, और सूरत जहाज निर्माण के प्रमुख केन्द्र थे।[53]

ईंट उद्योग

विभिन्न प्रकार के भवन निर्माण की कला ने ईट उद्योग को जन्म दिया। उच्च वर्गीय समुदाय पकी हुई ईटो का घर बनवाता था जिसके कारण ईट पकाने की भट्ठियो का प्रयोग आरम्भ हुआ। कुलीन वर्ग भवनो को सुन्दर बनाने के लिए पत्थर, संगमरमर और टाइल का प्रयोग करते थे। टाइल को काटना, पालिस करना, चमकाना और उन्हे विभिन्न प्रकार के रगो से सुसज्जित करने के उद्योग भी आरम्भ हो गये थे। बनारस क्षेत्र मे ईट बनाने और उन्हे पकाने की बहुत सी भट्ठियॉ कार्य कर रही थी।

उद्योगों का स्वामित्व

विभिन्न उद्योगो को आरम्भ करने का उद्देश्य लाभ की प्राप्ति थी। यह कहना कठिन होगा कि वास्तव में उद्योगों पर किसका स्वामित्व रहता था। आमतौर पर वंशगत रूप से उद्योगों पर स्वामित्व रहता था। राजसी परिवार की महिलाए और

---

[53] जे०एन०सरकार, स्टडीज इन मुगल इण्डिया, पृ० २१८,

कुलीन वर्ग के लोग उद्योगो मे पर्याप्त रूचि रखते थे।[५४] १७वी शताब्दी के अन्त से उद्योगो पर नियत्रण राजसी परिवार के लोग करने लगे। इन लोगो ने अपनी व्यक्तिगत पूँजी उद्योगो मे लगायी ताकि लाभ प्राप्त किया जा सके। समकालीन साहित्य मे इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिले है।[५५]

राज दरबार के बहुत से कुलीन सरदारो ने भी अपने व्यक्तिगत कारखानो की स्थापना की थी। इनका उद्देश्य कारखानो में उत्पादित वस्तुओ से लाभ प्राप्त करना था। इन कारखानो मे रेशमी वस्त्र, काष्ठ के सामान, कालीन, शीशें का सामान, सोने–चॉदी के आभूषण और अन्य भी वस्तुओ का उत्पादन होता था। युद्ध से सम्बन्धित सामग्री भी इन कारखानो मे निर्मित होती थी। शिल्प से सम्बन्धित कारखाने लाभप्रद नही थे और ये कारखाने के स्वामी की दया पर चल रहे थे। इनके स्वामियो का उद्देश्य कम समय मे अधिक लाभ कमाना था। शिल्पकारो की श्रेणियो को पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त नही था और वे सबसे कम मजदूरी प्राप्त करते थे।[५६]

यूरोपीय व्यापारियो ने भारत मे आने के बाद विभिन्न स्थानों पर फैक्टरी की स्थापना की। परन्तु वे केवल निर्यात मे रूचि रखते थे। इस कारण कारखानो की स्थिति मे कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। परन्तु अठ्ठारहवीं शताब्दी में कारखानो की स्थिति में तीव्रगति से सुधार हुआ।[५७] औद्योगीकरण का प्रमुख कारण देश के अन्दर बाजारों का विकास था। लेकिन दुर्भाग्यवश कारखानो से सम्बन्धित शक्ति केवल कुछ ही हाथों में सीमित रही। अभी भी लोगो के कय शक्ति में बढ़ोत्तरी नही हुई थी। भारतीय बाजार अभी पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुआ था। अत कारखानो को अठारहवी शताब्दी में भी कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं मिल सका।[५८] उपरोक्त तथ्यों के

---

[५४] हरिशंकर श्रीवास्तव, पृ० ४३

[५५] आदाब–ए–आलमगीरी, फुटनोट २५ए

[५६] बर्नियर, पृ० २५४, २५५, २५६ औरंगजेब, खण्ड ५, पृ० ३४१, निज्जर, पृ० १५३

[५७] नीरा दरबारी, पृ० १६०

[५८] पन्त, पृ० २३७

अतिरिक्त बाजारो का कमिक विकास जारी रहा और कारखानों का स्वामित्व उनके मालिको के हाथ मे रहा। इस काल से नये रूप मे मालिक और मजदूर की सीमारेखा और उनके दायरे की परम्परा का आरम्भ हुआ।

व्यापार

मध्य काल मे कृषि उत्पादन इतनी अधिक ग्रामो मे तथा गैर कृषि उत्पादन शहरो मे होता था कि स्थानीय जनता के उपयोग के बाद भी बाजार मे विक्रय हेतु अत्यधिक मात्रा मे सामान बच जाता था। यह सामान कस्बो तथा शहरो के बाजारो मे पहुॅच जाता था। जहॉ से देश में वरन् विदेशो में भी होती थी। इसी प्रकार विदेशी वस्तुओ की भी मॉग इस देश के विभिन्न वर्गो मे थी। इस समस्त व्यापारिक प्रकिया के रूप मे दो महत्वपूर्ण पहलू थे –

१. आन्तरिक एव अर्न्तप्रादेशिक व्यापार तथा

२ बाह्य व्यापार।[५९]

देश की भौगोलिक दशा ने व्यापार व विनिमय की सुविधाए यहॉ के लोगों को प्राकृतिक वरदान स्वरूप दी। पूर्वी तट

पर बगाल की खाड़ी मे अनेक बन्दरगाह व्यापार की दृष्टि से विद्यमान थे। इन्ही बन्दरगाहों पर पूर्वी एशिया के देशो से सामान आता रहा तथा उन देशों को भारतवर्ष से सामान भेजा जाता रहा। इस प्रकार भारत वर्ष का पूर्वी देशो से व्यापारिक सम्बन्ध सहस्त्रो वर्षो तक बने रहे।[६०]

व्या।प र–मार्ग

बनारस का बहुत प्राचीन काल से व्यापारिक महत्व उसकी भौगोलिक स्थिति के कारण था। दिल्ली के सुल्तानों के समय इसका महत्व इसलिए थोड़ा कम हो

---

[५९] राधेश्याम, पृ० ४११

[६०] वही, पृ० ४१२

गया था कि बगाल जाने की सड़क जौनपुर–मिर्जापुर होकर निकल जाती थी।[61] परन्तु मुगल काल मे बनारस से होकर फिर बहुत सी सडके चलने लगी। दिल्ली–मुरादाबाद–बनारस, पटना वाली सडक दिल्ली, शहादरा, गाजिउद्दीन नगर (गाजियाबाद), डाना, हापुड, बागसर, गढमुक्तेश्वर, बगडी, अमरोहा, मुरादाबाद, रायबरेली, सेला, कडा डलमऊ होकर बनारस पहुँचती थी। बनारस से यह सड़क सैयदराजा, गाजीपुर, बक्सर, रानी सागर और बिसम्भरपुर होकर पटना पहुँचती थी। तावेर्नियें बनारस से पटना, बहादुर पुर, सैयदराजा, मोहनियाँ की सराय, खुर्रमाबाद, सहसराम, दाऊदनगर, अल (सोनपुर) तथा आगा सराय होते हुए पहुँचा।[62]

आगरा–इलाहाबाद–बनारस का भी एक रास्ता था। यह रास्ता फिरोजाबाद, शिकोहाबाद, इटावा, राजपुर, कुरारा, हटगॉव, शहजादपुर होकर इलाहाबाद पहुँचता था। इलाहाबाद से रास्ता रायबरेली, हनुमान नगरी (हनुमानगज), मलिकपुर, शाहजहॉपुर, सध, मिर्जामुराद होकर बनारस पहुँचता था। तावर्निए ने इस सड़क पर निम्नलिखित मंजिले दी है। फिरोजाबाद, सराय मुरलीदास, इटावा, अजितमल, सिकंदरा, मूसानगर के पास सांकल, शेरूराबाद, सराय शहजादा, हटगॉव, औरंगाबाद, आलमचंद्र, इलाहाबाद, सदुल सराय (सैदाबाद) जगदीस सराय, बाबू सराय, बनारस। टीफेन थालर के अनुसार यह रास्ता हडिया, गोपीगज और मिर्जामुराद होकर बनारस पहुँचता था।[63]

यातायात

किसी भी देश में व्यापार व विनिमय के विकास के लिए राजनैतिक स्थिरता के अतिरिक्त पर्याप्त मात्रा में वस्तुओं का उपलब्ध होना, प्राकृतिक साधनो का निरन्तर प्रयोग किया जाना व्यापारी समुदाय का संगठित होना तथा विभिन्न वस्तुओं के मांग

---

[61] डा० मोती चन्द्र, काशी का इतिहास, वि०वि० प्रकाशन, वाराणसी, सन् १९८६, पृ० २३५

[62] वही

[63] डा० मोती चन्द्र, काशी का इतिहास, वि० वि० प्रकाशन, वाराणसी, सन् १९८६, पृ० २३५

की पूर्ति होना। वस्तुओ के लिए देश भर मे बाजारो का होना तथा यातायात के साधनो का उपस्थित होना बहुत ही आवश्यक होता है। बिना इन उपकरणो के न तो औद्योगिक प्रगति और न ही व्यापार सम्भव होता है। अलबरूनी ने लिखा है कि उत्तरी भारत मे प्रादेशिक व्यापार के विकास के लिए सडको का होना नितान्त आवश्यक है। उसने कन्नौज से उत्तर पश्चिम मे जाती हुई दो सडके भी देखी। उसने उत्तर पूर्वी मार्गों का विस्तृत उल्लेख किया है।[६४] पूर्व मे बगाल व उडीसा तक सडको का जाल फैला हुआ था। यह सड़के गॉव व कस्बो से होती हुई शहरो से मिलती थी तथा इनका प्रयोग समाज के अन्य वर्गों के अतिरिक्त कारवानी, बजारे, व्यापारी, सौदागर, मुल्तानी सभी किया करते थे।[६५] बजारो का यातायात के साधनो पर एकाधिकार था। इसके अतिरिक्त बजारो एक समूह मे लगभग पन्द्रह हजार बैल होते जो भारी सामानो को ढोते थे।[६६]

ग्रामो मे यातायात का प्रमुख साधन बैलगाडी, ऊॅट आदि थे।[६७] व्यापारियो तथा यात्रियों के लिए रात्रि विश्राम के लिए सराये बनी थी। जिसके सम्बन्ध मे बहुत से विदेशी यात्रियों ने विवरण दिया है।[६८]

थल मार्ग

हालॉकि आन्तरिक व्यापार का प्रमुख मार्ग जलमार्ग था। परन्तु पुलों के अभाव से यात्रा दुष्कर हो जाती थी। थल मार्ग पर लोग ऊॅट, बैलगाडी, घोड़े, हाथी आदि का प्रयोग करते थे। विशेषकर महिलाओ और बच्चों के लिए यात्रा के इन साधनो का प्रयोग किया जाता था। अनाज और भोजन के लिए थल मार्ग से यात्रा करने वाले

---

[६४] राधेश्याम, दिल्ली सल्तनत का सामा० एवं आर्थिक इतिहास द्वारा उद्घृत पृ० ४१३

[६५] देखे इस शोध प्रबन्ध का अध्याय ३

[६६] मुण्डी, पृ० ६६, ट्रेवर्नियर, खण्ड १, पृ० ३२, ३३ इरफान, पृ० ६२

[६७] इरफान हबीब, पृ० ६

[६८] बर्नियर, पृ० २३३, ट्रेवर्नियर, खण्ड १ पृ० ४५, मनूची खण्ड १, पृ० ८८, ८६, आलमगीरी नामा, फुटनोट ३३० बी

बाजारो पर निर्भर रहते थे और यात्रियो की स्थिति खानाबदोश जैसी हो जाती थी।[६९] थल मार्ग से लम्बे रास्तो की दूरी तय करना बहुत ही कष्टकर होता था। बनारस, मे प्रमुख थलमार्ग गाजीपुर से कटक, उडीसा तक था। बगाल से उत्तर की तरफ आने पर कोसी और गण्डक नदी पार करनी पडती थी।

तत्पश्चात छपरा, तिरहुत होते हुए पूर्वी उत्तर प्रदेश मे जौनपुर तक पहुँचा जा सकता था।[७०] शेरशाह सूरी के समय मे निर्मित की गयी ग्रैण्ड ट्रक रोड गोरखपुर, इलाहाबाद, गाजीपुर, जौनपुर तथा वाराणसी को आपस मे जोडती थी। परन्तु थल मार्ग अभी लोकप्रिय नही था। क्योकि यात्रियो (कारवा) को मार्ग मे विभिन्न कठिनाइया होती थी, जैसे रहने की समस्या, असुरक्षा, अधिक व्यय तथा अधिक समय वृद्धि आदि का सामना करना पडता था। थल मार्ग से व्यापार विनिमय तथा यात्राए असुविधाजनक थी।

नदी मार्ग या जल मार्ग

थल मार्ग के अपेक्षा जल मार्ग से यात्रा करना तथा व्यापार करना अधिक सुविधा जनक था। विभिन्न जल मार्ग यात्रा को सुविधाजनक स्थिति प्रदान करते थे और यह अपव्यय से परे था।[७१] प्राचीन काल और मुगलो के समय से मध्य भारत में गगा, यमुना तथा हुगली नदियॉ थी। इन नदियो मे नावों की सहायता से व्यापार होता था। गगा नदी द्वारा लोग बंगाल की ओर जाते थे तथा वापस अपने स्थान पर नावो की सहायता से आ जाते थे।[७२]

इलाहाबाद और वाराणसी में निर्मित बहुत से वस्तुए नावो द्वारा गगा नदी के माध्यम से बगाल की तरफ जाती थी, और वापस अपने स्थानों पर आ जाती थी।

---

[६९] बर्नियर, पृ० ११७, ११८

[७०] चटर्जी, पृ० ६६, ६७

[७१] इरफान हबीब, पृ० ६३

[७२] शिचरोव, पृ० ६६

गगा नदी मे आवागमन अन्य नदियो की अपेक्षा काफी अधिक था।[73] गंगा एव यमुना नदियो द्वारा सुदूर उत्तर भारत की ओर भी व्यापार होता था।

व्यावसायिक कर

व्यापार कार्य मे संलग्न व्यक्तियो को विभिन्न कर देने पड़ते थे। ग्रामीण एव शहरी व्यापारियो पर ऊँचे कर लगाये जाने का उल्लेख विभिन्न समकालीन लेखको ने किया है। कृषको और व्यापारियों पर सरकार द्वारा कर लगाया जाता था। इनकी दर इतनी अधिक होती थी कि कृषको और व्यापारियो को काफी कठिनाई का भी सामना करना पडता था। कृषक व्यापारियो को अपना माल ले जाने तथा कर अदा करने के लिए ऋण भी लेना पडता था। कृषक व्यापारी जिससे ऋण लेते थे उन्हे "पादेदार" कहा जाता था। ये लोग ऊँचे दर पर ब्याज लेते थे। कभी–कभी इस ब्याज की दर ५० प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से भी अधिक होती थी। कभी–कभी कृषको को बाजार दर से भी कम मूल्य पर सामान बेचेन के लिए विवश किया जाता था। कभी–कभी एक रूपये कीमत का सामान मात्र दस आने मे बेचने के लिए बाध्य किया जाता था।[74] भू–राजस्व कर के साथ व्यावसायिक कर कृषको के लिए एक अतिरिक्त बोझ था।

व्यापार विनिमय

समस्त वस्तुएं मुद्रा के ही माध्यम से नहीं कय की जाती थी। विशेषकर गावो मे वस्तु के बदले वस्तु प्राप्त की जाती थी। ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का यही आधार था। वस्तु कय करने में सिक्कों का प्रयोग मुश्किल से ही किया जाता था।[75]

---

[73] डी० पन्त, पृ० ५६
[74] चण्डी मंगल {दिखें चटर्जी, पृ० ६१}
[75] सिन्हा, पृ० ३२४

अर्न्तक्षेत्रीय व्या।प र

अर्न्तक्षेत्रीय व्यापार का प्रमुख कारण एक दूसरे के क्षेत्रो मे निर्मित वस्तुओ के प्रति लोगो का आकर्षण था। कुलीन वर्ग अधिकतर सुविधाजनक और आरामदायक वस्तुओ को दूसरे क्षेत्रो से मगाता था। वे विशेष प्रकार की वस्तुओ के प्रति आकर्षित रहते थे। अर्न्तक्षेत्रीय व्यापार का एक अन्य प्रमुख कारण क्षेत्र विशेष मे अत्यधिक उत्पादन और दूसरे वस्तु की कमी का होना था। उदाहरण के तौर पर पंजाब में अत्यधिक गेहूँ पैदा होता था, जबकि राजस्थान और सिन्ध मे इसकी पैदावार नही थी। कपड़ा पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा उत्तर भारत मे बगाल और गुजरात से आयात किया जाता था। दिल्ली एक प्रमुख व्यापार केन्द्र था, वहाँ रेशम वस्त्र, टोकरियाँ, चटाई, कालीन, अनाज, मक्खन, घी आदि उपलब्ध था। फलो को दिल्ली मे प्रशिया, बल्ख, बुखारा और समरकन्द से आयात किया जाता था।[७६] एक विशेष प्रकार की धातु चीन से पुर्तगालियो और गोवा मे अंग्रेजो द्वारा लायी गयी। जिसे टुटुनेक कहा जाता था। वे इसे अपने सिक्को के रूप मे प्रयोग करते थे।[७७] दिल्ली के बाद लाहौर और मुल्तान व्यापार और वाणिज्य के प्रमुख केन्द्र थे।[७८]

पॉच नदियों के मध्य बसे पजाब में रेशमी, ऊनी, वस्त्र और लाख इत्यादि सामानों का उत्पादन होता था।[७९] आगरा से घी, गेहूँ, चावल आदि सामान इलाहाबाद, बनारस, गाजीपुर, जौनपुर तथा बिहार की ओर भेजा जाता था और अन्य बहुत सी वस्तुएं इन स्थानों से आयात किया जाता था।[८०]

---

[७६] बर्नियर, पृ० २४८, २४६, २८१, २८२

[७७] थेवेनाट, खण्ड ३, अध्याय २५, पृ० ६५

[७८] मोरलैण्ड, इण्डिया एट दि डेथ आफ अकबर, पृ० २१६

[७९] रिज्जर, पृ० १५०

[८०] इरफान हबीब, पृ० ७२

गुजरात मे उत्पादित अच्छे किस्म के कपड़े देश के विभिन्न भागो मे भेजे जाते थे। अहमदाबाद और सूरत वस्त्र निर्माण के प्रमुख केन्द्र थे।[८१] गुजरात से ही आभूषणों मे प्रयोग किये जाने वाले हीरे और कीमती पत्थर निर्यात किये जाते थे। येगू और पर्थिया से अच्छे किस्म का काहिरा गुजराती व्यापारी कय करते थे।[८२] पूर्वी उत्तर प्रदेश मे बनारस सोने और चॉदी के आभूषणो के निर्माण के लिए प्रसिद्ध था। यहॉ के निर्मित आभूषण न केवल स्थानीय लोगो द्वारा प्रयोग किये जाते थे वरन् इनका निर्यात आगरा, दिल्ली, पटना और बगाल मे भी होता था। बगाल और पटना के व्यापारियो का सीधा सम्बन्ध इलाहाबाद और बनारस के व्यापारियो से था। बगाल समुद्री व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। मसूली पट्टम से यहॉ समुद्र मार्ग द्वारा जिक, टिन, तॉबा, तम्बाकू आदि वस्तुए आती थी।[८३] ढाका मे मसलिन नामक विशेष रेशमी वस्त्र उत्पादित होता था। चटगॉव, हुगली, मुर्शिदाबाद, हरिहरपुर, बालासोर आदि अन्य प्रमुख व्यापारिक केन्द्र थे। उडीसा मे कोरोमण्डल तट और मालाबार तट के माध्यम से व्यापार होता था।[८४]

इस प्रकार बनारस, के साथ अर्न्तक्षेत्रीय व्यापार देश के विभिन्न नगरो से सम्बन्धित था। अठारहवी शताब्दी मे इस क्षेत्र मे तथा अन्य क्षेत्रो मे सभी वस्तुओ का उत्पादन तथा आपूर्ति हो रही थी। विदेश व्यापार भी इस काल में प्रगति की ओर था। अतः इस काल में अर्न्तक्षेत्रीय व्यापार ने सभी वर्गों के लोगों की आवश्यकताओ की पूर्ति तथा समृद्धि भी प्राप्त की।

वि-२। व्यापार

---

[८१] ट्रेवर्नियर, खण्ड २, पृ० २
[८२] मनूची, खण्ड २, पृ० ४२५
[८३] थिशरोव, पृ० १०६
[८४] शिचरोव, पृ० १०५, १०६

भारत अपनी सम्पदा के लिए प्रचीन काल से ही विख्यात था। मुगलो के शासन के पूर्व ही बहुत से विदेशी व्यापारियो को भारत ने आकर्षित किया। कोलम्बस और वास्कोडिगामा ने इस सन्दर्भ मे सार्थक प्रयास किये। प्राचीन काल मे ही भारतीय सामानो का निर्यात रोम, पश्चिम एशिया, दक्षिण पूर्व एशिया और पूर्वी एशिया के देशों मे होता था।[८५] मध्यकाल मे जहाज के विकास ने विदेशी व्यापारियो को लगातार भारत आने के लिए प्रेरित किया और विदेश व्यापार की गति बढ गयी। यूरोप मे भारतीय वस्तुओं की भारी मॉग थी। जिस कारण यूरोपीय व्यापारियो द्वारा भारत में नए बन्दरगाहो की स्थापना की गई तथा नई कालोनी का विकास करते हुए भारत के सभी भागो मे फैल गये।

भारत से निर्यात

भारत कृषि प्रधान देश रहा लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि यहॉ से केवल कच्चा माल ही निर्यात किया जाता था। यहॉ उत्पादित एव तैयार वस्तुओ में वस्त्र, रेशम, चीनी, नील, लाख, तम्बाकू, शीशे से निर्मित वस्तुएं, कपूर, शोरा, सुगन्धित द्रव्य, मसाले आदि प्रमुख थे। मनूची ने भारत से निर्यात किए जाने वाली वस्तुओ को चार प्रकार के पौधो मे वर्गीकृत किया है।[८६] जिसमे छोटी झाड़ी जिससे कपास तैयार होता था। नील का पौधा, तम्बाकू और अफीम का पौधा, शहतूत का पेड जिससे रेशम प्राप्त होता था, आदि समाहित थे।[८७] गेहूँ से तैयार किया गया बिस्कुट बगाल से काफी मात्रा मे विदेशो को निर्यात किया जाता था। इसी प्रकार भारत मे तैयार तम्बाकू और अफीम यूरोप और अरब मे निर्यात किये जाते थे। नील का महत्व कपडे की रंगाई और छपाई के लिए था।

---

[८५] आर० सी० मजूमदार, सं० एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ५६६ से ६०७, डा० मोती चन्द्र, सार्थवाह, पटना, १६५३ भी देखें।

[८६] मनूची, खण्ड २, पृ० ४१८

[८७] वही

आयात

इस काल मे बनारस क्षेत्र अनाज और वस्त्र के सम्बन्ध मे आत्मनिर्भर था। परन्तु अब भी बहुत सी ऐसी वस्तुए थी जो विदेशो से आयात की जाती थी। इस काल के अन्त मे इन क्षेत्रो मे चॉदी, तॉबा, सोना और अन्य विलासपूर्ण वस्तुए पूर्वी और पश्चिमी एशिया के देशो से आयात की जाती थी। इन वस्तुओ मे दालचीनी, तॉबा, लौग, हाथी व अन्य वस्तुए डच व्यापारियो द्वारा निर्यात की जाती थी। भारत मे घोड़े, कन्धार, अरब, समरकन्द आदि स्थानो से आयात किये जाते थे। सूखे मेवे और फल बुखारा, प्रशिया, बाली और समरकन्द से आयात किये जाते थे। सीगों और हाथीदॉत का आयात इथोपिया से किया जाता था। मोतियो का आयात बहरीन से होता था। इस प्रकार बहुत से अन्य वस्तुए जो भारत मे प्राप्त नही होती थी या जिनकी मॉग पूर्ति से अधिक थी, विदेशो से आयात की जाती थी।[८८] उत्तम किस्म के घोडे काबुल[८९] से तथा फर, शाल, तम्बाकू मसाले आदि अन्य एशियाई देशो से मगाये जाते थे।[९०]

यूरोपीय व्यापारियो के आगमन के साथ ही एक नवीन पेय "चाय" औरगजेब के काल से ही प्रयोग मे लायी जाने लगी। लेकिन यह केवल विदेशियों तक ही सीमित थी। इंग्लैंड में १७वीं शताब्दी में यह लार्ड आर्लिंगटन और ओसोरी द्वारा इग्लैण्ड से आयात की गयी थी। औरगजेब के काल मे यह प्रयोगिक के रूप मे इस्तेमाल हो रही थी। अठारहवीं शताब्दी में यह प्रमुख पेय के रूप में प्रयोग किया जाने लगा। चीन से चीनी मिट्टी के बर्तन, रेशमी वस्त्र, कपूर, दवाइयॉ और

---

[८८] के०सी मजूमदार, इम्पोरियल एज आफ द मुगल्स, आगरा–१६३३, पृ० १६७

[८९] फोस्टर्स ट्रेवल्स इन इण्डिया, खण्ड २, पृ० ७६

[९०] मो० उमर, एम०आई०एस०एम०, खण्ड २, लेख–नार्दन इण्डियाज इम्पोटिस फ्राम एशिया खण्ड यूरोप, पृ० २३६

सुगन्धियॉ आयात की जाती थी। पगू और जवा से लौग, सोना तथा चॉदी आयात किया जाता था।[६१]

ज .ाजरानों

विदेश व्यापार का मुख्य मार्ग समुद्र था। बडे जहाजो के माध्यम से विदेश से विभिन्न वस्तुए आयात की जाती थी। इसका प्रमुख केन्द्र बगाल था। उत्तरी भारत की प्रमुख नदियो द्वारा नाव से इन वस्तुओ को इलाहाबाद, बनारस, गाजीपुर, बलिया आदि स्थानो पर पहुँचाया जाता था। बहुत से ऐसे विदेशी व्यापारी भी थे, जिनके अपने पानी के जहाज थे। सूरत के बहुत से व्यापारी ऐसे थे, जिनके पास व्यापार करने के लिए व्यक्तिगत पचास जहाज तक थे।[६२] औरगजेब के पास चार जहाज थे जो तीर्थयात्रा के लिए प्रयुक्त होते थे।[६३] उसके एक जहाज का नाम गज–ए–सवाई था, जो प्रतिवर्ष मक्का की यात्रा पर जाता था। मीर जुमला के पास अपने जहाज थे और उसने विदेश व्यापार मे व्यक्तिगत रूचि ली। अग्रेजो के साथ मीर जुमला ने विदेश व्यापार में काफी लाभ प्राप्त किया।[६४] उभरती हुई ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने समुद्री व्यापार पर अपना एकाधिकार स्थापित कर रखा था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने विदेश व्यापार के समुद्री मार्गों पर नियंत्रण रखते हुए व्यक्तिगत पानी के जहाजो को भी क्रय किया।

जिन व्यापारियो के पास अपने जहाज नहीं थे, वे व्यापार कार्य हेतु जहाज किराये पर लिया करते थे। बहुत से व्यापारी सम्पूर्ण जहाज को किराये पर न लेकर

---

[६१] इरफान हबीब, पृ० २६

[६२] कैसर, ए०जे० (मियास), खण्ड २ मर्चेण्ट शिपिंग इन इण्डिया ड्यूरिंग १७वी सेन्चुरी, पृ० २१५

[६३] के०सी० मजूमदार, पृ० २००–२०१

[६४] जगदीश एन० सरकार, पृ० २१७, २१८, २१९ लेटर्स रिसीव्ड, खण्ड ३, १६१५, पृ० २७०, इग्लिश फैक्टरीज इन इण्डिया, सं० डब्लू फोस्टर १६१८–२१, पृ० ६२, १०६, ११३, ११७, २४०, ३२५, १०६२–२३, पृ० २७३ इत्यादि।

उसका कुछ हिस्सा ही अपनी वस्तुओ के हिसाब से किराये पर लेते थे। शेष हिस्सा जहाज के स्वामी द्वारा अन्य व्यापारियो को किराये पर दिया जाता था।

आज के युग की अपेक्षा मध्यकाल मे समुद्री यात्राए असुरक्षित रहती थी। समुद्री डाकुओ और तूफानो का अक्सर व्यापारियो को सामना करना पडता था। सत्रहवी शताब्दी मे औरगजेब के व्यापारिक जहाज को अग्रेज समुद्री डाकुओ द्वारा लूटा गया था। इसका कारण डाकुओ का समुद्र पर अच्छा अधिकार और वहॉ कानून का भय न होना था।[६५] इसी समय भारत सहित अन्य देशो मे समुद्री बीमा भी प्रारम्भ हुआ। भारत के पश्चिमी तट पर बहुत से जहाजो का बीमा भी किया जाता था।[६६] इन सब समस्याओ का सामना करने के बाद भी समुद्री यात्राए और व्यापार विदेशो से जारी रहा और उत्तरोत्तर इसमे प्रगति हुई।

विदेश व्यापार के केन्द्र

विदेश व्यापार के प्रमुख केन्द्र के रूप मे हुगली और सूरत प्रमुख थे। हुगली गगा नदी से जुड़ा था। अत. बनारस, जौनपुर, इलाहाबाद, अवध, और टाडा से नावो द्वारा वस्तुए बगाल जाती थी। जहॉ से जहाजो द्वारा इन्हे विदेश भेजा जाता था। पूर्वी उत्तर प्रदेश मे बनारस से सूती कपड़े, रेशमी वस्त्र, शोरा, चीनी, शाल इत्यादि बंगाल भेजे जाते थे।[६७] सूरत और अहमदाबाद विदेश व्यापार के अन्य प्रमुख व्यापारिक केन्द्र थे। बनारस मे सोने चॉदी के तारो से कढ़ाई किये वस्त्रों की मॉग सम्पूर्ण विश्व मे

---

[६५] के०सी० मजूमदार, आई०सी०एस०, खण्ड ३०, १९५६, पृ० २०१, यूसुफ हुसैन, पृ० १६, औरगजेब खण्ड ५, पृ० २७६, डी० पन्त, पृ० २२४

[६६] इरफान हबीब, बैंकिग इन मुगल इण्डिया, कन्ट्रीब्यूशन टू इण्डियन इकोनामिक हिस्ट्री, कलकत्ता, १९६५, पृ०१५

[६७] मो० उमर, मैडयम, खण्ड २२, अलीगढ, १९७२, फारेन ट्रेड आफ इण्डिया ड्यूरिंग दि १८वी सेन्चुरी, पू० २२७, २२८, २२९

थी।[९८] अठारहवी शताब्दी मे समस्त विदेश व्यापार पर यूरोपीय व्यापारियो का नियत्रण स्थापित हो गया।। इनमे डच, पुर्तगाली, फ्रासीसी और अग्रेज प्रमुख थे।

ुर्तगाली

पुर्तगाली सम्भवत १६३२ ई० मे आने वाले सर्वप्रथम यूरोपीय व्यापारी थे। इन्होने हुगली को व्यापारिक केन्द्र बनाया और इस पर व्यापारिक नियत्रण स्थापित किया।[९९] परन्तु औरंगजेब द्वारा पुर्तगालियो के विरूद्ध कार्यवाही के पश्चात १६७६ ई० में इनका हुगली पर से नियत्रण समाप्त हो गया।[१००] हुगली पर कालान्तर मे नियन्त्रण डच और अंग्रेज व्यापारियों का हो गया। पुर्तगाली अब गोवा, दमन और दीव तक सीमित हो गये।

डच

डच व्यापारियों ने १७वीं शताब्दी मे भारत में प्रवेश किया और १८वी शताब्दी तक समुद्री व्यापार पर एकाधिकार स्थापित किया। डच व्यापारियो ने शाहजहॉ से १६३४ ई० मे बगाल मे व्यापार करने का "फरमान"[१०१] यानी राजाज्ञा प्राप्त कर ली।[१०२] राजाज्ञा का पूर्ण लाभ उठाकर डच व्यापारियों ने हुगली मे बाजार स्थापित किया तथा चिनसुरा नामक स्थान पर एम्पोरियम बनाया।[१०३] १६६० ई० के बाद डच व्यापारियों ने काफी तेजी से प्रगति की और इनका व्यापार बीस लाख रूपए तक पहुॅच गया।[१०४]

---

[९८] मनूची, खण्ड २. पृ० ८३

[९९] चटर्जी, पृ० १८६

[१००] साफी खान, मुन्तखव्वुल--लुवाब {सम्पादित इलियट व डाउसन} खण्ड १, डी० पन्त, पृ० २४६

[१०१] आइने अकबरी, [illegible], भाग १, पृ० २५६, २६०, २६१, २६३, अंसारी, पृ० १०८, कुरैशी, दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि मुगल एम्पायर, पृ० ८०, आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, अकबर दि ग्रेट, भाग २, पृ० १०६, १०७, हरिशकर श्रीवास्तव, पृ० ८४, ८५, ८६

[१०२] चटर्जी, पृ० १८८

[१०३] अलेक्जेण्डर हेमिल्टन, खण्ड २, भाग १, चटर्जी, पृ० १६३

[१०४] मोरलैण्ड, अकबर टू औरंगजेब, पृ० १८१, चटर्जी, पृ० १८८

यह आय इस समय अग्रेज व्यापारियो की आय से काफी अधिक थी।[१०५] डच व्यापारी वस्त्र, मसाले रेशम आदि के व्यापार मे सलग्न थे और ये भारतीय वस्तुए पश्चिम एशिया तथा यूरोप मे निर्यात करते थे। अपने कुल निर्यात का ४३ प्रतिशत भाग डच व्यापारी वस्त्रों के निर्यात के रूप मे जापान और हालैण्ड भेजते थे।[१०६] कासिम बाजार वस्त्रो का प्रमुख केन्द्र था। अन्य वस्तुओ मे रेशम, शोरा, अफीम, चावल, चीनी, हल्दी आदि निर्यात किये जाते थे।[१०७] इसी काल मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भी उदय आरम्भ हो गया और ये डच व्यापारियो के प्रमुख प्रतिद्वन्दी के रूप मे उभर रहे थे।[१०८]

फ्रान्सीसी

फ्रान्सीसियो ने अपनी व्यापारिक कम्पनी औरगजेब के फरमान आदेश द्वारा १६६७ ई० मे सूरत मे खोली। १६७४ ई० मे बगाल के नवाब शाइस्ता खान ने बगाल मे कुछ स्थानो पर व्यापारिक केन्द्र खोलने की इजाजत फ्रान्सीसी व्यापारियो को दी।[१०९] चन्द्र नगर मे फ्रासीसी व्यापारियो ने अपनी फैक्ट्री स्थापित की।[११०] फ्रांसीसी अठारहवीं शताब्दी में एक प्रमुख शक्तिशाली व्यापारिक संस्था के रूप में स्वय को स्थापित कर चुके थे।[१११]

अंग्रेज

जहॉगीर के काल मे ही विलियम हाकिंस और सर टामसरो ने व्यापारिक सस्था खोलने की इजाजत प्राप्त की थी। औरंगजेब अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बनाने का इच्छुक नही था। लेकिन अंग्रेज व्यापारी अपने

---

[१०५] फैक्टरी रिकार्डस, १६६१–१६६४ ई०, पृ० ७१

[१०६] ट्रेवर्नियर, खण्ड २, पृ० १४०, तथा मान्सरेट, खण्ड ८, १६१२, पृ० १५६

[१०७] चटर्जी, पृ० १००, १६२, १६५ तथा शिशरोव, पृ० ११५

[१०८] शिशरोव, पृ० ११६

[१०९] कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, ख० ५, पृ० ७२

[११०] स्वनेशम मास्फेर, ख० १, पृ० ३२५ नवाब मुहब्बत खॉ, अखबार–ए–मुहब्बत {संपादित इलियट व डाउसन} भाग ८, पृ० २८८

[१११] शिशराव, पृ० ११७

चातुर्य से भारत मे पॉव जमाने मे सफल रहे। अग्रेजों के व्यापार का प्रमुख केन्द्र उत्तर भारत ही रहा। स्वर्ण के बदले मे अग्रेजो ने अपने व्यापार को बढ़ाया और सिल्क तथा सूती वस्त्रो का निर्यात किया। मुगलो द्वारा स्वर्ण का प्रयोग सिक्के तथा आभूषण बनाने मे प्रयुक्त होता था। अग्रेज व्यापारी दूसरी मुख्य वस्तु शोरा का भारत से निर्यात करते थे। इलाहाबाद, बनारस, गाजीपुर आदि से गगा, यमुना दोआब से भी शोरा निर्यात किया जाता था। चीनी की मॉग यूरोप में काफी अधिक थी। बंगाल इस समय उत्तरी भारत का प्रमुख व्याापारिक बदरगाह था। जहॉ वस्तुए भेजी जाती थी और अग्रेज व्यापारी इन्हे विदेशो से निर्यात करते थे। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक अग्रेज व्यापारी फ्रान्सीसी व्यापारियो के लिए प्रमुख शक्ति के रूप मे उभर गए और अब फ्रासीसियों के व्यापार पर कुठाराघात करते के प्रयास प्रारम्भ हो गये।[११२]

सिक्क एवं मुद्रा

प्राचीन काल से ही वस्तु विनिमय हेतु राज्य सिक्के एवं मुद्राओ का प्रचलन आरम्भ कर चुके थे। सल्तनत काल तथा मुगल काल में भी विभिन्न प्रकार के सिक्के जारी किये गये थे जिनकी कीमते अलग–अलग होती थी।

सल्तनत कालीन मुद्रा प्रणाली में इल्तुतमिश का शासन काल ऐतिहासिक महत्व रखता है। क्योकि उसी ने दिल्ली सल्तनत के दो प्रमुख सिक्को अर्थात चॉदी का टका और ताबे का जीतल प्रचलित किए।[११३] यह उल्लेखनीय है कि अलाउद्दीन की बाजार व्यावस्था के अन्तर्गत कीमतों की सूची में जीतल का विभाजन एक–तिहाई तक वर्जित किया गया है तथा चॉदी के सिक्के का प्रचलन सामान्य व्यवस्था के अन्तर्गत देखा जा सकता है।[११४] फरिश्ता के अनुसार अल्लाउद्दीन खिलजी के शासनकाल मे तनका एक तोले सोने अथवा चॉदी का होता था। चॉदी का प्रत्येक

---

[११२] नवाब मुहब्बत खॉ, अखबार–ए–मुहब्बत {सं० इलियट व डाउसन} भाग ८, पृ० २३४, २९५

[११३] नेल्सन राइट, 'क्वाएनेज एंड मेट्रोलोजी आफ दि सुल्तान्स आफ डेलही, पृ० ७०

[११४] नेल्सन राइट, पृ० ७२

तनका ५० ताम्बे के पोल (पैसे) के बराबर होता था जो जीतल कहलाता था, किन्तु इनके वजन के विषय मे कोई जानकारी नही है।[११५] अलाउद्दीन के समय मे एक तनका एक तोला के बराबर होता था। एक तोला में ५० जीतल (पोल) होने के विषय मे नेल्सन राइट का मत है कि एक तनका मे ४८ जीतल मे होने का अनुमान ५० जीतल की अपेक्षा अधिक सम्भावित है।[११६]

मुहम्मद तुगलक के शासन काल मे प्रचलित सोने व चॉदी के सिक्को के विभिन्न प्रकार तथा व्यापार मे इनके प्रयोग पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है।[११७] वस्तुत चौदहवी शताब्दी मे प्रचलित मुद्राओ के विषय मे ज्ञान के लिए शम्ससिराज अफीफ द्वारा फीरोज तुगलक के विषय मे दिया गया विवरण अपने आप मे महत्वपूर्ण है। अफीफ के अनुसार 'सुल्तान फीरोजशाह' ने विभिन्न प्रकार के सिक्के चलाये। सोने का तनका, चॉदी का तनका, सिक्कये चिहल व हस्तगानी (४८ जीतल मूल्य की मुद्रा), मोहर विस्त व पंजगानी (२४ जीतल के मूल्य की मुद्रा) द्वजदेहगानी (१२ जीतल के मूल्य की मुद्रा) दहगानी– (१० जीतल के मूल्य की मुद्रा) हस्तगानी (८ जीतल के मूल्य की मुद्रा), शशगानी (६ जीतल के मूल्य की मुद्रा) तथा मोहरे यक जीतल (एक जीतल की मुद्रा)[११८]

फीरोज शाह तुगलक के शासन काल मे सोने व चॉदी की मुद्रा की छोटी इकाई जीतल के साथ समानान्तर अनुपात ही निश्चित नही किया गया अपितु जीतल की इकाई आधी एवं चौथाई भी प्रचलित की गई जिससे लेन देने में पूर्ण सुविधा हो सके।[११९]

---

[११५] पूर्वोद्धत

[११६] नेल्सन राइट पृ०–७२,

[११७] अफीफ–३४४,

[११८] वही,

[११९] अफीफ–३४४,

एक चॉदी के तनके मे ४८ जीतल होने का अनुमान उक्त वर्णित तुगलक कालीन सामयिक विवरण से भी स्पष्ट होता है।

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि सल्तनत कालीन सुलतानो ने चॉदी के सिक्को का तॉबे के सिक्को मे विभाजन की व्यवस्था जो कि हिन्दू शासको के अन्तर्गत विद्यमान थी, चालू रखी।[१२०]

शर्की कालीन, टकसाल व मुद्रायें (१३६४–१४७६)

शर्की कालीन मुद्राओ में हमे सुलतान उस शर्क मलिक सरवर ख्वाजा जहॉ एव उसके दत्तक पुत्र मलिक मुबारक करनफल के नामो का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता है।[१२१] यद्यपि " मिरातुल इसरार" एव "जौनपुर नामा" मे यह उल्लेख मिलता है कि सुलतान–उस–शर्क ने– "अतावक–ए–आजम" की उपाधि धारण कर अपने नाम से खुब्बा व सिक्का प्रचलित किया।[१२२] परन्तु यह कथन अधिक विश्वसनीय है कि सुलतान–उस–शर्क की आन्तरिक इच्छा अपने नाम का खुब्बा तथा सिक्का जारी करने की थी, पर मृत्यु ने उसे ऐसा करने का अवसर नही दिया।[१२३] इस सम्बन्ध मे तबक ते अकबरी मौन है।

ख्वाजा जहॉ बनाने में ही व्यतीत हो गया। नवनिर्मित शर्की राज्य को वाह्य संकटो से बचाना ही उसका प्रथम उद्देश्य था। अत. मुद्रा तथा शासन व्यवस्था के सम्बन्ध में उसने कोई विशेष ध्यान नही दिया।[१२४]

इसी प्रकार मुबारक शर्की का शासन काल अत्यन्त अल्प मात्र एक वर्ष व कुछ महीना ही था। अत इतने अल्प समय मे वह भी मुद्राओ के सम्बन्ध मे कोई विशेष ध्यान दे पाया। इस प्रकार मुबारक शाह शर्की की भी कोई मुद्रा उपलब्ध नही होती

---

[१२०] के० एम० अशरफ, उक्त वर्णित, पृ०–२८८,

[१२१] तारीख फरिश्ता, जिल्द–२, पृ०–३०४,

[१२२] मिरातुल इसरार, फो–५४० अ, तथा जौनपुर नामा फो–४ अ,

[१२३] तारीखे फरीश्ता, जिल्द–२, पृ०–३०५,

[१२४] तारीखे फरिश्ता, जिल्द–२, पृ०–३०५,

है। जबकि कुछ इतिहासकार इस बात का जिक करते है कि ख्वाजा जहॉ की मृत्यु के पश्चात मलिक मुबारक करनफल गद्दी पर बैठा और अपना नाम मुबारक शाह शर्की रखकर उसने अपने नाम का खुब्बा पढ़वाकर तथा सिक्के जारी किये।[१२५]

कदाचित इन दोनो ही शासको ने मुद्राये जारी की थी, जिनका सग्रह पटना सग्रहालय एव अन्य स्थानो मे आज भी सुरक्षित है।[१२६] इनकी अस्पष्ट लिखावट अभी तक पढी नही जा सकी है। सम्भव है कि इन मुद्राओ मे ख्वाजा जहॉ एव मुबारक शाह शर्की की भी कोई मुद्रा हो।

जौनपुर के तृतीय शर्की शासक सुलतान इब्राहिम शाह शर्की (१४००—१४४० ई०) के शासन काल मे स्पष्ट रूप से मुद्राये प्राप्त हुयी है। इब्राहीम एव उसके उत्तराधिकारियो ने १४७६ ई० तक मुद्राएं ढालने का कार्य जारी रखा। जब तक बहलोल लोदी ने हुसेन शर्की को जौनपुर से निष्कासित कर पुन जौनपुर को दिल्ली के अधीनस्थ प्रान्तों मे सम्मिलित नहीं कर लिया।[१२७]

इस अवधि मे जौनपुर के सम्बन्ध में यह धारणा पुष्ट हो गयी कि जौनपुर एक टकसाल शहर है।[१२८]

अपने चालीस वर्ष की शासन अवधि में इब्राहिम शर्की ने अनेक प्रकार की मुद्राओं का प्रचलन किया। उसके उत्तराधिकारियो मे महमूद, मुहम्मद एव हुसेन शर्की ने भी इस कार्य मे प्रगति की।[१२९] इन शासको ने स्वर्ण मुद्राये, ताम्र मुद्रायें, चॉदी की

---

[१२५] हफ्ते गुलशन, फो०—११२, तथा सुबहे सादिक, फो०—१२६६ अ,

[१२६] सैय्यद हसन अस्करी, डिसकर्सिवनोट्स आन दि शर्की मोनार्की आफ जौनपुर (इण्डियन हिस्ट्री, काग्रेस प्रोसीडिंग्स, १९६०) भाग—१,
पृ०—१५४—६२,

[१२७] डि० ग० जौनपुर, पृ०—१७३,

[१२८] वही,

[१२९] डा० शेफाली चटर्जी, पृ०—२२७,

मुद्राए एव मिश्रित धातु की मुद्राओ को तीन चार प्रकार के विभिन्न वजनो मे दिल्ली की तत्कालिक मुद्राओ के अनुरूप ही ढाला ।[130]

इब्राहीम शाह शर्की की केवल एक मुद्रा को छोडकर, जिसमे दिल्ली की साधारण शैली का ही अनुसरण किया गया है, अन्य तीन शर्की शासको ने अपने पडोसी राज्य बंगाल के शासक जलालुद्दीन मुहम्मद से प्रभावित होकर मुद्राओ के विपरीत तथा अपनी परम्परागत कथा (पद्यो) को लिखने मे तुगरा लिपि का ही प्रयोग किया है।[131] सीधी ओर की लिखावट मे जिसका इब्राहिम एव महमूद के द्वारा भी प्रयोग किया गया था लिखा रहता था कि "इस्लाम के सर्वोच्च नेता के समय मे, विश्वास पात्र के सेनानायक का सहायक (नायब)।[132]

सुलतान हुसेन शाह शर्की द्वारा "नायब" शब्द हटा देने से अब जौनपुर मे भी दिल्ली शासको की भॉति ही सिक्के जारी होने लगे थे।[133]

"खलीफा, विश्वासपात्रों का सेनानायक

उसकी खिलाफत शाश्वत बनी रहे।[134]

पद्य शासक का नाम देता है एवं अन्तिम तीन शर्की शासकों की मुद्राओ पर उनकी वशावली का नाम भी अंकित होता है।[135]

- ब्राहिम शाह शर्की की मुद्राएं

शर्की शासन काल मे सुलतान इब्राहिम शाह शर्की प्रथम शासक था जिसने मुद्राओ का प्रचलन किया। उसने सोने, चॉदी, तॉबे तथा मिश्रित धातुओ की मुद्राए ढाली।[136]

---

[130] वही,

[131] सी० जे० ब्राउन, दक्वायस आफ इण्डिया (वाराणसी) १६७३, पृ०—८५,

[132] वही,

[133] डा० शेफाली चटर्जी, पृ०—२२७,

[134] सी० जे० ब्राऊन, पृ०—८५,

[135] थामस एडवर्ड, दि कानिकल्स आफ दि पठान किंग्स आफ देहली (दिल्ली, १६७६ ई०) पृ०—३२२,

स्वर्ण मुद्रा

इब्रहिम शाह शर्की की सोने की मुद्राए दुर्लभ है। उसने इस धातु में दो प्रकार की मुद्राओ को प्रचलित किया।

सुलतान की प्रथम प्रकार की सोने की मुद्राए १४८ से १७५.४ ग्रेन के साधारण वजन में बनायी गयी थी, यह मुद्राए फतह खॉ तुगलक की मुद्राओ से निकट साक्य रखती थी।[१३७] इन मुद्राओ पर निम्नलिखित पंक्तियॉ है।

मुद्रा में सीधी सोरअल सुलतान–उल–अजन–सक्सउल दुनियॉ व अल–दीन अबुल मुजफ्फर इब्राहिम शाह सुलतानी खुलद मुमालक तलू अकित है। मुद्रा की उल्टी ओर क्षेत्र मे फी–जमानी–ल–अल इमाम अमीर उल मोमनीन अबुल फतह खुलद खिलाफ तहु अकित है। हाथियो मे परब–प्रजा अल दीनार फी वनह अहद लिखा हुआ है।[१३८] इस प्रकार की मुद्राए ब्रिटिश म्यूजियम मे सुरक्षित है।

सुलतान इब्राहिम शाह शर्की की सोने की मुद्रा मे द्वितीय प्रकार की मुद्रा तुगरा लिपि में थी। इस प्रकार की सोने की मुद्राएं बंगाल के शासक जलालुद्दीन मुहम्मद शाह द्वारा प्रचलित मुद्राओ के अनुकरण पर बनाई गयी थी। इस प्रकार की मुद्राओं पर लिखी प्रवृतियॉ (सीधी ओर प्रथम प्रकार की मुद्राओ के सदृश है) केवल विश्व[illegible]त्र का सेनानायक उपाधि को [illegible]त्र का सहायक सेनानायक मे परिवर्तित कर दिया गया है।[१३९]

---

[१३६] डॉ० शेफाली चटर्जी, पृ०–२२८,

[१३७] थामस, पृ०–२९८,

[१३८] वहीं, पृ०–३२१,

[१३९] डॉ० शेफाली चटर्जी, पृ०–२२९,

मुद्राओ का उल्टीतरफ इब्राहिम शाह ने अपने धार्मिक विश्वास को इन शब्दो मे व्यक्त किया है।

वह जो दयालु के अस्तित्व मे विश्वासी है।

अबुल मुजफ्फर इब्राहिम शाह, सुलतान।।[१४०]

इब्राहिम शाह शकी की इस प्रकार की मुद्राओ का वजन १७२ से १७८.५ ग्रेन तक है।[१४१]

इन स्वर्ण मुद्राओ की प्रमुख विशेषता यह है कि सीधी ओर के मुख्य अक्षरो के नीचे की ओर काफी बढा चढ़ाकर लिखागया है। उन पर जो पक्तियाँ लिखी गयी वे भी अपवाद थी। जिससे ऐसा लगता है कि यह कार्य अपूर्ण उपादो से किया गया था। अच्छी टक्साल मे ऐसा कार्य नही हो सकता था।[१४२]

चाँदी तथा ताँबे की मुद्राएं

सुलतान इब्राहिम शाह शर्की ने चाँदी तथा ताँबे के सिक्को को भी प्रचलित किया। परन्तु सुलतान इब्राहिम शाह शर्की की सोने, चाँदी, ताँबे तथा मिश्रित धातुओं मे ढाली गयी मुद्राओं में से उसके शासन काल के प्रारम्भिक दिनो मे ढाली गयी चाँदी एवं ताँबे की मुद्राएं बहुत ही दुर्लभ है।[१४३]

इब्राहिम शाह शर्की का एक वर्गाकार चाँदी का सिक्का पाया गया है, जो उसकी स्वर्ण मुद्रा के दूसरे प्रकार के अनुरूप ढाला गया है। इसमें केवल इतना अन्तर है कि सीधी ओर की पंक्तियों को गोलाकृत में लिखने के स्थान पर वर्गाकार रूप मे लिखा गया है। इस प्रकार के चाँदी तथा ताँबे के सिक्को का वजन १४० ग्रेन है। इनकी लिखावट निम्नवत् है–

---

[१४०] पूर्वोद्धत,
[१४१] थामस, पृ०–२६८,
[१४२] थामस, पृ०–३२१,
[१४३] एच० नेल्सन राइट, जिल्द–२, पृ०–२०६–७,

सीधी ओर– "इब्राहिम शाह सुलतानी सखुलदत मुमालकतहु"

उल्टी ओर– "अल खलीफा अमीर उल मोमनीन खुलदत खिला फतहु ८१८"[१४४]

एक दूसरे प्रकार की चॉदी– तॉबे की मुद्रा थी जिसका वजन ३६ ग्रेन है, प्राप्त हुयी है। इरा मुद्रा की निश्चित तिथि ३६ ग्रेन है, प्राप्त हुयी है। इस मुद्रा की निश्चित तिथि ज्ञात नही है। इस पर ८२२, ८२४, ८३६ एव ८४४ हि० तक की तिथियॉ मिलती है। इस पर लिखा है–

सीधी ओर– "इब्राहिम शाह सुलतानी"

उल्टी ओर– "खलीफा अबुल फतह ८३६[१४५]

उडीसा के सम्बलपुर जिले के अमरा सब डिवीजन मे स्थित देवगढ से प्राप्त जौनपुर के शासकों की ७१ ताम्र मुद्राओं के सग्रह मे से १२१ इब्राहिम शाह शर्की की, ३३ महमूद, ४ मुहम्मद एव २२ हुसैन शाह शर्की एवं मदन देव की है, जो शर्की सामन्त के रूप मे गोरखपुर तथा चम्पारन का शासक था।[१४६]

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि इब्राहिम शाह शर्की ने तॉबे के सिक्के ढाले थे जो मिश्रित न होकर शुद्ध तॉबे के बने हुए थे।

१८ दिसम्बर १६४१ ई० को ५० ताम्र–मुद्राओं का एक समूह बिहार के अर्न्तगत पिपरबर गॉव के एक धान के खेत में पाया गया था।[१४७]

---

[१४४] थामस, पृ०–३२१,

[१४५] थामस, पृ०–३२१,

[१४६] इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस प्रो० सी० (अलीगढ, १६६०) भाग–१, पृ०–१५६,

[१४७] एस०ए० शेरे (किंगस आफ द जौनपुर डाइनेस्टी एण्ड देयर क्वायनेज (जे० वी० ओ० आर० एस०) पटना–१६४२, जिल्द–२८ भाग–३, पृ०–२८५, उद्घृत डॉ० शैफाली चटर्जी, २८५–८७,

महमूद शाह शर्की की मुद्राएं

सुलतान इब्राहिम शाह शर्की की मृत्यु के पश्चात् १४४० ई० मे उसका ज्येष्ठ पुत्र महमूद शाह जौनपुर के सिहासन पर बैठाा। उसने भी अपने पिता इब्राहिम शाह शर्की के समान सोन, चॉदी तथा तॉबे की मुद्राओ का प्रचलन किया।

स्वर्ण मुद्रा

महमूद शर्की ने अपने पूर्वज (इब्राहिम शाह) द्वारा प्रचलित द्वितीय प्रकार के सिक्को को ही ढाला। मूहमूद शाह के इस प्रकार के सिक्को की उपरी पक्तियॉ इब्राहिम शाह की स्वर्ण मुद्राओ के ही अनुरूप है–

महमूद शर्की के सिक्को पर निम्न पंक्तियॉ अकित है–

गोला कृति मे– "फ्री जमानिल इमामी नायबि अमीर

उलमोमनीन अबुल फतह खुलदत खिलाफहु।"[१४८]

इसके विपरीत ओर की पक्तियॉ जो तुगरा लिपि है, पृथक है। महमूद शर्की द्वारा प्रचलित स्वर्ण मुद्राओ की पंक्तियॉ इस प्रकार है।

तुगरा लिपि में

"सुलतान सैफुद्दुनिया वा उद्दीन अबुल मुजाहिद महमूद बिन इब्राहिम।"[१४९] महमूद के इस प्रकार के सोने के सिक्के का वजन १७५.२ ग्रेन है एव इनके ढालने की तिथि ८५५ हि० है।[१५०]

चॉदी की मुद्राएं

---

[१४८] सी० जे० ब्राउन, द क्वायन्स आफ इण्डिया, पृ०–८५, उद्धत डॉ शैफाली चटर्जी, पृ०–८५,

[१४९] वही,

[१५०] थामस, पृ०–३२१,

महमूद शर्की की एक चॉदी की मुद्रा जो १७६ ग्रेन वजन की है, पायी गयी है। यह महमूद के द्वितीय प्रकार के सोने के सिक्के के अनुरूप है। महमूद शर्की के शासन काल मे कुछ शुद्ध चॉदी के सिक्के भी ढाले गये, परन्तु वे नितान्त दुर्लभ है।[१५१]

चॉदी तथा तॉबे की मिश्रित मुद्रा

महमूद शाह ने चॉदी एवं तॉबे की मिश्रित मुद्राओ का भी प्रचलन किया। इस प्रकार की मुद्राएं हि० ८४५, ८४६, ८४९ तथा ८५६ मे ढाली गयी। इनमे सिक्को के दोनो तरफ इस प्रकार लिखा है–

सीधी ओर– "महमूद शाह, इब्न इब्राहिम शाह सुलतानीखुलदत मुमालकतहू।

उल्टी ओर–" अलखलीफा अमीर उल मोमूनीन सखुलदत खिलाफतहु ८४५[१५२]

ताम्र मुद्रायें

महमूद शाह ने अपनेनाम से एक प्रकार की ताम्र मुद्राओ का भी प्रचलन प्रारम्भ किया, जिनमें पंक्तियॉ गोलाकृत मे लिखी गयी। इसे आगे चलकर उसके उत्तराधिकारियों ने भी जारी रखा।[१५३]

इस प्रकार की ताम्र मुद्राओ का वजन १४४ ग्रेन बताया गया है, जो हि० ८४४ में ढाली गयी। सिक्के के दोनो तरफ की लिखावट इस प्रकार है.–

सीधी ओर– "महमूद शाह बिन इब्राहिम शाह सुलतान"

उल्टी ओर– "नायब अमीर उल मोमनीन ८४४[१५४]

---

[१५१] थामस, पृ०–३२२,
[१५२] थामस, पृ०–३२२,
[१५३] सी० जे० ब्राउन,
[१५४] थामस, पृ०–३२२,

१६४१ ई० के अनुसन्धान से प्राप्त २५ ताम्र मुद्राये सुलतान महमूद शाह शर्की की बताई जाती है। इसमे सर्वप्रथम ढाली गयी मुद्रा की तिथि ८४६ हिजरी है, जबकि अन्तिम तिथि ८५७ हिजरी है। इस प्रकार की ताम्र मुद्राओ का वजन ६६ ५८ ग्रेन से ७१८० ग्रेन तक है। इसमे सीधी तरफ "खलीफा अबुल फतह"तथा उल्टी ओर "महमूद शाह, इब्राहिम शाह सुलतानी" लिखा गया है।[१५५]

मुहम्मद शाह की मुद्राएं

सुलतान महमूद शाह की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र मुहम्मद शाह के नाम से ८६२ हि० मे सुलतान बना। उसने मात्र पॉच महीने शासन किया।[१५६]

चॉदी एवं तॉबे के मिश्रित सिक्के

मुहम्मद शाह के पॉच महीने के उल्पकालीन शासन मे एक मिश्रित धातु एवं तॉबे के सिक्के प्राप्त होते हैं। मिश्रित धातु के सिक्के मे ८६१, ८६२ एव ८६३ तिथि दी है। इसकी लिखावट इस प्रकार है–

सीधी ओर– मुहम्मद शाह बिन, महमूद शाह बिन, इब्राहिकम शाह सुलतानी खुलदत मुमालफतहु।

उल्टी ओर– अल खलीफा अमीर उल मोमनीन खुलदत खिलाफतहु।[१५७]

तॉबे की मुद्रा

मुहम्मद शाह के ८६१ हिजरी के तॉबे के सिक्के भी प्राप्त हुए है जिन पर उनके नाम इस प्रकार अंकित है–

सीधी ओर– "मुहम्मद शाह बिन, महमूद शाह बिन, इब्राहिम शाह सुलतान।

---

[१५५] किंग्स आफ दि जौनपुर डायनेस्टी एण्ड देयर क्वायनेज (जे० वी० ओ० आर० एस०) जिल्द–२८, भाग–३, पृ०–२८७,८६, उद्धत

[१५६] नेल्सन राइट, जिल्द–२, पृ०–१६४,

[१५७] थामस, पृ०–३२२,

उल्टी ओर– "नायब अमीर उल मोमनीन,८६१[९५८]

इसके अलावा तॉबे की दो मुद्राये जिनकी तिथि ८६१ तथा ८६२ है,[९५९] मुहम्मद शाह के शासन काल की मानी जाती है। मुहम्मद शाह की इस प्रकार की तॉबे की मुद्रा का वजन ६६ ६६ ग्रेन से ७११३ ग्रेन है।[९६०]

हुसैन शाह शर्की की मुद्राएं

मुहम्मद शाह की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई हुसन शाह ८६२ हि० मे जौनपुर का सुलतान बना। उसके काल की प्रमुख मुद्राए निम्नवत है:–

स्वर्ण मुद्रा– सुलतान हुसेन शाह ने अपने शासन काल मे सोने का सिक्का ढलवाया था। इस प्रकार के सिक्के का वजन १८०.३ ग्रेन है। यह इब्राहिम शर्की की मुद्रा के अनुरूप ढाला गया है, केवल हाशिया मे लिखी हुयी लिखावट को पूर्णतया मिटा दिया गया है।

ताम्र–मुद्रा

तुसलतान हुसेन शाह शर्की द्वारा प्रचलित तॉबे के सिक्के ८६५ हिजरी में ढाले गये जिनका वजन १५० ग्रेन है। इस प्रकार मुद्रा पर लिखावट निम्नवत् है–

सीधी ओर– हुसेन शाह बिन, महमूद शाह बिन, इब्राहिम शाह सुलतान।

उल्टी ओर– नायब अमीर उल मोमनीन,८६५[९६१]

इसके अतिरिक्त हुसेन शाह के हिजरी–८८०, ८८६, ८८७ एव ६०० के भी सिक्के प्राप्त हुए है।[९६२]

---

[९५८] पूर्वोद्धत,

[९५९] किंग्स आफ दि जौनपुर डाइनेस्टी एण्ड देयर क्वायनेज (जे० वी० ओ० आर० एस०) जिल्द–२८, भाग–३, पृ०–२६४,

[९६०] वही,

[९६१] थामस, पृ०–३२२,

[९६२] वही,

१४६१ ई० के अनुसधान से प्राप्त मुद्राओं मे हुसेन शाह शर्की की केवल एक ताम्र मुद्रा प्राप्त हुयी है। इसकी तिथि हिजरी ८६३ बतायी जाती है। इस सिक्के का वजन ७२.२० ग्रेन है। इस प्रकार के सिक्के की लिखावट निम्न है.–

सीधी ओर– खलीफह अबुल फतह।

उल्टी ओर– हुसेन शाह बिन, महमूद शाह बिन, इब्राहिम शाह सुलतानी–८६३[१६३]

८६३ हि० का सिक्का सुलतान हुसैन शाह शर्की के, दिल्ली सुलतानो, बहलोल लोदी एव सिकन्दर लोदी के साथ किये गये संघर्ष का परिचाय है।[१६४]

१६५० ई० मे उडीसा मे बमरा सब डिवीजन से प्राप्त ७१ताम्र मुद्राओ मे से २२ मुद्रायें सुलतान हुसैन शाह शर्की की मानी जाती है। जिनमे उसके नाम के साथ चम्पारन के मदन सिन्हा (१४५३–५८ ई०) का नाम भी अकित है।[१६५]

बारबक शाह के सिक्के

हुसैन शाह शर्की के पश्चात् जौनपुर में बारबक शाह ने अपने नाम से सिक्के ढाले। इसके चॉदी एवं तॉबे के सिक्के जिनका वजन १२० ग्रेन माना गया है, हिजरी ८९२–८९४ में ढाले गये हैं। बारबर शाह के इन सिक्कों मे विशेष रूप से "शहर जौनपुर" का उल्लेख किया गया है। इन सिक्को पर निम्न पक्तियॉ अंकित है–

बारबक शाह सुलतान नायब अमीर उल मोमनीन बशहर जौनपुर,८९२[१६६]

---

[१६३] किग्स आफ दि जौन डायनेस्टी एण्ड देयर क्वायनेज, (जे० वी० ओ० आर० एस०) जिल्द,२८, भाग–३ पृ०–२८९, उद्धत–
डॉ० शैफाली चटर्जी, पृ०–

[१६४] वही, पृ०–२९५,

[१६५] सैय्यद हसन अस्करी, बिहार इन दि टाइम आफ दि लास्ट टू लोदी सुलतान आफ देलही, जे० बी० आर० एस० (सित० १९५५)
पृ०–३५८–५९,

[१६६] थामस, पृ०–३७७,

जौनपुर गजेटियर से ज्ञात होता है कि कुछ अनिर्दिष्ट ताम्र–मुद्राये एक या अधिक अल्पकालीन शासको द्वारा ढाली गयी थी, जो किसी जलालुद्दीन शासक के नाम से प्रचलित थी।[१६७]

जौनपुर के शर्की शासकों के सिक्को की अपनी विशेषतायें थी। सबसे आश्चर्यजनक तथ्य है कि जौनपुर के सिक्को में जो उस समय के समीपवर्ती स्थानों से प्रामाणिक रूप से पाये गये थे, विभिन्न प्रकार की दशमलव प्रणाली प्रचलित थी।[१६८]

इस प्रकार स्थानीय पूर्वी टक्सालो ने स्पष्ट रूप से ऊँचे औसत के सिक्के ढाले जिनका वजन ताँबे तथा सोने दोनो ही धातुओ से ज्यादा होता था। सोने के सिक्को मे १८० ग्रेन का एक तोला माना गया है, जिसे भारत के परवर्ती अग्रेजी सरकार ने भी स्वीकार कर उसे सर्व भारतीय वजन के औसत मापदण्ड के रूप मे माना।[१६९]

बहलोल लोदी ने बहलोली नामक सिक्का चलाया जो शेरशाह व अकबर कालीन दाम की तरह तनका का ४०वॉ भाग होता था।[१७०] सिकन्दर लोदी के शासन काल मे ताँबे का सिक्का प्रतिपादित किया गया। जो एक चॉदी के सिक्के का २०वॉ भाग था। इस तरह तनका के स्थापित मूल्यांकन के अनुपात मे सिकन्दरी तनका ६४/२० अथवा
३२ जीतल तथा शेरशाही एवं अकबरी दाम ६४/२० अथवा १.६ जीतल था।[१७१]

इसके साथ ही प्रमाणित व सर्वमान्य मुद्रा के प्रचलन का श्रेय मुगलो को जाता है। मुद्रा कीसुन्दरता के साथ ही इसे टिकाऊ बनाने के लिए उच्चकोटि की धातु का प्रयोग किया गया। साथ ही प्रशासनिक एवं व्यापारिक कार्यो के लिए नकद विनिमय

---

[१६७] डि०ग० जौनपुर, पृ०–१७३,
[१६८] थामस, पृ०–३२३–२४,
[१६९] वही,
[१७०] के० एम० अशरफ, उक्त वर्णित पृ०–२८८,
[१७१] वही,

की आधारभूत इकाई चॉदी का सिक्का था जिसे रूपया या रूपी कहा जाता था।[१७२] मुद्रा की यह इकाई अकबर ने शेरशाह से विरासत मे प्राप्त की थी जो परिमाण के अनुसार अपेक्षाकृत भारी थी।[१७३] अकबर के काल मे तॉबे का सिक्का दाम प्रचलित था। ४० दाम एक रूपये के बराबर होता था।[१७४] "दान" को "पैसा" भी कहा जाता था और "आधा दाम" को "अधेला" कहा गया।[१७५] औरंगजेब नेअपनेसमय मे नया "दान" आरम्भ किया जो पुराने दाम के मुकाबले लगभग वजन मे १/३ था। १६७१ ई० के बाद यह समस्त भारत मे फैल गया।[१७६] सोने, चॉदी और तॉबे के अन्य सिक्के भी जारी किये गये जो कीमत में अलग–अलग थे।[१७७] बहुत से सूबो मे अलग सिक्के भी जारी किये गये थे। पुराने सिक्के जब चलन से बाहर हो जाते थे तो उन्हे टकसाल मे देकर नए सिक्के कीमत के अनुसार प्राप्त किये जा सकते थे अथ्वा ऋणदाता या धन वाले इन सिक्को को बदल देते थे। मुगल कालीन सिक्के को टकसाल मे नया स्वरूप देकर उन्हें बाजार में जारी किया जाता था।[१७८] टकसाल के

---

[१७२] इरफान हबीब, द करेन्सी सिस्टम ऑफ द मुगल एम्पायर (१५५६–१७०७), मेडिवल इण्डिया क्वार्टली, ४ न०, १–२ अलीगढ–१६६०,

[१७३] वही,

[१७४] आइने अकबरी, क्वायन्स, पृ०––३१–३२, मीरात, भाग–१ पृ०–२६७, इरफान, पृ०–८१, चटर्जी, पृ०–६६, हरिशंकर श्रीवास्तव, मुगल

[१७५] मोरलैण्ड, पृ०–३३१, मार्शल, पृ०–४१६, इरफान, पृ०–३७१, आइने अकबरी, क्वायन्स, पृ०–३१,३२,

[१७६] आइनेअकबरी, जैरेट, भाग–२ पृ०–३५ से ३७, हरिशंकर श्रीवास्तव, औरंगजेब के समय मे एकदाम का वजन एक तोला ८ सुर्ख ३२३ ग्रेन था। तॉबे के सिक्के का मूल्य घटना बढता रहता था और उसी आधार पर दाम और रूपये का मूल्य भी नियन्त्रित होता था। पृ०–१७२, इरफान, हबीब, पृ०–३८१,

[१७७] शिशरोव, पृ०–३३१,

[१७८] मांसरेट कमेटेरियस, पृ०–२०७, आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव, अकबर दि ग्रेट, भाग–२, पृ०–१५५, हरिशंकर श्रीवारत्तव, पृ०–१३५,

१७२, होदी वाला, स्टडीज इन इण्डो मुस्लिम हिस्ट्री, पृ०–२३५ से २४४,

प्रमुख अधिकारी "दरोगा" तथा "सराफी" थे। सराफी का उत्तरदायित्व थाकि सिक्के शुद्ध धातु के हो और उनमे मिलावट न हो।[१७६]

औरगजेब के काल मे चॉदी के रूपये और सोन की "मुहर" के भार में वृद्धि की गयी।[१८०] पूर्वी उत्तर प्रदेश बगाल और बिहार में ये सिक्के समान रूप सेप्रचलित थे। बगाल मे "कौडी" काफी लोकप्रिय थी। साखपत्रो के रूप मे हुण्डी का भी प्रचलतन था। हुण्डी आधुनिक बैको मे चलने वाले चेक के समान था। इसका प्रयोग व्यापारी अपने व्यापार के लिए करते थे और यह आपसी विश्वास पर आधारित था। और "सराफ" समुदाय के लोग विदेशियो तथा राज दरबारियो को भी व्यापार हेतु ऋण प्रदान करते थे। अट्ठारहवी शताब्दी में "कोठी" नामक स्थान बैकिंग कार्य के लिये प्रयुक्त होता था। विदेश व्यापार के लिए प्रयुक्त होने वाला एक रूपये का सिक्का २.३ से २.५ शिलिंग के बराबर था। जबकि एक "पैगोडा" ६ से ६ शिलिग के बराबर था। एक पैगोडा की कीमत ३ से ३.५ रूपये के बराबर होती थी। मनूची लिखता है कि सूरत की टकसाल में नए सिक्के बनाने से राज्य को नौ लाख रूपये की वार्षिक आय होती थी।[१८१]

बहादुर शाह के काल में विभिन्न सिक्के ढाले गये। तॉबे का नया सिक्का "आलमगीरी फुलूस" ढाला गया। इस सिक्के का वजन पहले १४ माशा था जिसे बाद मे २१ माशा कर दिया गया। बहादुर शाह के शासन में प्रारम्भ से ज्यादा वजन वाले तॉबे के सिक्को को पुनः टकसाल में ढाला गया। इन सिक्कों पर बादशाह का नया नाम "सिक्का–ए–मुबारक–ए–बादशाह आलम गाजी" वाक्य अंकित किया गया।[१८२]

---

[१७६] आइने अकबरी, ब्लाखमैन, भाग–१, पृ०–१८, होदीवाला स्टडीज इन इण्डो मुस्लिम हिस्ट्री, पृ०–२३६, २४४, आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव अकबर दीग्रेट, भाग–२, पृ०–२०७ से २०६ हरिशकर श्रीवास्तव, पृ०–१७०,

[१८०] इरफान, पृ०–३८१,

[१८१] मनूची, भाग–२, पृ०–३२३६, हरिशंकर श्रीवास्तवपृ०–१३६,

[१८२] दानिश मन्द खान अली, बहादुर शाहनामा, इर्विन, लेटर मुगल्स, खण्ड–१, पृ०–२४०,

जहॉदार शाह का शासन काफी कम समय के लिए रहा। जहॉदार शाह ने अल्पकाल के शासन काल मे अपने नाम से सिक्के जारी किये और उस पर निम्नलिखित पद्य की पक्तियॉ अकित की गयी।[१८३]

१ जाद सिक्का बार जार चुन मिहर साहब–ए–करम जहॉदार शाह पादशाह–ए–जहान"जहॉदार शाह, विश्व का शासक, ईश्वर का समुच्चय बोधक, सूर्य के समान चमकता है।"

प्रयुक्त होने वाला एक रूपये का सिक्का २३ से २५ शिलिग के बराबर था जबकि एक "पैगोडा" ६ से ८ शिलिग के बराबर था। एक पैगोडा की कीमत ३ से २५ रूपये के बराबर होती थी। मनूची लिखता है कि सूरत की टकसाल मे नए सिक्के बनाने से राज्य को नौ लाख वार्षिक आय होती थी।[१८४]

शाह के काल में विभिन्न सिक्के ढाले गये। तॉबे पर नये शासक का नाम ढाला गया और वजन पहले १४ माशा और बाद में २१ माशा कर दिया गया। बहादुर शाह के शासन के प्रारम्भ मे ज्यादा वजन वाले तॉबे के सिक्को को पुन ढाला गया। इन नए सिक्कों पर बादशाह का नया नाम "सिक्का–ए–मुबारक–ए–बादशाह शाह आलम गाजी "वाक्य तॉबे के सिक्कों पर ढाला गया।[१८५]

जहॉदार शाह का शासन काफी कम समय के लिए रहा। जहॉदार शाह ने अल्प काल के शासन काल में अपने नाम से सिक्के जारी किये और उस पर निम्नलिखित कविता अकित की गयी–

१– जाद सिक्का बार जार चुन मिहर साहिब–ए–करम जहॉदार शाह, पादशाह–ए–जहान "जहॉदार शाह, विश्व का शासक, ईश्वर का समुच्चय बौधक, सूर्य के समान

---

[१८३] इर्विन, लेटर मुगल्स, खण्ड–१, पृ०–२४०,

[१८४] बहादुरशाह नामा, इर्विन, पृ०–१४१ लेटर मुगल्स बा[illegible] खान अली,

[१८५] ए० मनूची, खण्ड–२, हरिशंकर श्रीवास्तव, पृ०–१३६,

सोने जैसा चमकता है।'' जहाँदार शाह ने अपने सिक्को पर दूसरा पद्य अंकित कराया–

२– दार अफाक जाद सिक्का चुन मिहर ओ माह अबुल फतह–ए–गाजी, जहादार शाह, ''क्षितिजो पर सूर्य व चन्द्रमा की भाँति सिक्के प्रचलित करता था अब्दुल फतह विजेता, जहाँदार शाह ने एक अन्य कविता भी अपने सिक्को पर ढलवाया–

३– जाद सिक्का दार मुल्क चुन मिहर ओ माह शाहन शाह–ए–गाजी, जहाँदार शाह क्षितिजो पर सूर्य व चन्द्रमा की भाँति सिक्के प्रचलित करता था, जहाँदार शाह, राजाओ का राजा और एक विजेता–जहाँदार शाह मृत्यु के बाद उसे ''खुलद आरामगाह'' अर्थात ''र्स्वग मे शान्तिपूर्ण'' की उपाधि प्रदान की गयी।

जहाँदारशाह की मृत्यु के बाद १७१२ ई० मे फरूखसियर ने मुगल साम्राज्य का शासन संभाला। उसके समय २१ सूबो मे सक मात्र १५ सूबो मे टकसाल स्थापित की गयी थी। जिन छ. सूबो में टकसाल स्थापित की गयी थी उनमें पूर्वी सउत्तर प्रदेश का इलाहाबाद सूबा भी शामिल था।[१८६]

फरूखसियर के शासन काल मे एक नया वर्गाकार सिक्का जारी किया गया। इस विचित्र सिक्के को ''दिरहम–ए–शराई'' कहा गया। इसका वजन १७६ ग्रेन था और इसकी कीमत ३ आना और ८ पाई थी। उड़ीसा में कुछ सिक्कों का भार १६६.५ ग्रेन था तथा सबसे अधिक भार का सिक्का १८७ ग्रेन था। लेकिन सामान्यतया सिक्का १७६ ग्रेन का होता था। इसकी परिधि ०.९० इंच थी। फरूखसियर ने अपने शासन काल में ढाले गये सिक्कों पर पद्य की प्रवृत्तियाँ अंकित कराई।[१८७]

---

[१८६] होदीवाला स्टडीलज इन इन्डो मुस्लिम हिस्ट्री पृ०–१२५, हरिशंकर श्रीवास्तव, पृ–१७२,

[१८७] इर्विन, लेटर मुगल्स, खण्ड–१, पृ०–३९६, ४००,

१– सिक्काजाद, अल फजल–ए–हक, बार सिम–ओ–जार पादशाह–ए–बहार–ओ–बार, फारूखसियर "अल्लाह के करम से उसने फरूखसियर चॉदी व स्वर्ण मुद्राए टकित करवाई।"

इसी प्रकार रफी–उद–दौला के शासन काल मे भी सिक्के जारी किये गये।[१८८] रफी–उद–दौला के शासन काल के सिक्के सोने और चॉदी के प्राप्त हुए है। इनमे बहुत से सिक्के इलाहाबाद सूबे से, तथा अवध सूबे के जो क्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश मे आते थे, प्राप्त हुए है।

इस प्रकार ये कहा जा सकता है कि समाज के विभिन्न वर्गो ने व्यापार मे पूर्णतया रूचि ली। राजसी परिवार और कुलीन वर्ग के समुदाय ने भी व्यापार मे रूचि लेते हुए व्यक्तिगत लाभ की भी कामना की। यद्यपि कालान्तर मे शनै शनै व्यापारियो के एक विशेष वर्ग ने एकाधिकार स्थापित किया जिसने भारत के राजनीतिक, सामाजिक और सास्कृतिक पटल पर विशेष प्रभाव छोड़ा।

---

[१८८] इर्विन, लेटर मुगल्स, खण्ड–१, पृ०–४३२,

अध्याय पंचम
बनारस का सांस्कृतिक इतिहास

धार्मिक उत्सव एवं त्योहार

प्राचीन काल से ही धार्मिक उत्सवो एव त्योहारो को मनाये जाने की विशेषता भारतीय समाज का प्रमुख अग रही है। मध्यकालीन भारत मे हिन्दू मुस्लिम दोनो ही सम्प्रदाय अपने त्योहारो को बड़ी धूम धाम से मनाते थे। इस काल मे हिन्दू एव मुस्लिम दोनो के अलग–अलग, त्योहार हुआ करते थे तथा सभी त्योहारो को मनाने का ढग भिन्न–भिन्न था। हिन्दुओं एव मुस्लिम के धार्मिक उत्सव एव त्योहारो की रूपरेखा इस प्रकार है।

हिन्दू तीज–त्योहार एवं तीर्थयात्रा

हिन्दुओ के त्योहार प्राय. वर्ष की सभी महत्वपूर्ण ऋतुओ मे होते थे। हिन्दू त्योहार अधिकाशत. महिलाओ एव बच्चो द्वारा उत्साह पूर्वक मनाए जाते थे।[1] चैत्रमास की ग्यारहवीं तारीख को 'एकादशी' हिन्दुओ द्वारा एक त्योहार मनाया जाता था, जिसे "हिडोली" चैत्र कहते थे। इस अवसर पर लोग देवगृह तथा वासुदेव के मन्दिर में एकत्र होते थे तथा यह त्योहार मनाते थे, अपने घरों मे भी लोग पूरे दिन उत्सव मनाते थे।[2]

चैत्र की पूर्णिमा को "बहन्त" (बसन्त) नामक त्योहार होता था जिसमे महिलायें वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर अपने पति से उपहारों की मॉग करती थी। चैत्र मास की ही बाइसवी तारीख को चैत्र षष्ठी नामक त्योहार होता था, जिसमे भगवती की उत्साह एवं उल्लास के साथ पूजा की जाती थी।[3] भाद्रपद के महीने मे जब चन्द्रमा दसवें कक्ष माघ में रहता था, तो वे एक त्योहार मनाते थे, जिसे पितृ पक्ष कहा जाता

---

[1] अलबरूनीज, इण्डिया 2, सचाऊ पृ०१७८ – १८४

[2] अलबरूनीज, इण्डिया सचाऊ पृ० १७८

[3] वही,

था।[४] अर्थात अपने पूर्वजो का पखवारा। क्योकि चन्द्रमा इस कक्ष मे उस समय प्रवेश करता है। जब नवचन्द्र का समय समीप रहता है वे अपने पूर्वजो के नाम पर इस पखवारे मे भिक्षुओ को भिक्षा प्रदान करते है। यह त्योहार आज भी परम्परागत तरीके से मनाया जाता है।

वैशाख की तृतीया को एक त्योहार होता था जिसे गौर–त्र {गौरी तृतीया} कहा जाता है। इस अवसर पर पर्वत हिमवत की पुत्री और महादेव की पत्नी गौरी की पूजा होती थी।[५]

ज्येष्ठ के प्रथम दिन, जो कि नये चन्द्रमा का दिन होता है, हिन्दू एक उत्सव मनाते थे तथा अनुकूल शकुन करने के लिए जल मे सभी बीजो के प्रथम फलो को फेकते थे। इस मास की पूर्णिमा के दिन महिलाओ का त्योहार पडता था जिसे "रूप–पका" कहा जाता था।[६]

हिन्दुओ के सबसे महत्वपूर्ण त्योहार बसन्त पचमी, जन्माष्टमी, होली, दीपावली, दशहरा, शिवरात्रि और एकादशी आदि थे। रामनवमी और रक्षाबन्धन भी धूमधाम से मनाए जाते थे।[७] बसंत पंचमी का त्योहार आगमन का पूर्व सूचक था, जो माघ मास मे मनाया जाता था।[८] बसंत पंचमी के अवसर पर सरस्वती पूजन भी होता था।[९] इस अवसर पर गीत गाये जाते थे, जिसे "चवरी" कहा जाता था तथा लोक नृत्य का भी आयोजन होता था।[१०]

होली जैसा कि आज भी मनाया जाता है, यह हिन्दुओ का सबसे महत्वपूर्ण व लोकप्रिय त्योहार था। यह फालगुन मास के शुक्ल पक्ष के अन्तिम दिन मनाया जाता

---

[४] पूर्वोद्धत, पृ० १८०

[5] वही, पृ० – १७६

[6] अलबरूनीज, इण्डिया २ {सचाऊ} पृ० १७८, मृगावती, पृ० ७६

[7] मो० यासीन, पृ० ७१, १०२ और नीरा दरबारी, पृ० १२१, १२२

[8] आइने अकबरी, खण्ड ३ पृ० ३१७, ३२१

[9] मो० यासीन, पृ० ७१, और नीरा दरबारी, पृ० १२१, १२२

[10] मलिक मोहम्मद जायसी, पद्मावत, द्वितीय संस्करण, वि० सं० २०४१, दोहा १४५, पृ० ८२

था। थिवेनाट ने इसे "हऊली" के नाम से सम्बोधित किया है।[11] हिन्दी कवि सेनापति ने भी होली के सम्बन्ध मे वर्णन किया है।[12] इस त्योहार पर तीन दिनो तक हिन्दुओं के सभी वर्गों के लोग हर किसी को केसरिया व अन्य रगीन जल मे भिगो डालते थे। तीसरे दिन सध्या को प्राय. सम्पूर्ण जनसमुदाय एक वृहदाकार उत्सकाग्नि के चारों ओर एकत्रित होकर अगली फसल अच्छी होने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता था।[13]

श्रावण मास की पूर्णमासी ब्राम्हणो का प्रिय त्योहार था। रक्षाबन्धन पर रेशमी धागों से बनी राखियाँ भाईयों की कलाई मे बहने पहनाती थी, जिसे प्रेम व स्नेह का प्रतीक माना जाता था।[14] उस दिन भाई बहनो की रक्षा का वचन लेते थे।

इसी प्रकार क्षत्रियो व कृषक वर्गों के मध्य दशहरा बहुत ही लोकप्रिय त्योहार था, जो "क्वार" माह के दसवे दिन पडता था।[15] दशहरा मुख्यत. हिन्दुओ मे शक्ति पूजा के रूप में मनाया जाता था। मध्यकाल के कवियो ने भी इसे शक्ति पूजा के रूप में वर्णित किया है।[16] देवी दुर्गा की पूजा बनारस मे बडे उत्साह से की जाती थी। इस अवसर पर हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों द्वारा अपनाये गये व्यापार, धन्धे या पेशे के औजारों की पूजा होती थी।[17]

हिन्दुओं का महत्वपूर्ण त्योहार दीपावली कार्तिक मास के प्रथम दिन, जो नये चन्द्रमा का दिन होता है और जब सूर्य तुला राशि मे होता है। ये त्योहार पड़ता

---

[11] भीमसेन, नुस्ख–ए–दिलकुशा, पृ० ६४, थिवेनाट, पृ० ८१, हेमिल्टन खण्ड १, पृ० १२८, १२६

[12] लालन गुपाल, धोरिको रंग लाल भाई पिचकारी मुँह ओर को चलाई है। सेनापति, पृ० १२२

[13] नीरा दरबारी, पृ० १२२

[14] तुजुके जहाँगीर {आर० बी०} पृ० २४४, पी० थामस, फेस्टीवल एण्ड हालीडेज इन इण्डिया, पृ० १, के० एम० अशरफ, लाइफ एण्ड कण्डीशन आफ दी पीपुल्स आफ हिन्दुस्तान {१६५६} पृ० २०३, २०४

[15] आइन, खण्ड ३, पृ० ३१६, आलमगीरनामा, पृ० ६१४, इलियट एण्ड डाउसन भाग ४, पृ० ११७, ११८

[16] (१) विभीषण हनुमान.......।–सेनापति, कवि रत्नाकार, पृ० २५,२६
(२) चण्डी है घुमण्डी आदि.......।–भूषण ग्रन्थावली, पृ० ६, शिवराज भूषण, पृ० ६१

[17] के० एम० अशरफ, पृ० २०३, २०४

था।[18] इस त्योहार मे बडी सख्या में दीप जलाए जाते थे ओर घरो की सफाई की जाती थी। यह धन की द्योतक लक्ष्मी का भी त्योहार माना जाता था। हिन्दुओ का विश्वास है कि कलयुग मे यह भाग्य का त्योहार था।[19]

तीर्थयात्राए हिन्दुओ के लिए अनिवार्य नही थी बल्कि वैकल्पिक व कीर्ति प्रदायी थी। कोई भी व्यक्ति पवित्र प्रदेश, किसी पूजनीय प्रतिमा या पवित्र नदियो के जल मे स्नान के लिये चल पडता था। इस समय गंगा व यमुना पवित्र नदियो के रूप मे विद्यमान थी।[20]

जिस प्रकार गगा तट पर पवित्र स्थानो के रूप मे काशी {बनारस} प्रसिद्ध था।[21] उसी प्रकार यमुना तट पर मथुरा भी एक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थान था।[22] इस प्रकार हिन्दुओ मे त्योहारो के प्रति उल्लास इस समय के समाज की एक प्रमुख विशेषता थी। हिन्दू सम्प्रदाय का एक अन्य महत्वपूर्ण त्योहार शिवरात्रि था। यह माघ के अन्त अथवा फाल्गुन मास के प्रारम्भ मे पड़ता था। मुगल काल मे सम्राट अकबर की हिस्सेदारी का इसमे उल्लेख मिलता है।[23] जहॉगीर ने भी अपनी आत्मकथा मे इसका उल्लेख किया है।[24] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि बनारस मे उस समय भी हिन्दुओं मे त्योहारों के प्रति उल्लास एवं प्रतिबद्धता थी, जो समाज की एक प्रमुख विशेषता थी।

[illegible]स्लिम त्योहार एवं तीर्थ यात्राएं :

इस काल में मुस्लिम समाज के मध्य भी अनेक उत्सव, त्योहार एव तीर्थ यात्राएं प्रचलित थी।[25] अधिकांश मुसलमान मक्का की तीर्थ यात्रा करते थे, जबकि

---

18 करारी, पृ० २६४, पीटर मण्डी, खण्ड २ पृ० १६४, डवोयस, हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एण्ड सेयरमनीज, पृ० १७
19 विलियम कुक, रीनीजन एण्ड फोकलोर आफ इण्डिया {१६२६} पृ० ३२४
20 [illegible] इण्डिया २ {सचाउ} पृ० १४४–४५
21 वही, पृ० १४६–४७
22 वही पृ० १४७–४८
23 आईन, प्रथम भाग पृ० २१०
24 तुजुक {आर०बी०} खण्ड १, पृ० ३६१, तथा सलीतोर, खण्ड २ पृ० ४०४, ४०५
25 के०पी० साहू, पृ० २६६

अन्य ईद के मौके पर होने वाले इबादतों मे शामिल होत थे। मध्यकाल के शासनकाल मे मुस्लिम समाज अपने त्योहारों को बड़ी धूम–धाम से मनाया करता था। इस काल मे स्वाभाविक रूप से भारतीय वातावरण तथा परम्पराओ का मुस्लिम समाज पर प्रभाव पडा।[२६] इसलिए बदलते हुए समय के साथ मुस्लिमो ने भी अपने त्योहारो को सामाजिक एव मनोरजनात्मक प्रवृत्ति का आवरण दिया। इस काल मे मुस्लिमो द्वारा मनाये जाने वाले प्रमुख धार्मिक उत्सव तथा त्योहार निम्नलिखित है –

नौरोज :

मुस्लिम समुदाय सरकारी त्योहार के रूप मे "नौरोज मनाता था, जो सामान्यतया" इरानी नव वर्ष के दिन मनाया जाता था।[२७] यह बसन्त का त्योहार था, जो उद्यानो और नदी तट पर स्थित बगीचों मे मनाया जाता था तथा इसका मुख्य आकर्षण सगीत तथा रग बिरगे फूल हुआ करते थे।[२८] इस त्योहार मे सात प्रकार की धातुए, सात प्रकार के अनाज तथा सात प्रकार के कपड़े गरीबो मे बाटे जाते थे।[२९] इस अवसर पर सुल्तान अथवा प्रशासक शासन व्यवस्था मे भी परिर्वतन करता था, और अपने राज्यपालो को आभूषण, हाथी,घोड़े और छत्र प्रदान करता था।[३०] यह त्योहार उच्च वर्गो तक ही सीमित था, विशेषकर सुल्तान और शासक से जिनके घनिष्ठ सम्बन्ध थे।[३१]

ईद–उल–फितर

मुस्लिम समुदाय के मध्य धार्मिक लोगों के लिए ईद–उल–फितर सर्वाधिक महत्व का त्योहार था।[३२] इस त्योहार की तारीख का निर्धारण चॉद देखने से होता

---

[26] के०एम० अशरफ, पृ० २०४

[27] अमीर खुशरों {एजाज–ए–खुशखी} भाग ४, पृ० २२६–३०

[28] नुह – सिपेहर, पृ०–३६८, उदृत के०पी० साहू पृ० २६७

[29] मनूची, भाग – २, पृ० ३४८, ३४६, थेवेनाट, भाग ३, अध्याय २८, पृ० ७०

[30] वही,

[31] के० एम० अशरफ, पृ० २०५, ई० डी० रास०, हिन्दू मुसलमान फीस्ट्स, पृ० १००

[32] अमीर खुशरो, पृ० ३२६–२७ तथा इब्नबतूता, पृ० ६०–६२,

था।[33] इस अवसर पर चारो ओर खुशियाँ मनायी जाती थी तथा ढोल पीटे जाते थे।[34] मस्जिदो मे ईद की नमाज पढ़ने के बाद जश्न मनाने का कार्यक्रम होता था।[35] एक दूसरे को उपहार देना, सन्तो के दर्शन करना व मजलिसे आयोजित करना, इस तयोहार का महत्वपूर्ण अग था।[36] इस त्योहार का विशेष महत्व वर्तमान मे होली के समान है, जिसमे एक दूसरे को गले लगाकर भेद–भाव मिटाने का प्रण लेते है।[37] बनारस शहर में भी यह त्योहार धूमधाम से मनाया जाता था।

ईद–उल–जुहा

वर्ष के अन्तिम माह जिल–हज्जा के दसवे दिन मुसलमान ईद–उल–जुहा का त्योहार मनाते थे।[38] इस त्योहार पर ऊँट या भेड, बकरी की बलि दी जाती है तथा उसके बाद यह त्योहार जश्न के साथ मनाया जाता है।[39]

शबे–बारात

शा–बान महीने की चौदहवीं रात को मनाये जाने वाला मुसलमानो का यह एक महत्वपूर्ण त्योहार था।[40] भारत में कभी–कभी प्रार्थनाएं {इबादत} केवल समूहों या अनेक लोगों द्वारा समवेत रूप से की जाती थी।[41] धार्मिक रूप से उत्साही लोग यह पूरी रात खास इबादतें करने और पवित्र कुरान पढ़ने में बिता देते थे। इस अवसर पर मस्जिदो में मोमबत्तियाँ और फुलझड़ियां तथा पटाखे छोड़ने का लोकप्रिय रिवाज था।[42]

---

33 के०पी० साहू, पृ० २६७
34 अफीफ, पृ० ३६१, तथा रिजवी, पृ० १४३
35 इब्नबतूता, पृ० ६०–६२
36 इब्नबतूता, पृ ६०–६२ तथा अफीफ, पृ० ३६१,६२ तथा रिजवी, पृ० १४३, ४४
37 मनूची, भाग ४, पृ० २३५, सोमनाथ ग्रन्थावली, ८३१/१, नीरा दरबारी, पृ० १४६
38 अमरी खुसरो, पृ० २२६, ३० तथा बरनी, पृ० ११३,१४
39 किरान–उस्नादैन, पृ० ७३–८२, तथा रशीद, पृ० १२४
40 के०एम० अशरफ, पृ० २०५, तथा डा० ई०डी० रास {हिन्दू मुसलमान फिस्टस} पृ० १११–१२
41 फवैद–उल–फुजाद, पृ० ३२४
42 एजाज–ए–शुशखी, पृ० ३२४

सम्भवत शबे–बारात मनाने के लिए फुलझडियॉ तथा पटाखे छोडने का सर्वसाधारण प्रचलन मुसलमानो ने हिन्दुओ व ईसाइयो से लिया।[४३]

मोहर्रम

मुसलमानो के लिए यह एक शौक का त्योहार था जो खास तौर पर शिक्षा तथा कट्टर धार्मिक विचारो वाले मुसलमानो द्वारा मनाया जाता था।[४४] इस त्योहार को मनाने मे मुस्लिम सम्प्रदाय मुहर्रम के प्रथम दस दिन कर्बला के वीरो की शहादत के विवरण पढ़ते थे तथा उनकी रूहों पर चिर शान्ति के लिए खास तौर पर इबादते {प्रार्थनाए} करते थे।[४५] इस अवसर पर जुलूसो मे ताजिये निकालते थे, जिन्हें मकबरो का लघु अनुकरणात्मक रूप माना जाता था।[४६]

उर्स

उपरोक्त त्योहारो के अतिरिक्त मुसलमान सूफी–सन्तो की दरगाहो, मजारो तथा मकबरो पर जाकर उनकी बरसी या "उर्स" मनाया करते थे।[४७] ये परम्परा मध्यकाल से लेकर आज भी प्रचलित है। ऐसे अवसरों पर सूफी सन्तो तथा विद्वानों की दरगाहों पर हिन्दू–मुसलमान एकत्रित होते थे। उर्स के दिनों में सन्त की स्मृति में कव्वालियों, उनकी प्रशंसा में तसकीरो तथा कवि गोष्ठियों आदि का आयोजन होता था।

इसी प्रकार बरावफात भी पैगम्बर साहब की याद में मनाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण त्योहार था।[४८]

---

43 एडम पेज {दि रेनेसा आफ इस्लाम} पृ० ४२१, के०एम० अशरफ, पृ० २०५

44 एजाज–ए–खुशखी, पृ० ३२८

45 मिनहाज, पृ० ६१६, रिजवी पृ० २७

46 के०एम० अशरफ, पृ० २०६–२०७

47 मीराते सिकन्दरी {प्रथम संस्करण} पृ० १०३

48 पी० टामस, पृ० ६८

खान–पान तथा वेशभूषा

प्राचीन काल से ही भारतीय अपने दैनिक भोजन पर विशेष ध्यान देते रहे हैं। कालक्रम मे उन्होने अपने पाक कुशलता का प्रदर्शन किया है। समाज के विभिन्न स्तरो मे, अपनी स्थिति एव साधन अनुरूप विभिन्न प्रकार के भोजन प्रचलित थे।[४९]

जब भारतियो का सम्पर्क मुस्लिम समुदाय से हुआ तो एक नये युग का प्रारम्भ हुआ। अनेक नवीन प्रणालियॉ एव रीतियॉ भारतियो ने अपनाई, जिसका प्रभाव उनके विविध जीवन स्तर पर पड़ा।

भारतियों के खान–पान पर मुस्लिम सम्पर्क का जितना प्रत्यक्ष प्रभाव पडा उतना जीवन के किसी अन्य पहलू पर परिलक्षित नही होता है। इस सन्दर्भ मे मध्यकालीन भारतीय समाज मे बनारस मे प्रचलित खान–पान व्यवस्था का एक सुन्दर उदाहरण है।

खान–पान

हिन्दू एव मुस्लिम दोनों ही जातियो के कुलीनो तथा अमीरो मे विभिन्न प्रकार के पौष्टिक भोजन का प्रचलन था। सुल्तान अथवा प्रशासक साधारणतया अपने कुलीनो तथा अमीरों के संग एक ही दस्तरख्वान पर खाना खाते थे।[५०] यह परम्परा मध्यकाल से आज तक यथावत बनी रही। इस सामुदायिक सहभोज का एक कारण तो इस्लाम धर्म मे निहित भातृभाव था तथा एक अन्य कारण शासकों की कूटनीतिक व्यूह कौशल भी था।

राजनीतिक व राजकीय भोजों में अधिकतर "ब्रन्ज"[५१] {चावल} सूर्ख–बिरयानी[५२] {आधुनिक पुलाव}, नान[५३] {एक प्रकार की रोटी}, नान–ए–तन्दूरी,[५४] समोसा,[५५] कबाब–ए–मुर्ग,[५६] बच्च–ए–मुर्ग,[५७] हल्वा,[५८] एवं मछली का समावेश होता था।

---

49 के०पी० साहू, पृ० २६

50 तारीखे दाऊदी, फारसी पाण्डुलिपि, ओ० पी० एस० फे० ८६ (बी)

51 तारीखे दाऊदी, फारसी पाण्डुलिपि, सं० १००, सूची पत्र स० ५४८, ओ०पी०एल०

52 आइन {एस} अलीगढ, १६१७, पृ० ११६

53 अमीर खुशरो {हश्त–लहिश्त} मौलाना सुलेमान अशरफ द्वारा सम्पादित, पृ० १२६

इस काल मे गेहूँ या मैदा की बनी हुई रोटियो का उल्लेख मिलता है। सामान्यतः लोग चना, मटर, ज्वार तथा बाजरे की रोटियो का प्रयोग करते थे।[५९] चावल की फसल वर्ष मे एक बार होती थी। गेहूँ, सोयाबीन, विभिन्न प्रकार की दाले, बाजरा, अदरक, सरसों, प्याज, बैगन, तथा अनेक प्रकार की सब्जियाँ भी पैदा होती थी।[६०] गेहूँ की रोटी तथा पूडी लोग दाल, मॉस तथा सब्जियो के साथ खाते थे। इस काल मे रोटियाँ तन्दूर व चूल्हे दोनो मे पकाई जाती थी।[६१]

मुसलमान समुदाय मे एक विशेष प्रकार की रोटी बनायी जाती थी, जिसे रोधनी कहते थे।[६२] मट्ठा, खजूर, मॉस का सूप, पराठा, हलवा और हरीसा भी प्रमुख व्यंजन थे। कहीं–कही लोग खिचड़ी व सत्तू का प्रयोग भी करते थे।[६३]

भोजन दो प्रकार का होता था – शाकाहारी तथा मासाहारी। हिन्दू व मुस्लिम सत, पुरोहित, पंडित, ब्राह्मण, जैन, शैव, और वैष्णव मत के मानने वाले, अधिकांश लोग शाकाहारी थे। शाकाहारी भोजनों में विभिन्न प्रकार की मौसमी सब्जिया, अनाज तथा दूध से निर्मित वस्तुएं एवं मिठाईयाँ आदि सम्मिलित थी।[६४] लोग चावल और रोटियों का प्रयोग मक्खन और घी के साथ करते थे।[६५] मांसाहारी भोजन में मछली का भी पर्याप्त प्रयोग होता था। बनारस में नदिया तथा तालाब थे, जहा से मछलियाँ

---

[54] तारीखे शाही, पृ० ५८
[55] मीरात–ए–सिकन्दरी, पृ० ७१
[56] तारीखे शाही, पृ० ११८
[57] टी०एफ०एस० {बी} सैयद खाँ द्वारा सम्पादित {१९२६} पृ० ११६
[58] तारीखे बैहक्वी {डब्लू०एच० योर्के द्वारा सम्पादित} पृ० १२३
[59] इलियट एण्ड डाउसन, पृ० ५८३
[60] के०एस० लाल, पृ० २७३
[61] नीरा दरबारी, पृ० ४५
[62] मेनरिक, खण्ड २, पृ० १८८, पी० एन० चोपड़ा, पृ० ३७
[63] इब्नबतूता, पृ० ३८, बर्नियर, पृ० २६, मनूची, खण्ड ३, पृ० ४५३
[64] राधेश्याम, पृ० २४६, २४७
[65] नीरा दरबारी, पृ० ५१

प्राप्त की जाती थी। बर्नियर ने इसी क्षेत्र मे प्राप्त सर्वोत्तम प्रकार की मछली (रेहू) रोहू का वर्णन किया है।[६६]

मासाहारी भोजन मे गाय, बछड़े, बकरे और मुर्गे के गोश्त का प्रचलन था।[६७] उसके अतिरिक्त भेड, बकरी, भैसे, हिरन तथा पक्षियों मे कबूतर, सारस, हरियल आदि का मास प्रचलित था।[६८] मध्यकाल मे विभिन्न प्रकार के शाकाहारी और मासाहारी व्यजनो को पकाने के लिए नमक, तेल, चीनी, प्याज, लहसुन, अदरक, विभिन्न मसाले, सिरके आदि का प्रयोग कियाा जाता था।[६९]

हिन्दुओं के समान मुसलमान भी भोजन के साथ सादा पानी पीते थे।[७०] उच्च वर्गीय मुसलमान दूध, चीनी, घी, मक्खन और सूखे मेवे से तैयार मिष्ठान का प्रयोग करते थे। इसमे फालूदा और हलवा प्रमुख थे।[७१]

पान

मध्यकालीन भारत मे सभी धर्मों तथा जातियों के लोग पान का प्रयोग करते थे और विशेष अवसरो पर पान का अत्यधिक महत्व था।[७२] पान के पत्ते मे चूना लगाकर व सुपाड़ी डालकर पान खाने के पर्याप्त उदाहरण मिलते है। उच्चवर्गीय समुदाय के लोग इसमें केसर और गुलाब जल का प्रयोग करके उसे सुगन्धित बनाते थे।[७३] बहुत से ऐसे उदाहरण प्राप्त होते है कि अंग्रेज सेनापतियों और राज्यपालो ने पान को सम्मान के तौर पर ग्रहण किया।[७४] बनारस में विशेष रूप से पान खाने का प्रचलन था, जो आज तक है।

---

[66] बर्नियर, पृ० २५०, २५२, २५७
[67] बर्नियर, पृ० २५२, नीरा दरबारी, पृ० ४८
[68] बर्नियर, पृ० २५२, पी० एन० चोपडा, पृ० ३५
[69] ओविंगटन, पृ० ३३५
[70] करारी, किताब २, अध्याय–८, पृ० २४७
[71] अकबर नामा खण्ड–१, पृ० ४३०, तुजुक (आर० बी०) खण्ड–१ पृ० ३८७, मो० यासीन, पृ० ३५
[72] थेवेनाट और करारी, पृ० १५, मनूची, पृ० ६२, ६३
[73] आइने अकबरी, खण्ड–१, पृ० ७२, ७३, लिन्सचोटन, खण्ड–२ पृ० ६४, नीरा दरबारी, पृ० ५७
[74] नोटिस, पृ० १५३, २०७

पेय पदार्थ

पानी मनुष्य के लिए अत्यावश्यक था तथा शुद्ध जल का प्रयोग स्वास्थ्य के लिए लाभदायक माना जाता था। सर्वत्र शर्वत का प्रयोग होता था। अनेक पेय पदार्थों मे फुक्का भी सम्मिलित था।[७५] शर्वत मे अतर के शर्वत, मिश्री व गुलाब जल, कस्तूरी तथा शहद मिले हुए शर्वत का उल्लेख मिलता है।[७६] वर्तमान बनारस मे आज भी शर्वत व ठडई का प्रयोग खासतौर से गर्मियो मे बहुत अधिक होता है।

मदिरापान हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायो मे समान रूप से प्रचलित था। वैदिक काल मे मदिरा को सोमरस कहा जाता था। मध्यकालीन बनारस मे उच्च वर्ग, अमीर और कुलीन वर्ग के लोग शीराज नामक मदिरा का प्रयोग करते थे। उच्च वर्गीय समुदाय विदेश से भी मदिरा आयात करता था।[७७]बनारस मे चूकि अच्छे फलो का उत्पादन नहीं होता था अत लोग जौ और चावल से बनी शराब का सेवन करते थे। निम्नवर्गीय समुदाय ताड़ी नामक पेय पदार्थ का प्रयोग करता था। जिसे ताड के पेडो से उतारा जाता था।[७८] इस काल में अंग्रेज और डच व्यापारियो की बहुलता हो गयी। ये अपने दैनिक जीवन में नियमित अच्छी मदिरा का सेवन करते थे। फलत विदेशी शराब का आयात होने लगा।[७९]

वेश–भूषा

इस काल मे हिन्दू व मुसलमान दोनो ही अपनी वेश भूषा में दिलचस्पी लेते थे। वे अपनी आय, सामाजिक स्तर तथा जलवायु के अनुसार ही पोशाक धारण करते थें। इस काल में प्रशासक तथा कुलीन वर्ग के पोशाक में सामान्यतया कुलाह एवं

---

[75] इब्नबतूता, पृ० ४, ६, ४६, ६५, ६६, ११६, १२१ तथा १३६

[76] रिजवी, पृ० ४०६, ४०७

[77] रिजवी, पृ० २५२, २३३

[78] निकोलस डाउन्टन विलियम फास्टर द्वारा सम्पादित पृ० १४१, १४६, थेनेवाट, खण्ड–३, पृ० १७, ओविगटन, पृ० २३६, नीरा दरबारी, पृ० ६६

[79] बाबरनामा, पृ० ८३, ८५, पेड्रोटेक्सेरिया, पृ० १६७

पयराहन का समावेश होता था।[८०] विशेष रूप से शासक वर्ग के लोग एक प्रकार का कसा हुआ घघरा[८१] पहनते थे। जो कि ऋतु के अनुसार महीन मलमल अथवा ऊन का बना होता था। कभी कभी वे बागा[८२] जो एक प्रकार का लम्बा लबादा होता था उसे धारण करते थे मलमल अथवा अन्य किसी प्रकार की जंघिया भी प्रयोग करने का उल्लेख प्राप्त होता है।[८३] कुलीनों का एक पृथक कमेष होता था जिसे जामा–ए–खाना कहा जाता था।[८४] प्रशासक रात्रि में पहनने वाले वस्त्र जामा–ए–ख्वाब, मोजा विशेष प्रकार के जूते अथवा ककष पहनते थे।[८५] इसी प्रकार मुस्लिम कुलीन वर्ग भी अपनी पोषाको में रेशमी वस्त्र धारण करते थे।[८६] इस समय हिन्दू और मुस्लिम पहनावे का एक दूसरे पर काफी प्रभाव पड़ा।

आरम्भ मे हिन्दुओ को मुस्लिम वेशभूषा से अनभिज्ञता थी। परन्तु ज्यो ज्यो हिन्दू वर्ग, मुस्लिम वर्ग के सम्पर्क में आता गया उन्होने एक दूसरे की पोशाको का अनुकरण करना प्रारम्भ कर दिया।

सम्पन्न मुस्लिम वर्ग की भाति हिन्दू कुलीन वर्ग भी "काबा" बागा अथवा उत्कृष्ट प्रकार के धोती का प्रयोग करते थे। साथ ही ओहारन यानि ओढ़ने वाली चादर का भी प्रयोग करने लगे। इस काल में हिन्दुओ द्वारा प्रयोग किया जाने वाला वस्त्र पजामा भी था जो आज भी प्रचलित है। हिन्दू वर्ग मे पाग या पगडी का प्रयोग भी अत्यन्त लोकप्रिय था।[८७] चप्पल और जूतों का भी प्रचलन था।

---

80 टी० एफ० एस० (ए) बिब० इण्डिया, कलकत्ता, १८६१, पृ० १४६

81 मनूची, भाग–२, पृ० १३, ओविगटन, पृ० ३१४, डब्लू एच० मोरलैण्ड, कलकत्ता द्वारा सम्पादित, १८६२ पृ० ७८ मोहम्मद थासीज पृ० ३६, ४०

82 मंझन कृत मधुमालती, पृ० ४५२, ३६७

83 आई० सी०, भाग–३१, पृ० २५६

84 टी० एफ० एस०, ए बिब० इण्डिया, कलकत्ता १८६१, पृ० १०१

85 वही, पृ० १०४

86 मनूची खण्ड–२, पृ० ३४१

87 सोमनाथ, ग्रन्थावली, प्रेम पचीसी, पृ० ८६, छन्द १७, औरंगजेब नामा, भाग २, पृ० १८८

स्त्रियों की वेशभूषा

मध्यकाल मे बनारस की स्त्रियॉ लगभग समान प्रकार के वस्त्र धारण करती थी। साडी तथा "अंगिया" हिन्दू स्त्रियों का सामान्य परिधान था।[८८] मलमल या रेशम की उत्तम प्रकार की साडियॉ सम्पन्न वर्ग की स्त्रियो मे अत्यधिक लोकप्रिय थी।[८९] हिन्दू महिलाएं एक डोरी का भी प्रयोग करती थी। जिसे निबिन्ध कहा जाता था।[९०] इसी डोरी से कमर मे कपड़े को बॉधा जाता था। अगिया को कंचुकी[९१] या चोंली[९२] कहा जाता था। कभी–कभी उच्चवर्गीय महिलाय अत्यन्त पतली अंगिया धारण करती थी। जिससे उनका बदन स्पष्ट दिखाईपड़ता था।[९३] इस युग मे घघरा भी अत्यन्त लोकप्रिय था।[९४] उच्चवर्गीय हिन्दू स्त्रियॉ जब भी घर से बाहर जाती थी, तो "ओढनी" या "दुपट्टा" का प्रयोग करती थी।[९५]

मुस्लिम महिलाएं अपने शलवार तथा पजामा तथा आधी बाह वाली कमीज से पहचानी जाती थी। उच्च वर्ग की महिलाएं कुलीन वर्ग के पुरूषो की भॉति भी वस्त्र धारण किया करती थी।[९६] नर्तकिया व गणिकाएं स्वय को आर्कषक बनाने के लिये रेशम से बने अत्यन्त कसे हुए तथा जालीदार वस्त्र धारण करती थी।[९७]

रूषां की श्रंगार विधि तथा उनके आभूषण

उच्च वर्गीय पुरूष अपने शारीरिक आकर्षण की वृद्वि हेतु अनेको युक्तियॉ अपनाने थे।पुरूष अपने श्वेत केश को काला करने के लिए "केशकल्प" अथवा

---

[88] के० पी० साहू, पृ० ८७,

[89] विद्यावती की पदावली, पद-१६४, पृ० २७०,

[90] वही, पद-७६, दो ०-८, प्र.-१२४, तथा पद-८४, दो-२, पृ० १३४

[91] कुतुवन रचित मृगावती, दो-२०३, पृ० १३६, तथा मंझन कृत मधुमालती दा०-२०६, पृ० १७५ तथा दो०-४५१, पृ० ३६६,

[92] ज्योतिरश्वर कृत वर्गरत्नाकर, पृ० ४,

[93] विद्यापति की पदावली, पद-२०८, दो-१६, पृ० ३४७

[94] कतुबन की मृगावती, पृ० १४१,

[95] के० पी० साहू, पृ० ६२-६३

[96] तारीखे – हक्की, फारसी पाण्डुलिपि, संख्या – ८६, कैटलाग सं० ५३७

[97] अमीर खुशरो, कृत नहूर–सिफर, पृ०–३६७,

"खिजाब" का प्रयोग करते थे।[98] परूष एव महिलाए दोनो ही बालो को सँवारने के लिए "कधी" अथवा "ककही" का प्रयोग करती थी।[99] नित्य कार्यारम्भ से पूर्व स्नान करने का रिवाज भी पुराना था। अलबरूनी हिन्दुओ मे प्रचलित धावन किया का उल्लेख इस प्रकार करता है धावन किया मे वे सर्वप्रथम अपना, पग धोते है, फिर मुख। वे पत्नियो से सम्भोग के पूर्व भी स्वय को स्वच्छ कर लेते है।[100] वे केशर एव अन्य सुगधयुक्त श्वेत चन्दन लगाते थे। परन्तु गरीब वर्ग के लोग सरसो के तेल से ही सतुष्ट रहते थे।[101] इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के सुगन्ध एव सुगन्धित वस्तुए तथा मृगमद[102] , कस्तूरी[103] ,अगरजाह[104] , अगर[105] , कर्पूर[106] , कुकुम[107] आदि भी व्यवहार मे लाये जाते थे। इसकाल मे साबुन के प्रयोग का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[108] काजल[109] का प्रयोग नेत्र की कान्ति एव ज्योति बढाने के लिए होता था। हिन्दू अपने मस्तक पर तिलक लगाते थे।[110] दर्पण का प्रयोग भी सामान्य रूप से होता था।[111]

उच्च वर्गीय हिन्दुओ मे बहुमूल्य आभूषणों के प्रति अगाध रूचि थी। पुरूषो द्वारा मेखला,[112] नुपूर, मुद्रिका, अगूठी, हार एव कुण्डल का प्रयोग किया जाता था। पुरूष, पिताम्बर, काछनी या धोती,[113] उत्तरी या पिछौरी[114] पतुका अथवा

---

98 अमीर खुशरों कृत मतलाउल अनवार, पृ० १७३,
99 मंझन कृत मधुमालती, छ० – ४५२, पृ० ३६७,
100 अलबरूनीज इण्डियासचाऊ पृ० १८१
101 विद्यापति की कीर्तिलता, छन्द–२४, दो०–१०१, पृ० १८४,
102 मझन की मधु मालती, पृ० ४२६, तथा विद्यापति की पदावली पद–१३५, पृ० १८०
103 कुतुबन की मृगावती, दो०–१०२, पृ० १३१,
104 वही, पृ० १३१
105 वही, दो०–१६२, पृ० १३१, तथामंझन की मधु मालती, दो०–५३, पृ० ४४
106 मझन की मधु मालती, पृ० १३५ तथा ज्योतिरेश्वर, तृतीय पल्लव, पृ० ११
107 मृगावती, दो०–१६२, पृ० १३१, मंझन की मधुमालती, दो० – ४३६, पृ० ३८५
108 कबीर गंथावली, अयोध्या सिंह उपाध्याय द्वारा संकलित पद – १६६, पृ० १६४
109 कबीर साजी, सार, प्रथम संस्करण, १६५६, साजी – २ पृ० १०६
110 मंझन की मधुमालती, दो० ८१, पृ० ६१
111 मंझन की मधुमालती, दो० ४२६, पृ० ३७५
112 कबीर बचनावली, पद–३६३, पृ० ४०
113 मनूची, स्टोरिया द मोगोर, भाग–३, पृ० ३८, आस्पेक्ट्स आफ बंगाल सोसायटी, पृ० ४४

कमरबन्द[115] जामा[116] झगा या अगरखा[117] पाग अथवा पगड़ी[118], जूता टोपी आदि का प्रयोग नियमित करते थे।

स्त्रियों की श्रृंगार विधि एवं आभूषण

स्त्रियो मे तो आभूषण एव श्रृगार के प्रति स्वाभाविक रूचि एव आकर्षण होता है। स्त्रिया मध्यकाल मे भी सोलह (षोडस) श्रृगार जैसे – मज्जन, स्नान, वस्त्र, पत्रावली रचना, सिन्दूर, तिलक, कुण्डल, अज्जन, ओष्ठ श्रृगार, कुसुमगध, कपोल पर तिल लगााना, हार पहनना, कुचुकी का प्रयोग, कमर मे छडघटिका पहनना तथा पैरो मे पायल के प्रति सचेष्ट थी।

मुसलमान स्त्रियो ने न केवल भारतीय आभूषणों को अपनाया बल्कि आकर्षित करने वाले कई प्रकार के नवीन आभूषणों की रचना भी की।[119] मनुची ने स्वय वर्णन किया है कि मध्य काल मे सुनार दिन–रात प्रशासक वर्ग के राजकुमारियो, कुलीन वर्गो के लिए आभूषण बनाने मे सलग्न रहते थे।[120] हिन्दू और मुस्लिम वर्गो द्वारा समान रूप से प्रयोग किये जाने वाले आभूषण गले का हार, माथे पर धारण किया जाने वाला "शीश फुल"[121], कर्णफूल, बाली, चम्पाकली और मोर भॉवर कानो के लिए, कुण्डल[122] , बेसर[123],पूली, लौग और नथ[124] इसी प्रकार नाक के लिए तथा कलाइयो के

---

114 देव ग्रन्थावली, पृ० ६०, छन्द १६, मनूची, भाग–३, पृ० ३८, ३६, डा० मोती चन्द्र प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० ३८

115 आइने अकबरी ब्लाखमैन, भाग ३२, पृ० ६६, पी० एन० ओझा, ग्लिम्प्सेस आफ सोसल लाइफ इन मुगल इण्डिया, पृ० १२

116 आइन, भाग–१, पृ० ८८, ६२, श्री जमी जमीला बृजभूषण, पृ० ३०, ३८

117 ट्रेवनिर्यर, पृ० १३२, श्रीमती जमीला, बृजभूषण, कस्टम एण्ड टेक्सटाइल आफ इण्डिया, पृ० ३१

118 सोमनाथ, ग्रन्थावली, श्रृगार विलास, पृ० २६०, छन्द १७, मेन्डेलस्लो, पृ० ५३, डीलेट, पृ० ८०–८१

119 नीरा दरबारी, पृ० ७५

120 मानुची, खण्ड–२, पृ० ३४१

121 आइन अनुबाद जैरेट, पृ० ३१२, सोमनाथ ग्रन्थावली, पृ० ५०३, छन्द–५०, मनुची, भाग–२ पृ० ७१,

122 आइन, भाग–३ पृ० ४३, देव ग्रन्थावली, रस विलास, पृ० २३७, छन्द–२८, थेवेनाट,भाग–३ पृ० ३७,

लिए कगन, चूडी और जिहार[१२५], अगूठे के लिए आरसी,[१२६] तथा अगुलियो मे पहनने के लिए अगूठी आदि थे।

उच्च वर्गी महिलाए कमर मे "कटि मेखला"[१२७] और "चन्द्र कन्टिकी" और पैरो के लिए घूघरी, पायल, बिछुवा और अनवत[१२८] का प्रयोग करती थी[१२९] बहुत से आभूषणो के सम्बन्ध मे कविताओ मे भी वर्णन किया गया है। मध्यम वर्ग के स्त्रियो ने भी उच्च वर्ग की स्त्रियो के समान आभूषणों को अपनाया। परन्तु निम्न वर्ग की स्त्रियो ने विकल्प के रूप मे सस्ते और अन्य प्रकार के गहने अपनाती थी।[१३०] निम्न वर्ग की स्त्रियॉ, शीशे, कॉच, तॉबे और यहॉ तक कि लौग या लवग का भी प्रयोग आभूषणो के रूप मे करती थी।[१३१] स्त्रियॉ बिदियो का भी प्रयोग करती थी, जो उनके विवाहित होने का प्रतीक था।[१३२] यह मॉथे पर सिदूर का टीका था, कॉच की चूडियॉ भी स्त्रियों के विवाहित होने का प्रतीक थीं।[१३३] अत यह प्रतीत होता है कि आभूषणो तक निर्धन एवं निम्न वर्गीय स्त्रियों की भी पहुॅच थी और वे इससे वंचित नही थी किन्तु वे अपने आर्थिक स्तर व आय के अनुसार कम कीमती धातुओ के आभूषण

---

123 आइन, अनुवाद, एस०एस० जैरेट, जिल्द–३, पृ० ३१३, सोमनाथ ग्रन्थावली, रस पीयूष निधि, पृ० १२६, छन्द–१२, थेवेनाट,भाग–१ पृ० ३७, तथा असारी, भाग–३४, पृ० ११४

124 सोमनाथ गन्थावली , माधव विनोद, पृ० ३२८, छन्द–७२, जमीला वृजभूषण इण्डियन ज्वेलरी आर्नामेण्ट्स एण्ड डेकोरेटिव डिजाइन्स, पृ० ११, थेवेनाट पृ० ३७, डीलेट, पृ० ८१, असारी, भाग–३४, पृ० ११४,

125 मआसिर–ए– आलमगीरी, अनुवाद सरकार, पृ० ६३, मनूची, भाग–२, पृ० ३६६–४०, मोहम्मद यासीन, ए,सोसल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया, पृ० ४१, मेन्डेलस्लो, पृ० ५०, डुबाएस, हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरेमनीज, पृ० ३४४,

126 सोमनाथ ग्रन्थावली, पृ० ५०५, छन्द–३३, अंसारी, भाग–३४, पृ० ११४, थेवेनाट, अध्याय–२०, मनुची, भाग–२, पृ० ३४०,

127 आइन, भाग–३, पृ० ३४३ से ३४५,

128 आइन, भाग–३ जैरेट, पृ० ३१३, सोमनाथ ग्रन्थावली, शशिनाथ विनोद, प्रथमोल्लास, पृ० ५०३, छन्द–२२, औरंगजेब नाया,अनुवादक
मुसिफ, भाग–२, पृ० ३६,

129 कबीर गन्थावली, पृ० १३२, पदमावत, पृ० ६३, अन्सारी, आई०सी०एस० खण्ड–३४, पृ० ११४,

130 नीरा दरबारी, पृ० ७७,

131 देव ग्रन्थावली, राग, रत्नाकर, चौसरू, चमेली, पृ० ६, छन्द २१, पेलसर्ट इण्डिया, पृ० २५ इरफान हबीब, पृ० ६६,

132 सिन्हा, पृ० ३४७,

133 इरफान, पृ० ६६,

धारण करती थी। इसके अतिरिक्त स्त्रियॉ श्रृगार की अन्य विधियो का भी प्रयोग करती थी "मेक–अप" की परम्परा उच्च वर्गीय महिलाओं तक ही सीमित थी। स्त्रियॉ शरीर पर उबटन तथा सुगन्धी के लिए केसर, कपूर तथा चन्दन का प्रयोग करती थी।[१३४]

श्रृगार विधियो मे पुष्प का विशेष महत्व था।[१३५] स्त्रियॉ अपने केश को विभिन्न प्रकार से बॉधती थी। बालो को विशेष प्रकार से घुमाकर बॉधने को "जूडा" कहा जाता था।[१३६] पैरो मे "महावर" लगाने की भी प्रथा थी तथा होठो को भी स्त्रियॉ सौन्दर्य वृद्धि एवं आर्कषण के लिए रंगती थी।[१३७] ऑखो मे "अजन" तथा हाथो मे मेहदी, जिसे हिना भी कहा जाता था, लगाने की परम्परा थी।[१३८] शरीर पर विशेष प्रकार के चिन्ह स्त्रियॉ बनवाती थी, जिसे " गोदना" कहते थे। इसके अलावा दॉतो को रगने से सम्बन्धित सामान " मिसिया" का[१४१] भी प्रयोग स्त्रियो मे बहुतायत प्रचलित था।[१३९]

संगीत तथा नृत्य

सगीत मानव प्रकृति के अनुकूल व सुख दुख का साथी था। सम्पूर्ण मध्य काल मे मुस्लिम शासको एव अमीर वर्गों ने संगीत को सदैव राजकीय संरक्षण प्रदान किया। ईरान के साथ सास्कृतिक सम्बन्ध होने से एव सूफी वाद का भारत मे प्रसार एव इसके अल्पकालीन स्थायित्व ने मुस्लिम शासकों को संगीत एव नृत्य कला का प्रेमी बना दिया।[१४०]

---

134 आइन, खण्ड–३, पृ० ३१२, बिहारी सतसई, पृ० १८०, जायसी ने लिखा है– प्रथमहि मज्जन... पायत,पापन्ह भत चरा,। बारह अभरन एक बखानें, तै पहिरै बारहो असधाने।। पद्मावत, पृ० २८७, २८८ तथा रेखा मिश्र, पृ० १२३

135 देव ग्रन्थावली, पृ० ४, छन्द–१३, पेलसर्ट, इण्डिया, पृ० २५०,

136 पी०एन०चोपडा, पृ० ३०, रेखा मिश्रा, पृ० १२४,

137 नीरा दरबारी, पृ० ७७,

138 मनूची, खण्ड–२, पृ० ३४०

139 पी० एन० चोपड़ा, पृ० १३

140 टवाइलाइट, पृ० २४२

ग्यारहवी तथा बारहवी शताब्दी मे सगीत के क्षेत्र मे कोई विशेष प्रगति नही हुई लकिन अल्लाउद्दीन खिलजी का सगीत कला से अच्छा सम्बन्ध था। इसके शासन काल मे संगीत के प्रचार–प्रसार मे महत्वूपर्ण वृद्वि हुई। प्रसिद्व सूफी, कवि, सन्त, राज्य–मन्त्री अमीर खुसरो का उल्लेख महत्व रखता है।[१४१]अमीर खुसरो ने भारतीय सगीत पर एक अमिट छाप छोडी जो कभी धुधली नही हो सकती। कहा जाता है कि अमीर खुसरो प्रथम तुर्क था जिन्होने ईरानी तथा भारतीय संगीत का मिश्रण करके सगीत क्षेत्र को एक नवीनता प्रदान कर दी[१४२]

इसके बाद तैमूर के आक्रमण से उत्पन्न अराजकता पूर्ण परिस्थितियो का कारण दिल्ली सल्तनत के विघटन के पश्चात सगीत कला गायन और वाद्य सगीत ने प्रान्तीय राजदरबारो जैसे – ग्वालियर, जौनपुर एव गुजरात मे राजकीय सरक्षण प्राप्त किया जो सम्पूर्ण १५वी शताब्दी तक सगीत कला के अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्रो के रूप मे विद्यमान रहे।[१४३]

प्रायः सभी प्रान्तीय राजवंशो के सुल्तान व्यक्तिगत रूप से सगीत प्रेमी थे। सगीत को राजकीय सरक्षण प्रदान करने के लिए इन प्रान्तीय राजवशो मे जौनपुर का शर्की राजवश गौरव पूर्ण अतीत से युक्त है।[१४४] सगीत के क्षेत्र मे जौनपुर के सुलतानों मे सुलतान हुसैन शाह शर्की का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। दिल्ली के लोदी सुल्तानो के साथ अनवरत संघर्षरत रहते हुए भी इस शासक ने सास्कृतिक क्षेत्र की अवहेलना नही की। हुसैन शाह शर्की ने इस क्षेत्र मे विभिन्न रागो तथा गायन शैलियों का अन्वेषण किया जिस कारण भारतीय संगीत कला के इतिहास में असामान्य परिवर्तन आया। इन्होंने संगीत के संसार में एक नवीन क्रान्ति को जन्म दिया। यही कारण है कि भारत के शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में हुसैन शाह शर्की का

---

[141] भारतीय सगीत का इतिहास, राजेन्द्र सिह बाबरा, शि० प्रे० मेरठ १९८६, पृ० २३

[142] वही, पृ० २५

[143] टवा, इलाइट, पृ० २४२

[144] डा० शेफाली चटर्जी, पृ० २२२

एक महत्वपूर्ण स्थान है।[145] उन्होने सगीत के नियम और सिद्धान्त की विशिष्ट जानकारी प्राप्त की थी। यही कारण है कि लोगो ने उनकी योग्यता से प्रभावित होकर उन्हे नायक[146] की उपाधि दी।[147] सुल्तान हुसैन शाह शर्की ने गायन पद्धति को रोचक तथा प्रभावशाली बनाने के लिए एक नवीन शैली का अविष्कार किया जिसे ख्याल कहते है।[148]

सुल्तान हुसैन शाह शर्की के अविष्कार 'ख्याल' के पूर्व भारत की सम्पूर्ण गायन पद्धति का आधार ध्रुपद गायन था। परन्तु 'ख्याल' की उन्नति के पश्चात ध्रुपद का रंग फीका पड गया।[149] ख्याल के बोल सीमित होते हैं। ख्याल मे प्रेम वियोग तथा मिलन इत्यादि का वर्णन किया जाता है। सुल्तान हुसैन शाह शर्की ने १२ सामो का अविष्कार किया।

१– गौर साम, २– मल्हार साम, ३-- गोपाल साम, ४– गम्भीर साम, ५– हुहु साम, ६– राम साम, ७– मेघ साम, ८– बसन्त साम, ६– बरारी साम, १०– किबराई साम, ११– गोड़ साम,[150] १४ तोडियों में ४ तोडी हुसेन शाह शर्की का ही अविष्कार है – १ असावरी तोडी जो हुसैन तथा जौनपुरी आसवीर के नाम से प्रसिद्ध थी। २ रामा तोडी, ३ रसूली तोडी, तथा ४. बहमली तोड़ी। इन चारों तोड़ियों के अविष्कारक सुलतान हुसैन शाह शर्की नायव कव्वाल है।[151] इसके अतिरिक्त ये बहुत से रागो के भी अविष्कारक माने गए हैं। हजरत अमीर खुसरों के बाद कठवाली का ऐसा नायक नहीं पैदा हुआ।[152]

---

145 डा० शेफाली चटर्जी, पृ० २२२
146 सगीत शास्त्र, दर्पण, द्वितीय भाग, पृ० ३३
147 डा० शेफाली चटर्जी, पृ० २२२
148 सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मेडिकल इण्डिया, पृ० ११६, तथा टवाइलाइट, पृ० २४२
149 डा० शेफाली, पृ० २२३
150 डा० शेफाली चटर्जी, पृ० २२३
151 वही,
152 एकबाल अहमद शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास, पृ० ६०५ से उद्धृत। सैयद सबाउद्दीन अब्दुल रहमान, हिन्दुस्तान के सुसलमानो के तत्मद्दनी जलवे, पृ० ५३१

इसके अतिरिक्त हुसैन शाह शर्की ने जौनपुर तोड़ी, सिधु भैरवी, सिन्दूरा आदि का आविष्कार किया। हुसैनी तोडी, हुसैनी कान्हारा भी हुसैन शाह शर्की की देन है।[१५३]

ख्याल के अतिरिक्त गायन की एक और शैली ''चौतकला'' की खोज भी हुसैन शाह शर्की ने ही किया था। इसमे अस्थाई अन्तरा, सचारी और आभोग चार भाग होते है तथा बारह ताले एक के बाद दूसरी प्रयोग की जाती है।[१५४] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि जौनपुर की सगीत कला मे सूफी रहस्यवादियो ने भी काफी योगदान दिया। विशेष रूप से सभा और कव्वाली के क्षेत्र मे सूफियो का योगदान प्रशंसनीय है। क्योकि उनका विश्वास था कि सभा और कव्वाली गायन द्वारा आध्यात्मिक परमानन्द की प्राप्ति होती है। ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती का कहना था कि सगीत आत्मा का भोजन है।[१५५] सभा गायन के क्षेत्र मे मुल्तान के शेख बहाउद्दीन जकारिया का नाम उल्लेखनीय है। क्योकि उन्हे कुछ मुल्तानी राग जैसे–पुरिया, धनाश्री एव राग मुल्तानी के आविष्कार का श्रेय प्राप्त है।[१५६] जफराबाद में बस गये प्रारम्भिक सुहरावर्दी रहस्यवादियो में मखदूम असद उद्दीन आफताब–ए–हिन्द एव सद उद्दीन चिराग–ए–हिन्द दोनो ही शेख–बहा–उद्दीन–जकारिया मुलतानी के पौत्र शेख–रूकनुद्दीन मुलतानी के शिष्य एव अनुयायी थे।[१५७] इस प्रकार के प्रारम्भिक रहस्यवादी सभा गायन की परम्परा को अपने साथ जौनपुर ले आये और इसकी नीव दृढ़ता पूर्वक जमा दी। चिश्ती वर्ग के महान सन्त, दिल्ली के शेख निजामुद्दीन औलिया समा गायनके विशिष्ट प्रेमी थे। उनके प्रमुख शिष्यो में अमीर खुशरो ने इस परम्परा को और भी समृद्व बनाया। चिश्ती शाखा के सगीत प्रेमी सूफी सन्तो मे, जो जौनपुर के शर्की राज्य में ही फूले–फले,

---

153 डा० शेफाली चटर्जी, पृ० २२३

154 संगीत शास्त्र दर्पण, भाग २, पृ० १८४

१५५ सूफीमत, साधना और साहित्य, पृ० ४४६

१५६ डा० शैफाली चटर्जी, पृ० २२४.

१५७ तलल्लिएन्नूर, जिल्द–१, पृ० १.–८, ११–१२.

सैयद अशरफ समसानी, हुसामुद्दीन, मनिक पुरी, शेख वरी हवकामी, शेख बहाउद्दीन चिश्ती, शेख आधन चिश्ती के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[१५८] भक्ति आन्दोलन के समस्त महान सन्तो मे नामदेव, रैदास, गुरूनानक, कबीर, ने शर्की शासको के सरक्षण मे ही कविताओ की रचना की और उन्हे गीत के रूप मे गाया गया। महाकवि विद्यापति की पदावली सगीत के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण है जिसे गाते हुए कोई भी व्यक्ति झूम उठता है।[१५९] इसके फलस्वरूप मध्यकाल मे ही मुगल शासको का सगीत के प्रति अगाध प्रेम था। मुगल काल के सस्थापक बाबर को सगीत बडा प्रिय था। वह स्वय भी गीत लिखता था, सगीतकारो का आदर करता था और विद्वानो को पुरस्कृत भी करता था।[१६०] वह अपनी सेनाओ की थकावट दूर करने के लिए सगीत महफिलो का आयोजन करता था। इस काल मे ख्याल, कव्वाली और गजल का प्रचलन अधिक हुआ।[१६१]

बाबर के पश्चात उसका बेटा हुमायूँ भी सगीत प्रेमी था तथा सगीतकारो का बडा आदर करता था। उस समय सूफी मत पूरे जोर पर था। वह सप्ताह में सोमवार तथा बुद्धवार को अवश्य सगीत सुनता था। सूफी सन्त अपने मत का प्रचार सगीत के माध्यम से कर रहे थे। कव्वाली गाने का प्रचार काफी बढ रहा था बादशाह भी अपने दुखो को भुलाने हेतु रूहानियत के गीत सुनता था।[१६२]

अकबर ने इस क्षेत्र मे सर्वाधिक रूचि प्रदर्शित की। अकबर स्वय "नक्कारा" बजाने मे प्रवीण था। अकबर के दरबार मे तानसेन नामक सगीतकार को विशिष्ट स्थान प्राप्त था।[१६३]

---

[१५८] तजल्लिये नूर, जिल्द–१, पृ० २४, २७, २६, ४६

[१५९] डॉ० शेफाली चटर्जी, पृ० २२४,

[१६०] भारतीय संगीत का इतिहास, जोगिन्दर सिह बाबरा, पृ० ३६

[१६१] वही,

[१६२] वही, पृ० ३०

[१६३] आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव, पृ० २४६, डा० राम नाथ, मध्ययुगीन भारतीय कलाएं, और उनका विकास, पृ० २८,

सम्राट जहाँगीर भी सगीत प्रेमी था। उसके दरबार मे साठ दरबारी गायको की उपस्थिति का उल्लेख प्राप्त होता है।[१६४] शाहजहॉ स्वय एक अच्छा गायक था। उसके शासन काल मे दामोदर मिश्र ने "सगीत दर्पण" नामक ग्रन्थ लिखा। शाहजहॉ के दरबार मे सुखसेन "गीटार" तथा सूरसेन "जीटर" नामक वाद्य यन्त्र बजाया करते थे।[१६५]

औरगजेब प्राय राजमहल की स्त्रियो तथा राजकुमारियो के लिए सगीत सभाओ का आयोजन करता था तथा उसने सीमित सख्या मे नर्तकियो तथा सगीतकारो को सरक्षण प्रदान किया था।[१६६] इसके फलस्वरूप औरगजेब स्वय वीणा वादन करता था।

१७०७ ई० के बाद मुहम्मद शाह के काल मे सगीत को सरक्षण मिला। उसके दरबार मे अदारग और सदारग ने ख्याल गायन को नई दिशा दी और उन्होने विभिन्न रागो मे ख्याल की अनेक रचनाए की जो आज भी प्रचलित है। ख्याल गायन के साथ सितार का आविष्कार खुसरो द्वारा किया गया। बनारस के राजा तथा जमीदार भी सगीत तथा नृत्य के द्वारा मनोरजन प्राप्त करते थे। दरबार के प्रमुख कार्यक्रमो मे सगीत एव नृत्य के लिए वेश्याए रखी जाती थी।[१६७] कुछ जमीदार नृत्य एव संगीत के लिए कत्थको, पुरूष नर्तको को भी रखते थे।[१६८]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सगीत तथा नृत्य मध्यकाल मे सुल्तानो तथा मुगल दरबार से निकल कर स्थानीय राजाओ व जमीदारो के यहॉ प्रश्रय प्राप्त कर रहा था। अवध के विभिन्न नवाबो ने सगीत एव नृत्य को पर्याप्त सरक्षण दिया जिसका प्रभाव बनारस के नगर पर स्वाभाविक रूप से पडा।

---

[१६४] एन० एन० ला, प्रमोशन आफ लर्निंग.. ...... पृ० १७८, डा० राम नाथ, पृ० २८

[१६५] बनारसी प्रसाद सक्सेना, शाहजहॉ आफ देहली, पृ० २५८.

[१६६] मनुची, स्टोरियो द मुगल, सम्पादित इरविन, पृ० ३४६,

[१६७] गिरधारी, इन्तजान, ए–राज–आजमगढ़ पृ० ६७ए बलभद्र, चेत सिंह, विलास, चतुर्थ संर्ग, अष्टम, प्रकरण, श्लोक संख्या–३,

[१६८] मो० अ०ग० फारूकी, शजरेशादाब, पृ० ६२

मनोरंजन के साधन

शिकार के सम्मुख सारे खेल उत्तेजना और उद्दीपन मे निम्न कोटी के थे। हिन्दुस्तान मे मुस्लिम शासन की स्थापना के पूर्व अरबो ने शिकारी पशु पक्षियो के अध्ययन और उनकी पैदावार के सम्बन्ध मे विशाल साहित्य सकलित किया था।[१६९] मुस्लिम अपने समय के प्रसिद्ध शिकारी ससानी शासको की स्मृति के साथ शिकार की ये सब उन्नत परम्पराए भी भारत मे लाए।[१७०] एशिया के अन्य भागो मे शिकार के प्रति प्रबल मोह और उसके लिए प्रयुक्त किए जाने वाले उपकरणो का प्रयोग और भी बढ़ गया।[१७१] तुर्की वश के सस्थापक कुतुबद्दीन ऐबक से लेकर अकबर के शासन काल तक प्रत्येक महत्वपूर्ण शासक शिकार का प्रेमी था और वह इसमे अधिक से अधिक समय बिताता, जितना कि वह शाही कार्यों और आनन्दोपभोगो से बचा पाता। यदि सुल्तान शिकार के शौकीन न भी होते तो भी वे शिकार के लिए अनेक कर्मचारी रखते थे।[१७२]

वस्तुत. शिकार के बहाने सैनिको का अभ्यास हो जाता था अत शिकार की परम्परा सशक्त रही। मुगल काल मे भी शिकार मनोरजन का प्रधान साधन था। अकबर ने एक विशेष प्रकार के शिकार की व्यवस्था की थी जिसे "कमरगा" कहते थे।[१७३] जहाँगीर की ही भाँति मुगल शासक भी मछलियो के शिकार के शौकीन थे।[१७४] मुगल सम्राट नाव द्वारा भी मनोरंजन करते थे।[१७५] जानवरों की लडाई मुगल सम्राटो को विशेष रूप से प्रिय थी।[१७६]

---

१६९ के० एम० अशरफ, हिदुस्तान के निवासियो का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ, दिल्ली वि०वि० द्वारा प्रकाशित सन् १९६०, पृ०–२२३,

१७० वही,

१७१ वही,

१७२ वही,

१७३ पी०एन० चोपडा, पृ० ६६,

१७४ तुजुके जहाँगीरी, पृ० १८८,

१७५ पी० एन० चोपडा, पृ० ७२–७३

१७६ चोपडा, पृ० ७३,

बाबर ने अपनी आत्मकथाओ मे हाथियो की लडाई का उल्लेख किया है।[१७७] अत गृह मनोरजन मे शतरज[१७८] तथा ताश[१७९] तथा चौपाल[१८०] प्रमुख रूप से खेले जाते थे। अकबर के काल मे बिसमत–ए–निशात[१८१] तथा पचीसी[१८२] नामक खेल प्रचलित थे।

जश्न भी मनोरजन का एक साधन था जिसमे वाद्य तथा मौखिक सगीत का आयोजन होता था।[१८३] इसके अतिरिक्त शासक वर्ग तथा अमीर वर्ग अनेक कथाकारो तथा सगीतकारो को दरबार मे रखते थे।[१८४] साधारण वर्ग के लोग अपने जीवन मे इतने अधिक मनोरजन की व्यवस्था नही कर पाते थे। हिन्दू समाज राम लीला तथा कृष्ण लीला के द्वारा कभी–कभी मनोरजन प्राप्त करते थे।[१८५] शाहजहॉ के काल मे नाटको का भी आयोजन होता था।[१८६] मुगल काल मे सूफी सन्तो द्वारा मुशायरे तथा कव्वाली का आयोजन किया जाता था, जिससे साधारण वर्ग अपना मनोरजन करता था।[१८७] मेलो का आयोजन भारतीय ग्रामीण जीवन के लिए सबसे खुशी का अवसर होता था।[१८८]

बनारस के राजाओ ने रामनगर के निकट शिकारगाह निर्मित कराई और उसमे विश्राम करने के लिए पक्के मकान कुए आदि भी निर्मित कराये। राजा बलवन्त सिह, राजा महीप नारायण तथा उदित नारायण सिंह ने अपने शासन काल मे सुरूचिपूर्वक

---

[१७७] बाबरनामा, अनुवाद. जे०एस० किग, पृ० ६३१

[१७८] वही,

[१७९] पजाब यूनिर्वसिटी, जर्नल १९६३, पृ० १२२, १२३, एजाज–ए–खुशवी, खण्ड–२, पृ० २६१ से २६४ तथा २६४ से ३०४,

[१८०] के० एम० अशरफ, पृ० २३६,

[१८१] चोपडा, पृ० ६०,

[१८२] वही, पृ० ६१,

[१८३] के० एम० अशरफ, पृ० २२६,

[१८४] चोपडा, पृ० ८०,

[१८५] वही, पृ० १७६,

[१८६] वही, पृ० ८०,

[१८७] रशीद, पृ० १०५, १०६ तथा चोपडा, पृ० ८०

[१८८] जे०एम०सरकार, हिस्ट्री आफ औरंगजेब, खण्ड–७, पृ० ४१७ से ४७३,

शिकारगाह पर अत्यधिक धन व्यय किया।[१८९] बनारस के राजा बलवन्त सिह ने "बुढवा मगल" नामक त्योहार को प्रारम्भ किया।[१९०]

इसके अतिरिक्त ये शासक वर्ग दान धर्म मे भी रूचि रखता था। मन्दिरो, मस्जिदो, घाटो, तालाबो, कुँओ तथा दान गृहो के निर्माण मे भी यह वर्ग आगे रहा। बनारस के राजाओ द्वारा मन्दिरो एव तालाबो को निर्मित करने के उदाहरण मिलते हैं।[१९१]

स्थापत्य कला

मध्यकालीन भारत मे बनारस स्थापत्य कला के क्षेत्र मे चर्मोत्कर्ष पर था। मुहम्मद गोरी के समय बनारस का प्रशासक सैय्यद जमालुद्दीन था। जिसने दारानगर के हनुमान फाटक सड़क पर अढाई कंगूरे की मस्जिद बनवाई। इस मस्जिद का गुम्बद दर्शनीय है।[१९२]

चौखम्भा मुहल्ले की चौबीस खम्भो वाली मस्जिद भी इसी समय मे बनी, जो अभी भी मौजूद है। इसी समय गुलजार मुहल्ले मे मखदूम शाह नाम की कब्रगाह का निर्माण किया गया, जिसमें स्थापत्य कला का स्पष्ट लक्षण दिखाई देता है।[१९३] भदऊ मुहल्ले की मस्जिद राजघाट के पास बनी है। यह मस्जिद अन्य मस्जिदों से अलग है। यह अपनी विशालता और उत्कृष्ट कोटि के स्थापत्य कला के लिए प्रसिद्व है। मस्जिद की आन्तरिक दीवारो की सज्जा और इसके स्तम्भो का स्थापत्य हिन्दू मन्दिरो का है। इस मस्जिद मे एक दालान १५० फुट लम्बी और २५ फुट चौडी है।[१९४]

---

[१८९] गिरधारी, इन्तजाम–ए–राज–ए–आजमगढ १५ ए, बी

[१९०] एम०ए०शेरिंग बनारस.. ....पृ० २२८, २२६,

[१९१] ए, फ्यूरर मानुमेण्टल एण्टीक्वितीज,... खण्ड–११, पृ० २१३, एम०ए० शेरिंग, बनारस, पृ० १७२ तथा सै०न०र० रिजवी पृ० ३४२,

[१९२] बी० भट्टाचार्यः वाराणसी रीडिस्कवर्ड, मुंशीराम मनोहर लाल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, १६६६, पृ० २१४

[१९३] वही, पृ० २१५,

[१९४] एच०आर०नेविलः बनारस. ए गजेटियर, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर आफ द यूनाइटेड प्राविन्स आफ आगरा एण्ड अवध, वाल्यूम २४, इलाहाबाद, १६०६, पृ० २५२, २५४, २५५,

रजिया बेगम की मस्जिद .

इस मस्जिद का निर्माण रजिया के शासन काल मे हुआ, जो बनारस मे कारमाइकेल लाइब्रेरी के सामने स्थित है। इस मस्जिद मे स्थापत्य कला के नमूने स्पष्ट रूप से दिखाई देते है।[१६५]

बकरिया कुण्ड की मस्जिद .

यह मस्जिद फिरोजशाह तुगलक के समय हिन्दू मन्दिर तोडकर बनायी गयी। इस मस्जिद मे पॉच-पॉच खम्भो की तीन लड़े लगी है। मस्जिद पर एक लेख से पता चलता है कि जिया अहमद नामक एक व्यक्ति ने फिरोजशाह तुगलक के समय मस्जिद से सलग्न तालाब की सीढियो और फखरूद्दीन अलवी की दरगाह की दीवाल बनवायी। यह स्थापत्य कला के लिए प्रसिद्व है।[१६६] महमूद शाह शर्की के शासन काल मे बनारस चौक पर राजबीबी ने एक विराट मस्जिद का निर्माण कराया जिसमे स्थापत्य कला का स्पष्ट लक्षण दिखाई देता है, जो आज भी विद्यमान है।[१६७]

ज्ञानवापी मस्जिद

औरगजेब के शासन काल मे बनारस में विश्वनाथ मन्दिर को तोडकर ज्ञानवापी मस्जिद का निर्माण हुआ जो मुगल स्थापत्य-कला का सर्वोत्तम नमूना है।[१६८]

चित्रकला

सल्तनत युग (१२०६-१५२६ ई०) ललित कलाओ के पतन का युग था। इसीलिए कुछ इतिहासकारो ने इसे "अन्धकारमय युग" की सज्ञा से विभूषित किया है।[१६९] क्योकि शरियत के अनुसार किसी भी जीवधारी का चित्र बनाना वर्जित है,

---

[१६५] डा० मोती चन्द्र, काशी का इतिहास, वि० वि० प्रकाशन, १६८६, पृ० १८२,

[१६६] उल्जले हेग' द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, तृतीय भाग, कैम्ब्रिज, १६२८ पृ० १८८,

[१६७] सैयद एकबाल अहमद जौनपुरी, पूर्वोक्त, पृ० १६८

[१६८] पं० कुबेरनाथ शुकुल, वा० वै० पूर्वोक्त, पृ० १४२

[१७०] डा० के० एल० खुराना, मध्यकालीन, भारतीय संस्कृति, तृतीय संस्करण, आगरा, १६६४, पृ० १८३,

इसलिए कि ऐसा करके चित्रकार अपने आप को ईश्वर के समकक्ष मानने लगता है। इसीलिए चित्रकला के क्षेत्र मे प्रशासको ने कोई राजकीय सरक्षण नही दिया।

मुगल काल मे बादशाहो द्वारा चित्रकारो को सरक्षण तथा प्रोत्साहन मिलने लगा, तथा इस क्षेत्र मे पर्याप्त प्रगति हुई, मुगल शैली की चित्रकला बनारस मे सिखी के पौत्र उस्ताद मूलचन्द से प्रारम्भ हुई। महाराजा बूँदी ने जब अकबर से सधि कर ली, तब उन्हे अकबर ने बनारस का सूबेदार बनाकर भेजा।[२००] उन्ही के साथ उनके पण्डित, विद्वान् व धार्मिक लोग आये। यही पर इन लोगो ने बूँदी परकोटा और महल, गगा के किनारे बनवाया। उनके साथ आये हुए पडित और विद्वान धार्मिक पुस्तके लिखा करते थे। इन लोगो को इन किताबो के सन्दर्भ के अनुसार चित्रो की आवश्यकता पडी, जिनको सिखी के वशज चित्राकित करने लगे, तथा इनके घराने के लोग वही पास के मुहल्ले राजमन्दिर मे ही बस गये।[२०१] उस्ताद मूलचन्द के समय मे कम्पनी शैली का प्रभाव बहुत जोर–शोर से था, कम्पनी शैली के सगम से उन्होने एक नई शैली को जन्म दिया, जिनमे बनारस की सस्कृति की भी झलक दिखाई पड़ती है।[२०२]

उस्ताद मूलचन्द जल व तैल रगो से शबीहे भी बनाते थे, जिन पर कम्पनी शैली का प्रभाव रहता था। उस्ताद मूलचन्द के बनाये हुए बहुत से ''ध्यान'' के चित्र दस महाविद्या व दशावतार का बनारस के पीताम्बर मन्दिर मे है, इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि बनारस मे चित्रकला के क्षेत्र मे पर्याप्त विकास होने लगा।[२०३]

---

[२००] डा०हृदय नारायण मिश्र, (शोध प्रबंध) १९८४, पृ० १०२,

[२०१] वही,

[२०२] वही, पृ० १०३,

[२०३] वही,

ग्रकाल में बनारस शिक्षा का केन्द्र

मध्य युग मे बनारस की शैक्षिक सरचना, शिक्षा के विविध आयामो से सम्बद्ध ानों और उनकी उपलब्धियों के सम्बन्ध मे संकलित किये गये तथ्यो का विश्लेषण ा जा रहा है। सल्तनत और मुगल काल में बनारस मे सनातन शिक्षा पद्धति के यायियो और दार्शनिक चिन्तन के विविध आयामों से सम्बद्ध विद्वानो की उपलब्धियों संक्षिप्त तथ्यसगत विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। काशी के विद्वानो की हैत्यिक विशिष्टता और पाण्डित्य परम्परा मे वेद, तन्त्र योग, मीमासा, वेदान्त आदि ान्न पक्षो से सम्बद्ध तत्कालीन विद्वानों की रचनाएँ और उनकी विषय वस्तु के ार पर तत्कालीन शिक्षा पद्धति और उसके स्वरूप का मूल्याकन भी किया गया है।

विद्या के केन्द्र के रूप मे बनारस का महत्व उपनिषद् काल के बाद प्रस्थापित है। उपनिषद् काल में काशी आर्य सभ्यता और धर्म के रूप में विख्यात हो चुकी काशी का राजा अजात शत्रु उपनिषदों मे एक दार्शनिक के रूप में वर्णित हुआ है। ने विद्या के प्रोत्साहन में मिथिला के राजा जनक को अपना आदर्श मानता था,[२०४] उन्हीं की भॉति आचरण करने के लिए प्रयत्नशील था। किन्तु सुदीर्घ काल तक ा के केन्द्र के रूप में तक्षशिला काशी से अधिक महत्वपूर्ण बनी रही।[२०५] स्वयं रस के अनेक राजाओ ने अपने राजकुमारों को तक्षशिला में शिक्षा ग्रहण करने के भेजा था। बनारस के अनेक आचार्य तक्षशिला के स्नातक थे। किन्तु कालान्तर में ी देश–देशान्तर के विद्यार्थियो को अपनी ओर आकर्षित करने लगी।[२०६]

ल्तेकर, अन्नत सदाशिव, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्वति, नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्श, ज्ञानवापी, णसी, १६५५, सशोधित सस्करण १६७०–८०, पृ०–८६–८७,

ही, पृ०–८७

तक्कसिलं गत्वा सब्बसिधाठि उग्गद्विठत्वा वाराणसिंण, दिसावा ओक्खो आचारियों हुत्वा

गुप्त युग मे काशी वैदिक शिक्षा का एक विशाल केन्द्र थी। चातुर्विद्या वाली गुप्तकालीन मुद्रा से यह ज्ञात होता है कि इस काल मे काशी में चारो वेद पढाने के लिये कोई पाठशाला अवश्य थी। ये मुद्राये राजघाट की खुदाई से प्राप्त हुई है, जो भारत कला भवन में सुरक्षित हैं।[२०७] गाहड़वाल युग में भी शास्त्र के पठन–पाठन का काशी में आश्रमो तथा मठों का प्रबन्ध था।[२०८] केदार मठ बनारस की प्रसिद्ध शिक्षा सस्थाओं में था।[२०९] १२वी शताब्दी मे बनारस कान्यकुब्ज और प्रयाग अपनी शिक्षा संस्थाओं के लिए प्रसिद्ध थे। अलबरूनी लिखता है कि बनारस और कश्मीर ११वीं ई० में संस्कृत, ज्ञान विज्ञान और शिक्षा के केन्द्र थे।[२१०] महमूद गजनवी के आक्रमण के पश्चात बनारस संस्कृत शिक्षा का एक मात्र केन्द्र हो गया था, क्योकि पश्चिम भारत, पंजाब और कश्मीर से सस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान यहॉ आकर बसने लगे। बनारस आगमन के प्रति विद्वानो मे बडा आर्कषण था। इसके तीन प्रमुख कारण थे बनारस का तीर्थ स्थली होना, विद्या का केन्द्र होना और जीविका का सुगम साधन होना। तुर्की शासकों का जब बनारस पर अधिकार हो गया, उस समय यहॉ शिक्षा की क्या व्यवस्था थी, इसके बारे में कोई स्पष्ट तथ्यसंगत विवरण नहीं प्राप्त होता। चौदहवी शताब्दी के एक लेख से ज्ञात होता है कि मुहम्मद बिन तुगलक के समय बनारस शिक्षा का प्रधान केन्द्र था, और यहॉ धातुवाद, रसवाद, तर्कशास्त्र, नाटक, ज्योतिष और साहित्य की शिक्षा दी जाती थी।

मध्य युग में बनारस के शिक्षा की स्थिति के सम्बन्ध में, गोपीनाथ कविराज द्वारा" काशी की सारस्वत साधना" के अन्तर्ग्रत १३वी शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक के

पंचमाणवकसतानि सिध वाचेति, वही, पृ० ८७,

[२०७] दामोदर, उक्ति व्यक्ति प्रकरण, जिन विजय द्वारा सम्पादित, १२/१६–१८, बम्बई, १९५३,

[२०८] वही, २६/१७,

[२०९] वही, २६/७–२२,

[२१०] सचाऊ, अलबेरूनीज इण्डिया, भाग–१, पृ०–१७३, उक्ति व्यक्ति प्रकरण, ३०/४,

काल खण्ड मे बनारस के शैक्षिक आयामो का सक्षिप्त विवरण दिया गया है। विभिन्न शताब्दियों मे ज्ञान निर्माण की प्रकिया को निरन्तरता प्रदान करने वाले उद्भट् विद्वानो के विषय मे जो विवरण प्रदान किया गया है उससे यह प्रतीत होता है कि १३वी शताब्दी में कविकान्त सरस्वती, कुल्लुकभट्ट और सरस्वती तीर्थ बनारस के प्रमुख विद्वान थे। इस शताब्दी मे महाराष्ट्र के सत ज्ञानेश्वर भी बनारस मे आये थे और यहाँ उनका सम्मान किया गया था।

१४वी शताब्दी में राम चन्द्र आचार्य, श्रीधर स्वामी, ज्ञान नन्द और उनके प्रधान शिष्य प्रकाशनन्द काशी के प्रमुख वेदान्ततक्ष थे। इस अवधि में जैनाचार्य जिन प्रभु सुरि भी बनारस की यात्रा के लिये आये थे। इन विद्वानों ने वेदान्त दर्शन के साथ–साथ दृष्टि–सृष्टि वाद अथवा एक जीव वाद जैसे महत्वपूर्ण दार्शनिक अभिमतो की प्रस्थापना की।

१५वीं शताब्दी में आचार्य रामचन्द्र के पुत्र नरसिंह विट्ठलाचार्य, लक्ष्मीधर, अनन्ताचार्य, मृकरन्द, राधव भट्ट, नरहरि विशारद भट्टाचार्य वासुदेव सार्वभौम, हरिव्यास देव और प्रगल्भाचार्य शुभंकर प्रमुख विद्वान थे। इन विद्वानों ने विभिन्न वैदिक सिद्वांतों के साथ–साथ दार्शनिक आयामों का विषद विवरण प्रदान किया है।

१६वीं शताब्दी मे शेष कृष्ण, शेष नारायण, शेष चिन्तामणि, नारायण भट्ट, श्रीधर भट्ट, माधव, रधुनाथ सम्राट स्थापित प्रभाकर, रामकृष्ण भट्ट, शंकर भट्ट (प्रथम) रघुपति उपाध्याय (प्रथम) नन्द पण्डित, विज्ञानभिक्षु, प्रसाद माधव योगी, भावागणेश, दिव्यसिंह मिश्र, महीधर या महीदास नरहरि विशारद, विद्यानिवास विश्नाथ सिद्वान्त पञ्चानन, रूद्रन्याय वाचस्पति, गोविन्द भट्टाचार्य, नवानन्द, सिद्वान्त वागीश, देवीदास विद्याभूषण, चिरजीव भट्टाचार्य, रामकृष्ण चकवर्ती, महेश ठाकुर, रघुपति उपाध्याय, रामकृष्ण, एकनाथ, नृसिहाश्रम, नारायणाश्रम, प्रकाशानन्द (प्रवोधानन्द) आपय्य दीक्षित,

मधुसूदन सरस्वती, पुरूषोत्तम सरस्वती, रामतीर्थ नृसिह सरस्वती, नीलकण्ठ देव, रामदेव, केशभट्ट, वलभद्र मिश्र, गौरीकान्त सार्व भौम।

१७वी शताब्दी मे दिनकर या दिवाकर भट्ट विश्वेश्वर भट्ट या गागा भट्ट, कमलाकर भट्ट, लक्ष्मण भट्ट, अनन्त भट्ट, दामोदर भट्ट, सिद्वेश्वर भट्ट, नीलकण्ठ भट्ट, शंकर भट्ट (द्वितीय) भानुमह, महादेव भट्ट, दिवाकर भट्ट, दिनकर भट्ट, वैद्यनाथ भट्ट, खण्ड देव शम्भु भट्ट, (शंकरानन्द सन्यासाश्रम मे) रंगोजि भट्ट, भट्टो जी दीक्षित, भानु जी दीक्षित, कौण्ड भट्ट, वीरतारामणि राव, नीलकण्ठ शुक्ल, हरि दीक्षित, शेष चक्रपाणि, शेष रामचन्द्र, पण्डितराज जगन्नाथ, रामचन्द्र तत्सत्वंशीय, लक्ष्मण भट्ट, नीलकण्ठ चतुर्धर, शिवचतुर्धर, रंगनाथ भट्ट (प्रथम), गौरी पति भट्ट, भास्कर अग्निहोत्री या हरि, आपदेव (द्वितीय) अनन्तदेव (द्वितीय), रघुनाथ गणेश नवहस्त जीवदेव, अनन्तपन्त, मुकुन्द पन्त, महादेव पन्त, माधवदेव, वरदराज दीक्षित, रामचन्द्र शर्मा, गोविन्द दैवज्ञ, विष्णु दैवज्ञ, श्रीकृष्ण दैवज्ञ, रंगनाथ दैवज्ञ, मुनीश्वर, नृसिंह भट्ट, विश्वनाथ, शिव भट्ट, दिवाकर भट्ट, कमलाकर भट्ट, रघुनाथ जोशी, नारायण तीर्थ, ब्रह्मानन्द सरस्वती, स्वयं प्रकाशनन्द, वेदांती महादेव अच्युत कृष्णतीर्थ, रामानन्द सरस्वती, त्रिलोचन देव, न्याय पञ्चानन श्री निवास भट्ट (विद्यानन्द) शिवानन्द गोस्वामी, जनार्दन गोस्वामी, लौगाक्षि भास्कर और कवीन्द्राचार्य सरस्वती प्रमुख थे[२११]

उपर्युक्त विद्वानों ने भारतीय दर्शन और मीमांसा के साथ–साथ व्याकरण न्याय काव्य, ज्योतिष और सिद्धान्त संरचना में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनके द्वारा लिखे गये साहित्य में तर्कशास्त्र वैशेषित महाभाष्य के साथ–साथ धर्मशास्त्र के विभिन्न आयामों का युक्तिसंगत विश्लेषण किया गया है। इनमें महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ १६वी शताब्दी में प्राप्त की गयी थी। गोपीनाथ कविराज का मानना है कि बनारस के संस्कृति के

---

[२११] गोपीनाथ कविराज, काशी की सारस्वत साधना, पटना, द्वितीय–सस्करण, १९९८, पृ०–६–८,

इतिहास में १६वी शताब्दी और १७वी शताब्दी स्वर्ण युग कही जा सकती है। इन २०० वर्षों में बनारस में ऐसे पण्डित तथा ग्रन्थकारो का अविर्भाव हुआ था, जिनकी कीर्ति सस्कृत के वांगमय के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी।[२१२] मध्यकाल मे बनारस अपनी विद्वता के लिए प्रसिद्व था। मध्यकालीन बनारस के पडितों ने प्रत्येक शास्त्र के विकास मे एक नवीन दिशा दिखलाई। बनारस के मध्य युगीन सारस्वत साधको का सक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:–

१४वी ई० मे जिन प्रभु ने बनारस की यात्रा की थी उन्हाने अपने ग्रंथ विविध तीर्थ मे बनारस की शिक्षा के पाठ्यक्रम पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि इस नगरी में वेद और कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड पण्डित जयघोष और विजय घोष नाम के दो भाई रहते थे। यहॉ धातुवाद, रसवाद, खन्यवाद तथा मंत्र विद्या मे निपुण लोग निवास करते थे। शब्दानुशासन, नाटक, अलंकार और ज्योतिष के विद्वान पण्डित निवास करते थे। निमित्त शास्त्र और साहित्य विधाओं मे निपुण विद्वानो की भी कमी नही थी। बनारस में वेद–वेदांगो तथा व्याकरण की शिक्षा के अतिरिक्त धातुवाद, रसवाद और खन्यवाद जैसे विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी।[२१३]

वेद तथा तन्त्र

बनारस के मनीषियों ने वेद तथा तंत्र का गहन अध्ययन, अनुसंधान तथा विविध ग्रन्थों का निर्माण किया। इनमे १६वीं शताब्दी के महीधर शास्त्री का नाम उल्लेखनीय है। ये मूलतः अहिक्षेत्र के निवासी थे। वृद्धावस्था में अपने पुत्र कल्याण के साथ बनारस आये। कालभैरव के समीप निवास किये। वैदिक ग्रन्थों में इनकी श्रेष्ठ रचनाऍ वेददीप और चरणव्यूह टीका (१५६०ई०) थी।[२१४] तंत्रशास्त्र में भी इनकी विद्वता उच्च कोटि की

---

[२१२] गोपीनाथ कविराज, काशी की सारस्वत साधना, पटना, द्वितीय सस्करण, १९६८, पृ०–१४

[२१३] विविध तीर्थ कल्प, पूर्वोद्धत, पृ०–७२–७४,

[२१४] आचार्य बलदेव उपाध्याय, काशी की पाडित्य परम्परा, पृ०–२५,

थी मत्रमहोदधि (१५८८ई०) है जिस पर इन्होने नौका नामक टीका लिखी। मातृकार्णव निघण्टु नामक लघुकाय तत्र ग्रन्थ का निमार्ण १५८८ ई० मे किया। इसके अतिरिक्त इन्होने वैष्णव साहित्य, ज्योतिष तथा वेदान्त में भी ग्रन्थों का निर्माण किया।

१४६३ई० मे राघवभट्ट ने प्रसिद्व तंत्र ग्रन्थ "शारदातिलक" के ऊपर पदार्थदर्श नामक व्याख्यान का प्रणयन बनारस में ही किया।[२९५] बनारस के ही निवासी प्रेम निधि पन्त ने शारदातिलक पर नवीन टीका की जिसका नाम सिद्धार्थ चिन्तामणि रखा।

पुराणोतिहास

पुराणोतिहास[२९६] के ग्रथो के अर्थोद्‌धाटन का श्रेयबनारस के दो विख्यात विद्वानो श्रीधरस्वामी और नीलकन्ठ को प्राप्त है। मध्य युग में श्रीधर स्वामी (१३५०–१४५०ई०) ने मणिकर्णिका घाट पर रहकर श्रीमद्‌भागवत की टीका की। नीलकण्ठ ने १६वी शताब्दी में भारत भावदीप के माध्यम से महाभारत के अर्थ का प्रकाशन किया।

न्याय वैशेषिक[२९७] दर्शन के विकास में भी बनारस के विद्वानों का कियाकलाप महत्वपूर्ण है। शंकर मिश्र ने बनारस में रहकर न्याय वैशेषिक दर्शन का विस्तार किया। उपस्कार और भेदरत्न प्रकाश (१४६८ई०) इनके प्रसिद्ध ग्रंथ है।

१६ वीं शताब्दी में नरहरि विशारद रूद्र न्याय, वाचस्पति महेश ठाकुर जैसे विद्वानों ने इसमे योगदान दिया। सांख्यायोगदर्शन[२९८] के इतिहास में बनारस के विज्ञान भिक्षु उल्लेखनीय है। विज्ञान भिक्षु का आविर्भाव काल १६वीं शताब्दी है। उसने सांख्य दर्शन को एक नई दिशा दी और विकसित किया।

---

[२९५] पूर्वोद्धत, पृ०—२६,

[२९६] वही, पृ०—२७,

[२९७] पूर्वोद्वत पृ०—२८

[२९८] पूर्वोद्वत पृ०—३१

मीमांसा दर्शन[२१९] के इतिहास में भी बनारस के विद्वानो का योगदान महत्वपूर्ण है। खण्डदेव मिश्र ने मीमासा शास्त्र को नया स्वरूप प्रदान किया। इनका आविर्भाव काल १६०० ई० से १६६५ई० माना जाता है। दिनकर भट्ट और कमलाकर भट्ट ने इस परम्परा को आगे बढाया।

वेदान्त की परम्परा के विकास मे मधुसूदन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वे नारायण भट्ट के समकालीन थे। इनका नारायण भट्ट से शास्त्रार्थ हुआ था। मधुसूदन सरस्वती के पिता नवद्वीप के पुरंदराचार्य थे। सन्यास ग्रहण करके मधुसूदन सरस्वती बनारस आये थे।[२२०] यहाँ उन्होने विश्वेश्वर सरस्वती से शिक्षा ग्रहण की और बाद मे अद्वैत सिद्धि ग्रन्थ की रचना की। गोस्वामी तुलसीदास इनके समकालीन थे। ऐसा माना जाता है कि जब उन्होने रामचरित मानस पढा, उसकी प्रशंसा में तुलसीदास के पास निम्नलिखित श्लोक लिख भेजा.–

आनन्द कानने ह्यस्मिन्जडिग्मस्तुलसीतरू।

कविता मंजरी यस्य रामभ्रमर भूषिता ।।

यह भी किंवदन्ती है कि उन्होने अकबर से भेंट की।[२२१] मधुसूदन सरस्वती ने अद्वैत दर्शन पर वेदान्त कल्पलतिका, सिद्धान्त बिंदु, अद्वैतसिद्धि, अद्वैतरत्न लक्षण और गूढ़ार्थ दीपिका लिखे। ऋग्वेद के पाठ पर उन्होने आष्टविकृति विवृत्ति नाम का ग्रन्थ लिखा। भक्ति पर भक्ति रसायन टीका, महिम्नस्नोत्रिका और हरिलीला व्याख्या नामक ग्रन्थ लिखे। वेदान्त की परम्परा में मधुसूदन सरस्वती का नाम अग्रणी है। इनके शिष्य शेष गोविन्द सिद्धान्त रहस्य नामक टीका लिखा। नारायण तीर्थ तथा ब्रह्मानन्द सरस्वती ने अद्वैत वेदान्त के विकास पर जोर दिया।

---

[२१९] पूर्वोद्धत, पृ०–३३

[२२०] वही,

[२२१] एनाल्स आफ दि भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इस्टिट्यूट, १९२७, भाग–८, पृ०–१४६,

धर्मशास्त्र के इतिहास मे भी काशी के विद्वानो का योगदान अपना विशेष स्थान रखता है। १२वी शताब्दी के उत्तरार्ध में लक्ष्मीधर भट्ट ने १७ खण्डो में विभक्त अपने विशालकाय ग्रन्थ कृत्यकल्पतरू द्वारा धर्मशास्त्र के विविध विषयो का गम्भीर तथा विशद विवेचन किया है। कल्लूकभट्ट की मनुस्मृति की टीका, मन्वर्थमुक्तावली, मनुभाष्यों में अति उत्तम मानी जाती है।

१३वीं शताब्दी में कविकान्त सरस्वती ने विश्वादर्श का निर्माण किया जिसमे सदाचार, व्यवहार प्रायश्चित तथा ज्ञानकाण्ड का वर्णन १६५ श्लोको में किया गया है। १६वीं तथा १७वीं शताब्दी में नन्द पण्डित धर्माधिकारी ने इस परम्परा को प्रौढावस्था तक पहुँचा दिया। नारायण भट्ट, कमलाकर भट्ट एवं नीलकण्ठ भट्ट ने इसमें अपना योगदान दिया।

नन्द पण्डित महाराष्ट् के मूल निवासी थे। इन्होने लगभग १३ ग्रंथों का प्रणयन किया, जिनमे उनकी प्रख्यात् रचनाएँ है– १. विद्वन्मनोहरा, २. प्रमितक्षरा, ३ श्राद्वकल्पलता, ४– शुद्दि चन्द्रिका, ५. दत्तकमीमांसा, ६. वैजयन्ती।

आधुनिक हिन्दू विधि की वाराणसी शाखा में वैजयन्ती का नाम प्रमुख है। सम्भवतः यही उनकी अन्तिम रचना थी। नन्दपण्डित की कृतियों का निर्माण काल १५६० ई० से १६२५ ई० तक है।[२२२]

नारायण भट्ट[२२३] मध्यकाल के सुप्रसिद्ध सर्वश्रेष्ठ लेखक माने जाते है। ये प्रतिष्ठान से बनारस आये थे। इनकी विद्वता से आर्कषित होकर सुदूर प्रान्तों के शिष्य इनसे विद्याध्ययन के लिये बनारस आया करते थे। नारायण भट्ट की अगाध विद्वता के

---

[२२२] आचार्य पण्डित बलदेव उपाध्याय, काशी की पाण्डित्य–परम्परा, पूर्वोद्वत, पृ०–४२

कारण उन्हे विद्वानों ने 'जगदगुरू' की उपाधि से विभूषित किया था। नारायण भट्ट के अनेक ग्रन्थों में– १ अन्त्येष्टि पद्यति, २– त्रिस्थली सेतु, ३– प्रयोगरत्न अत्यन्त प्रसिद्ध है। नारायणभट्ट का रचना काल १५४०ई० से १५७० ई० तक माना जाता है। गया, काशी, और प्रयाग मे पूजा विधि के लिये उन्होने त्रिस्थली ग्रन्थ की रचना की थी उत्तर भारत के अनेक पण्डितो को भी उन्होने शास्त्रार्थ मे पराजित किया। उनके प्रसिद्ध शिष्यो मे ब्रह्मेन्द्र सरस्वती और नारायण सरस्वती थे।[२२४] नारायण सरस्वती ने १६वी ई० के अंत में वेदान्तो के अनेक ग्रन्थों की रचना की। नारायणभट्ट ने धर्म प्रवृत्ति और प्रयोगरत्न नामक दो ग्रन्थ स्मृतियो पर लिखे थे। १५४५ ई० मे वृत्ताकार पर टीका लिखे थे। वृत्तारत्नावली पिगल भी इनका एक स्वतत्र ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त इनके अन्य २८ ग्रन्थो का वर्णन आउफेवर ने किया है[२२५] नारायणभट्ट ने सस्कृत के लिखित ग्रथों का सग्रह किया था। नारायणभट्ट के सबसे बडे पुत्र रामकृष्ण दीक्षित तथा दूसरे पुत्र शंकर भट्ट थे। कवीन्द्र चद्रोदय में इन्हें बनारस के पण्डितों का मुख्यिा कहा गया है।[२२६]

नारायणभट्ट के सबसे बडे पुत्र रामकृष्णभट्ट के पौत्र गागाभट्ट थे। जिन्होंने अपने पिता दिवाकर भट्ट के कई स्मृति सम्बन्धी ग्रन्थों को पूरा किया था तथा जैमिनी सूत्र पर शिवार्कोदय नामक टीका लिखी। इन्ही की मान्यता से शिवाजी को क्षत्री माना गया था। शिवाजी के राज्याभिषेक के अवसर पर ये वहॉ उपस्थित थे।[२२७] अकबर के राज्यकाल मे बनारस के विद्वान ब्राह्मण कृष्ण नरसिह शेष ने शूद्राचार शिरोमणि नामक

---

[२२३] वही, पृ०–४२–४३

[२२४] का०ई०, पूर्वोक्त, पृ०–३८१–८२,

[२२५] वही,

[२२६] गोविन्द सखाराम सरदेसाईः मराठो का नवीन इतिहास, आगरा, द्वितीय संस्करण १९६३ भाग–१, पृ०–२१६

[२२७] वही, पृ०–२१६,

अपनी पुस्तक में प्रतिपादित किया था कि वर्तमान कलियुग में क्षत्रियों का पूर्ण अभाव है। शिवाजी की आत्मा इस अपमानजनक स्थिति को सहन न कर सकी अत. शिवाजी ने जनमत को अपने पक्ष मे करने के लिये एक प्रतिनिधि मण्डल को कृष्ण नरसिह शेष के विचारो का खण्डन करने हेतु भेजा। इस प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व गागाभट्ट ने किया जो कि अपनी गूढ विद्वता और तीक्ष्ण तर्कशक्ति के लिये विख्यात थे।[२२८] गागाभट्ट एक प्रसिद्व लेखक थे कायस्थ धर्म प्रदीप इनका ग्रंथ है जिसमें शुद्राचार शिरोमणि के काल्पनिक सिद्वान्तो का खण्डन और कायस्थ जाति के लिये– क्षत्रियोचित सस्कार स्वीकृत किये जाने के मत का प्रतिपादन किया।[२२९]

ज्योतिष

बनारस मे ज्योतिषशास्त्र की परम्परा मध्ययुग मे विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। इनमें मकरन्द, दैवज्ञ, अनन्त दैवज्ञ, चिन्तामणि दैवज्ञ, नीलकण्ठ दैवज्ञ, रामदैवज्ञ आदि ने बनारस की ज्योतिष परम्परा को आगे बढ़ाने में अभूतपूर्व सहयोग दिया। मध्ययुग में बनारस में महाराष्ट्रीय ब्राहमणों के अनेक कुल के लोग निवास करने की दृष्टि से यहॉ आकर रहने लगे।[२३०]

मकरन्द में काशी ही सूर्य सिद्धान्त के अनुसार तिथ्यादि के साधन के निमित्त अपने नाम से मकरन्द नामक ग्रन्थ की रचना की। इनकी रचना का काल १४७८ ई० है। अनन्त दैवज्ञ का वंश ज्योतिष विद्या के विकास तथा प्रचार में विशेष रूप से प्रख्यात हुआ। ये विर्दभ (वर्तमान बरार) प्रान्त के अर्न्तगत धर्मपुर के निवासी थे। इनके पिता का नाम चिन्तामणि दैवज्ञ था। इन्होने दो ग्रन्थों का निर्माण किया– १. जातक पद्वति, २. कामधेनु गणित की, टीका। इसी के ऊपर अनन्त दैवज्ञ ने अपनी टीका लिखी। इनका

---

[२२८] पूर्वोद्वत, पृ०–२१४,

[२२९] वही पृ०– २१४,

[२३०] काशी की पाण्डित्य परम्परा, पृ०–४६,

जन्मकाल १५३७ ई० के आस–पास माना जाता है।[231] अनन्त दैवज्ञ के दो पुत्र थे– १. नीलकण्ठ, २ राम, नीलकण्ठ दैवज्ञ अकबर के दरबार मे प्रधान पडित थे। इसका उल्लेख इन्ही के पुत्र गोविन्द दैवज्ञ ने मुहूर्त चिन्तामणि की टीका पीयूषधारा के आरम्भ मे किया है। अकबर के दरबार मे रहते समय नीलकण्ठ ने अरबी, ज्योतिष का गम्भीर अध्ययन किया और उसी का प्रतिफल था– ताजिक नीलकण्ठ का प्रणयन। यह ग्रन्थ फलादेश के लिये ज्योतिषियों का कण्ठहार है। नीलकण्ठ की दूसरी रचना जातक पद्धति सर्वाधिक प्रसिद्ध है जिसका रचना काल १५८७ ई० है।[232]

नीलकण्ठ के अनुज थे राम दैवज्ञ जिनकी रचना मूहूर्त चिन्तामणि है। इसकी रचना १६०० ई० मे की गयी थी। अकबर के ही प्रख्यात मत्री टोडरमल के प्रसन्नार्थ इन्होने टोडरानन्द नामक ज्योतिष ग्रंथ की भी रचना की।[233]

व्याकरण

बनारस व्याकरण का नितान्त प्रख्यात क्षेत्र था। व्याकरण के प्रति काशी के पण्डितों में निष्ठा थी। १४वीं से १८वीं शताब्दी को व्याकरण का स्वर्णयुग माना जाता है। इसी युग में रामचन्द्राचार्य की रचना 'प्रकिया कौमुदी' ने नये युग का सूत्रपात किया (१३५० ई० से १४०० ई०)। रामचन्द्राचार्य का वश भी आन्ध्र देश से सम्बद्ध था। ये सार्वभौम विद्वान थे तथा चतुर्दश विद्याओ का अध्यापन करते थे। जिनमे पतञ्जलि का महाभाष्य भी सम्मिलित था।[234]

---

[231] काशी की पाण्डित्य परम्परा, पृ०–४६,

[232] पूर्वोद्धत पृ०–४७,

[233] वही, पृ०–४७,

[234] वही, पृ०–५६,

शेष श्री कृष्ण– रामचन्द्राचार्य के अनन्तर बनारस के व्याकरणों में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त करने वाले शेष श्री कृष्ण नृसिह के पुत्र थे। इन्होंने प्रक्रिया कौमुदी पर प्रकाश नाम की व्याख्या लिखी है। यह व्याख्या बडी ही विशद तथा विस्तृत है, ये अकबर के समकालीन थे। अकबर के प्रसिद्व मत्री बीरबल के पुत्र कल्याण को व्याकरण की शिक्षा के लिये, उन्हीं के आदेश से, इन्होने यह व्याख्या लिखी।[२३५]

भट्टो जी दीक्षित– पाणिनीय व्याकरण के क्षितिज में भट्टो जी दीक्षित प्रकाशमान नक्षत्र के समान हैं। ये व्याकरण्य के अद्वितीय विद्वान थे। सिद्वान्त कौमुदी की रचना कर इन्होने एक नये सम्प्रदाय की स्थापना की। भट्टो जी केवल व्याकरण शास्त्र के ही प्रकाण्ड विद्वान नहीं थे, प्रत्युत धर्मशास्त्र मे भी अनेक ग्रन्थों की रचना कर इन्होने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया। दीक्षित के पुत्र भानुजि दीक्षित तथा इनके पौत्र हरि दीक्षित भी व्याकरण के तलस्पर्शी विद्वान थे। व्याकरण शास्त्र के इतिहास मे भट्टो जी दीक्षित और उनके परिवार तथा शिष्य मण्डली का अलौकिक योगदान रहा। विद्वानों ने इनके समय को १५६० ई० से १६१० ई० के बीच का स्वीकार किया है।[२३६]

पण्डित राज जगन्नाथ– ये तैलंग ब्राहमण थे। पण्डित राज जगन्नाथ का समय १७वीं शताब्दी है। इनका जातीय उपनाम वेगिनाडु (वैल्लानाडू) था जिसे लोग वेल्ला नाटीय भी कहते थे। इनके पिता का नाम पेरूभट्ट और माता का नाम लक्ष्मी था। पण्डित जगन्नाथ ने बनारस में पण्डित वीरेश्वर से अध्ययन किया था। शाहजहाँ के दरबार मे अपने पाण्डित्य के प्रभाव से बादशाह से सम्मान प्राप्त किया। किवदती है कि दरबार की एक लवंगी नामक सुन्दरी पंडित जगन्नाथ को मोहित कर विवाह के लिये

---

[२३५] पूर्वोद्धत, पृ०–५७,

[२३६] वही, पृ०–५८,

विवश कर रही थी। शाहजहाँ के समझानेपर पडित जगन्नाथ ने लवंगी से विवाह कर लिया। जिससे पण्डित समाज में पडित जगन्नाथ का विरोध होने लगा। अतः प्रायश्चित हेतु पंडित जगन्नाथ बनारस चले आये। जब बनारस में भी पण्डितो ने उन्हे ग्रहण नही किया तो पण्डितराज ने अपनी शुद्ध आत्मा तथा हिन्दू धर्म के प्रति श्रद्धा का परिचय देते हुए पंचगगा घाट पर मा भागीरथी गगा से अपनाने की प्रार्थना की। कहा जाता है कि गंगा लहरी का पाठ करते समय एक–एक पद पाठ पर पतित पावनी माँ गंगा एक–एक सीढी बढने लगीं। इस प्रकार ५२ सीढी तक गगाजी ने अपना स्तर बढाकर पण्डित जगन्नाथ को अपने हृदय में ग्रहण कर उन्हें पवित्र प्रमाणित कर दी। पण्डित राज जगन्नाथ की गगा लहरी आज भी संस्कृत के विद्वानों के कण्ठ की मणिमालिका बन गयी। ये सस्कृत के विद्वानों के अतिरिक्त अरबी और फारसी के भी विद्वान थे।[२३७] इन्होंने अपना युवा जीवन दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ की छत्र–छाया मे व्यतीत किया। दिल्ली के तत्कालीन बादशाह शाहजहाँ ने इन्हें 'पण्डितराज' की उपाधि से विभूषित किया था।[२३८]

इन्होंने कुछ समय तक शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह को संस्कृत की शिक्षा दी। अपने जगदाभरण काव्य में इन्होने दाराशिकोह की प्रशंसा की है। बनारस इनकी जन्मभूमि न होते हुए भी कर्मभूमि अवश्य थी। इन्होंने शाहजहाँ की प्रशसा में अपना एक पद्य रस–गंगाधर में दिया है। आसफ खाँ की मृत्यु के दु.ख में इन्होंने आसफ –विलास नामक ग्रन्थ लिखा था। पण्डित राज ने अनेक काव्य ग्रन्थों की रचना

---

[२३७] बनारसी लाल पाण्डेय आर्य. महात्मा बलवन्त और काशी का अतीत, १६७५, वाराणसी, पृ०–१२२, काशी की पाण्डित्य परम्परा, वही, पृ०–६५,
[२३८] वही,

की है जिनमे भामिनी विलास, गंगालहरी, करूणालहरी, अमृतलहरी, लक्ष्मीलहरी, सुधालहरी, प्राणभरण, यमुना वर्णन और चम्पू प्रसिद्ध है।[२३९]

शाहजहॉ के राज्यकाल मे यूनानी एवं ज्योतिष के अध्ययन का अत्यधिक प्रचलन था। जब कभी बादशाह राजधानी से प्रस्थान करता था तब वह शुभ मुहूर्त विचरवाता तथा जन्म कुडलियॉ भी बनवाता था। इस संदर्भ मे ही महाकविराज जगन्नाथ का नाम आता है। उन्होने यूनानी ज्योतिषी टालमी के ग्रन्थ का, जिसका की अरबी भाषा में अलमाचिस्ट नाम से अनुवाद हुआ, था, संस्कृत में रूपान्तर किया और उसका नाम रखा "सिद्वान्त–सार–कौस्तुभ"। उन्होने ही एक और ग्रन्थ "स्मार्त सिद्धान्त" का भी सकलन किया।[२४०] शाहजहॉ संगीत प्रेमी था। वह विद्या और कला का मुक्तहस्त से पोषण करता था। इतिहासकार कजवीनी ने लिखा है कि उसके दरबार में सबसे अच्छा हिन्दू संगीतकार जगन्नाथ थे सम्राट उस पर अत्यन्त प्रसन्न था।[२४१] उन्हें महाकवि की उपाधि प्रदान की गयी। वह सम्राट का प्रशस्तिगान करते थे और अत्यधिक पुरस्कार भी प्राप्त करते थे।[२४२]

पण्डित रामानन्द पति त्रिपाठी

१७वीं शताब्दी के बनारस के विद्वानों की मण्डली में रामानन्द पति त्रिपाठी का उच्च स्थान था। पण्डित रामानन्द पति त्रिपाठी चतुर्शास्त्र पाण्डित्य से मण्डित होने के कारण तद्युगीन पण्डित्यमण्डली के प्रमुख स्वीकार किये जाते थे। वे विद्या, काव्यकला तथा अलंकार शास्त्र के गम्भीर विद्वान थे। दिल्ली के तत्कालीन मुगल बादशाह शाहजहॉ के द्वारा इन्हें भी विशेष प्रतिष्ठा तथा सम्मान दिया गया था। शाहजहॉ ने

---

[२३९] पूर्वोद्धत पृ०–६६,

[२४०] गायकवाड ओरयन्टल सीरीज न० १७, कानूनगो, दाराशिकोह पृ०–२७६,

[२४१] कजबीनी, पृ०–३२९ (ब)–३१, लाहौरी भाग–१ खण्ड–२, पृ०–५६,

[२४२] बनारसी प्रसाद सक्सेना, मुगल सम्राट शाहजहॉ, जयपुर–प्रकाश– १९८७, पृ०–२७४,

अपने ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह को बनारस मे अपना वरिष्ठ अधिकारी बनाकर भेजा था। तब रामानन्द जी उसके सम्पर्क मे आये और उसे संस्कृत के अध्यात्म शास्त्र को विधिवत पढाया। दाराशिकोह के ह्रदय मे संत और विद्वानों के प्रति आदर की भावना थी। उसने अनेकों दान पत्र दिया तथा पण्डित रामानन्द पति त्रिपाठी को औरगाबाद स्थित महल और भूमि देकर सम्मान किया। दाराशिकोह की दुखद मृत्यु (१६५८ ई०)के बाद त्रिपाठी जी ने पद्यचतुष्टयी के द्वारा अपना शोक प्रकट किया था। इन घटनाओं से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पण्डित रामानन्द पति त्रिपाठी का अविर्भाव १७वी शताब्दी के मध्य भाग मे हुआ था, (लगभग १६२५ ई० से १६७५ई०)। इस प्रकार ये पण्डितराज जगन्नाथ के समकालीन सिद्ध होते हैं।[२४३]

रामानन्द ने वृद्वावस्था में सन्यास ले लिया था। तब इनका नाम ज्ञानानन्द पडा।इन्होने बनारस में लक्ष्मी कुण्ड के समीप ही कालीमठ की स्थापना की जहॉ आज भी भगवती काली जी की दिव्य मूर्ति विराजमान है, इनके तन्त्र विषयक ग्रन्थों के नाम हैं: आकाशवासिनी सपर्या असितादि विद्या पद्यति, कालरात्रि विधानम् (१६७८ ई० मे लिखित) तथा गुह्म–सोढा–विवरणम्। रामानन्द त्रिपाठी सरस कविता की रचना में दक्ष कवि थे। रसिक जीवनम, पद्यपीयूषम, रामचरित्रम् आदि साहित्यिक ग्रन्थ है। रामानन्द पति त्रिपाठी हिन्दी के भी कवि थे। इनकी विद्वता के कारण ही दारा शिकोह ने "विविध विद्या चमत्कार पारडगम्" की पदवी से विभूाषित किया था।[२४४]

विश्वेश्वर पाण्डेय–

विश्वेश्वर पाण्डेय अल्मोड़ा जिले के पटिया ग्राम के निवासी भारद्वाज गोत्री पर्वतीय ब्राहमण थे। इनके पिता लक्ष्मीधर वृद्वावस्था में बनारस आये और बाबा विश्वनाथ की अलौकिक कृपा से उन्हें पुत्र रत्न प्राप्त हुआ जिसका नामकरण उन्हीं के

[२४३] बनारसी प्रसाद सक्सेना, मुगल सम्राट शाहजहॉ,१९८७, जयपुर, पृ० ७०–७१

नाम पर विश्वेश्वर किया गया था। ये अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न विद्वान थे। मन्दार मंजरी, कादम्बरी की शैली में निबद्ध गद्य काव्य इनकी प्रसिद्ध रचना है।[२४५]

मध्यकालीन विद्वानो का जो विवरण मिलता है उससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन सभी विद्वान वेद, वेदात, दर्शन, काव्य, नाटक, धर्मशास्त्र, अलकार और संगीत शिक्षा के पारंगत होते थे। इससे स्पष्ट है इन विषयों की शिक्षा देने की परम्परा मध्ययुग मे भी विद्यमान थी। इस समय की शिक्षा कैसी थी ? इस पर बर्नियर के वर्णन से भी प्रकाश पडता है।[२४६] बर्नियर ने १६६० ई० के आस–पास बनारस की यात्रा की। वह लिखता है कि बनारस का पूरा नगर हिन्दुओ का विद्यालय था। भारत के उस एथेन्स (बनारस) में केवल ब्राह्मण और दूसरे भक्त पठन पाठन में अपना समय व्यतीत करते थे। बनारस में उस समय कोई विद्यालय जैसी संस्था, जहॉ कमबद्ध पढाई होती हो, नही थी।[२४७] गुरूगण शहर के विभिन्न भागों में अपने घरों में और विशेष रूप से सम्पन्न लोगों की अनुमति से उनके बगीचों में रहते थे। कुछ गुरूओं के पास चार शिष्य होते थे और कुछ के पास छः–सात। विख्यात गुरूओ के पास अधिक से अधिक दस से पन्द्रह शिष्य होते थे। प्रायः शिष्य अपने गुरूओं के पास दस से पन्द्रह वर्षों तक रहते थे और धीरे–धीरे विद्याभ्यास करते थे।[२४८] बर्नियर लिखता है कि अधिकांश विद्यार्थी सुस्त होते थे। सम्भवतः उनकी सुस्ती का कारण गर्मी और उन्हें उपलब्ध होने वाला भोजन था। विद्यार्थियों की अपनी पढाई और विद्वता दिखलाने पर किसी मान–मर्यादा अथवा

---

[२४४] पूर्वोद्वत, पृ० ७१–७२,
[२४५] वही, पृ०–७४
[२४६] फांकोआ बर्नियर, पृ०–३३४,
[२४७] वही, पृ०–३३५,
[२४८] वही, पृ०–३३५

पुरस्कार की आशा भी नहीं थी। वे खिचडी खाते थे जो महाजनो की कृपा से मिल जाती थी।[२४६]

पाठ्यक्रम में पहले तो विद्यार्थी व्याकरण की सहायता से संस्कृत पढते थे बाद में पुराण पढते थे। तत्पश्चात् विद्यार्थी दर्शन और पुराण पढते थे। आयुर्वेद और ज्योतिष इत्यादि इच्छित विषयो का भी वे अध्ययन करते थे।

बर्नियर के इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि मध्ययुग में शिक्षण पद्यति का स्वरूप प्राचीन युग मे वर्णित जातक कथाओ से मिलता–जुलता था। शिक्षण–पद्यति मे कोई अन्तर नही आया था।

बर्नियर एव तावेर्नियर दोनो ने ही बनारस के शिक्षालयों पर प्रकाश डाला है। मध्ययुग में भी प्राचीन काल की तरह मन्दिर विद्या के केन्द्र थे। इसकी पुष्टि इन यात्रियो के यात्रा–विवरण से भी स्पष्ट हो जाती है। तावेर्नियर ने बिन्दुमाधव के मन्दिर के पास कंगन वाली हवेली में राजा जयसिंह की निजी पाठशाला को देखा था, जहॉ पर अच्छे घरानों के लड़के शिक्षा प्राप्त करते थे। तावेर्नियर राजा जयसिंह की पाठशाला मे स्वयं गया था और उसने देखा कि कई ब्राह्मण बच्चो को एक ऐसी भाषा (संस्कृत) में जो बोल चाल की न थी, पढना–लिखना, सिखा रहे थे। पाठशाला की एक दालान में उसने दो राजकुमारो को छोटे सरदारों और ब्राह्मणों के साथ बैठे देखा। वे विद्यार्थी जमीन पर खड़्डी से कुछ लिख रहे थे। तावेर्नियर को देखकर उन्होंने उसका परिचय पूछा और यह पता चलने पर कि वह फिरंगी है उन्होने उसको ऊपर बुलाया और उससे यूरोप के, विशेष रूप से फ्रांस के बारे में बहुत सी बातें पूछी। एक ब्राहमण के हाथ में एक डच द्वारा भेंट किये गये दो ग्लोब थे। उन पर तावेर्नियर ने फ्रांस का

---

[२४६] पूर्वोद्धत, पृ०–३३५, ३४०

स्थान दिखलाया। कुछ देर बातचीत करने के बाद पान देकर तावेर्नियर को विदा किया गया।[50]

कवीन्द्राचार्य सरस्वती

१७वी शताब्दी के मध्य मे बनारस के विद्वानों में कवीन्द्राचार्य सरस्वती अलौकिक, अप्रतिम तथा अद्वितीय थे। फ्रांस का प्रख्यात यात्री बर्नियर १६६० ई० के आस–पास भारत भ्रमण के लिये आया था। आगरा में कवीन्द्राचार्य की बर्नियर से भेट हुयी। दोनो तीन वर्षो तक साथ ही रहे। बर्नियर लिखता है कि कवीन्द्राचार्य अपने समय के भारत के सर्वश्रेष्ठ विद्वान थे।[51] इनके अगाध पाण्डित्य एवं अलौकिक ज्ञान के कारण इन्हें "विद्यानिधान" अथवा "सर्वविद्यानिधान" की उपाधि से अलंकृत किया गया था।[52] शाहजहाॅ ने इनके लिये २०००/– रूपये की पेशन भी प्रदान की। परन्तु सन्यासी होने के कारण ये इन रूपयों का स्वयं उपयोग न कर काशी के पण्डितो में वितरित कर दिया करते थे जिसका उल्लेख कवीन्द्र चन्द्रोदय में किया गया है।[53] कवीन्द्राचार्य साहित्य और दर्शन के प्रकाण्ड तथा तलस्पर्शी विद्वान थे। इनके द्वारा रचित प्रकाशित ग्रन्थ दण्डी के दश कुमार चरित्र की टीका है। अप्रकाशित ग्रन्थ में "कवीन्द्र कल्पद्रुम" एक काव्यात्मक रचना है।

कवीन्द्राचार्य की दो हिन्दी रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। पहले ग्रन्थ का नाम "वसिष्ठसार" (रचनाकाल–१६५७ई०) और दूसरे ग्रन्थ का नाम "समयसार" है। पहले का विषय अध्यात्म है, दूसरे का ज्योतिष। ये दोनों अमुद्रित हैं।

---

[50] ट्रेवेल्स इन इण्डिया बाई जे० बापतीस्त तावेर्नियर, भाग–१, पूर्वोद्धत, पृ०–१२०–१२४,

[51] बर्नियर का यात्रा विवरण,

[52] विद्यानिधान कृतमान बहुप्रदान दिल्लीश्वराहतशमत्र भवत्कृपातः कवीन्द्र चद्रोदय, पृ०–५,

कवीन्द्राचार्य का पुस्तकालय

कवीन्द्राचार्य का विशाल पुस्तकालय था। कवीन्द्राचार्य ने अपने पुस्तकालय की पुस्तकों की सूची पत्र तैयार की थी। जिसमें अपनी सभी पुस्तकों के मुख पृष्ठ पर " सर्वविद्यानिधान कवीन्द्राचार्य सरस्वतीना पुस्तकम्" यह मुद्रा अंकित की थी।[२५४] बर्नियर ने कवीन्द्राचार्य के विशाल पुस्तकालय का निरीक्षण भी किया। इसी अवसर पर कवीन्द्राचार्य ने बनारस के तत्कालीन छ महान विद्वानो को बर्नियर से भारतीय दर्शन पर वार्तालाप करने के लिये आमंत्रित किया था। बर्नियर ने मूर्ति पूजा की उपयोगिता पर इन लोगों से प्रश्न भी किया, जिसका कवीन्द्राचार्य ने बडा ही तर्क पूर्ण उत्तर दिया था।[२५५]

१७वीं शताब्दी में बनारस में अनेक पण्डित हुए जिसका वर्णन विशिष्ट निर्णयपत्र से, जो १६४७ ई० में लिखा गया था, पता चलता है कि इसमे ७० पण्डितों और ब्राह्मणों के हस्ताक्षर हैं। इन पण्डितों में अधिकतर महाराष्ट्, कर्नाटक, कौकण, द्रविड और दूसरे ब्राह्मण है जो १७वी सदी के मध्य में बनारस मे रहते थे।[२५६] जो इस प्रकार हैं–

पूर्णानन्द सरस्वती

इनका नाम रामाश्रय के दुर्जन मुखच पेटिका नाम के ग्रन्थ में भी मिलता है।

---

[२५४] श्री विश्वेश्वर–काशिका सुर नदी तीर सुवर्ण ददौ । श्रीमत् साहिजहॉ दिलीप कृपया विद्या निधानधिय· कवीन्द्र चन्द्रोदय पृ० १६,

[२५५] एच०पी०शास्त्री· इण्डियन एन्टीक्वेरी, वाल्यूम ४१,(१६१२) पृ०–२,

[२५६] काशी का पाण्डित्यपरम्परा,पृ०–८५,

[२५७] पूना ओरियंट लिस्ट, ८,३–४, पृ०–१३०,

ाधवदव

ये न्यायसार के लेखक थे। गोदावरी नदी के किनारे धारासुरा ग्राम से बनारस आकर निवास किये और न्याय सार नाम प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की।

र॒दव भट्‌टाचार्य

ये बंगाली विद्वान बनारस मे अपनी पाठशाला चलाते थे।

१७वीं सदी के विद्वानों में भट्‌टो जी दीक्षित का विशेष महत्व है। इनके प्रमुख शिष्य वरदराज (१६००ई० से १६५०ई०) थे। इनके दूसरे प्रतिभाशाली शिष्य नीलकण्ठ शुक्ल थे जिनका समय १६१०ई०–१६७०ई० माना जाता है।

उपरोक्त विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि शैक्षिक परिवेश मे सल्तनत काल से लेकर मुगल काल तक की स्थिति में जिन विद्वानो के सम्बन्ध मे तथ्य प्राप्त हुये है उनमें अधिकांश संस्कृत, काव्य एवं साहित्य से ही सम्बद्ध रहे हैं। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि परम्परागत रूप से भारतीय शिक्षा पद्यति का मूल उद्‌देश्य मानव जीवन को पूर्णता प्रदान करना था। इस प्रकार मध्य युग में शिक्षा व्यवस्था और उसकी उपादेयता के सम्बन्ध में विश्लेषित तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि बनारस शिक्षा का केन्द्र था और शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप परम्परागत ही था।

मध्यकाली- बनारस के घाट तथा उनक महत्व

बनारस की धार्मिक एव सास्कृतिक चेतना का प्राण बिन्दु गगा है जिसके किनारे स्थित घाटो की लम्बी श्रृखला बनारस नगर के परम्परागत महत्व और स्वरूप को प्रदर्शित करती है। यह भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक स्वरूप को उजागर करती है। यद्यपि काशी और गगा का उल्लेख प्राचीन काल के उपलब्ध साहित्य मे है, किन्तु गगा के घाटो का उल्लेख प्राकमौर्यकाल से मिलता है।[२५७] बौद्ध जातको मे काशी के प्रारम्भिक घाटो का उल्लेख हुआ है। प्राचीन काल से १३ वी शदी के मध्य तक काशी के घाटो की लोकप्रियता का निरन्तर विकास होता रहा।[२५८] जिसमे मध्यकाल के शासको के द्वारा भी बनारस के कई घाटो का पक्का निर्माण कराये जाने का वर्णन मिलता है।

अकबर के शासन काल मे जिन अन्य घाटो का पक्का निर्माण हुआ उनमे पंचगगा एवं केदारघाट मुख्य हैं। पचगगा घाट का निर्माण १५८० ई० मे रघुनाथ टण्डन द्वारा कराया गया। केदारघाट का निर्माण कुमार स्वामी द्वारा कराया गया। यह भी उल्लेख मिलता है कि घाट के समीप मठ एव केदारेश्वर शिव मन्दिर का निर्माण भी कुमार स्वामी ने कराया था। यह मठ बनारस आने वाले दक्षिण भारतीय यात्रियो का मुख्य केन्द्र था। यहा ब्राह्मणो एवं विद्यार्थियो को शिक्षा, वस्त्र तथा अन्न दान दिया जाता था। अकबर एवं जहांगीर कालीन बनारस के घाटों पर स्थित तीर्थों का उल्लेख गोस्वामी तुलसीदास ने भी किया है, जिससे घाटो का महत्व उजागर होता है। तुलसीदास ने घाट स्थित तीर्थों मे मर्णिकर्णिका, त्रिलोचन एवं लोलार्क को सर्वाधिक महत्वपूर्ण तीर्थ माना है उन्होने शिव का तीन नेत्र कहा है।[२५९]

---

[257] डॉ० मोती चन्द्र, का० ई०, वि० वि० प्रकाशन वाराणसी, १९८७, पृ० ४५–४६

[258] वही, पृ० ४६

[259] गोस्वामी तुलसीदास, विनयपत्रिका, गीता प्रेस, गोरखपुर, २०१२ वि०, पद्य स० २२

उपर्युक्त तथ्यो को दृष्टि मे रखते हुए तत्कालीन बनारस के विभिन्न घाटो का ऐतिहासिक एव धार्मिक विवरण दिया जा रहा है –

असिघाट

बनारस की भौगोलिक संरचना के सम्बन्ध मे परिसीमा का निर्धारण करते समय वरूणा और असि नदियो का उल्लेख आता है। वस्तुत बनारस की दक्षिणी सीमा का निर्धारण इस प्राचीन नदी के द्वारा ही किया गया था। असि नदी जिस स्थान पर गगा की धारा में सम्मिलित होती है उस स्थान पर प्राचीन काल से ही घाट का उल्लेख प्राप्त होता है। असि एव गगा के संगम स्थल को असिघाट कहा जाता है। मत्स्यपुराण, अग्निपुराण, कर्मपुराण, पद्मपुराण, कृत्यकल्पतरू तथा काशीखण्ड मे इस नदी को काशी की दक्षिणी सीमा निर्धारित करने वाला कहा गया है।[२६०] सर्वत्र असि को शुष्का नदी के नाम से व्यवद्धत किया गया है। अग्नि पुराण[२६१] मे इसे 'असि' नदी कहा गया है। मत्स्यपुराण[२६२] मे 'छुल्क' नदी, लिंगपुराण,[२६३] काशी खण्ड[२६४] और पद्मपुराण[२६५] मे इसे शुष्क नदी कहा गया है। वामनपुराण[२६६] में इसे असी नदी के नाम से पुकारा गया है। जाबालोपनिषद मे इसे नाशी कहा गया है।[२६७] काशी की दक्षिणी सीमा पर स्थित महत्वपूर्ण प्राचीन घाटो मे यह एक है। असि नदी के सन्दर्भ में पौराणिक उल्लेख है कि दुर्गा ने शुम्भ एवं निशुम्भ राक्षसों का वध करने के पश्चात् अपना खड्ग फेक दिया था, जिस स्थान पर खड्ग गिरा वहा की धरती फट गयी तथा एक जलधारा बह निकली। इसी

---

260 काशी खण्ड ४६/४६–५३, कृत्यकल्पतरू, पृ० ११८, कर्मपुराण, ३/२/६२, अष्टाकुर्म. १/२६/६२

261 अग्नि पुराण, वही, पृ० ११२/६

262 मत्स्यपुराण, १८४/४०

263 लिगपुराण, उद्धृत कृत्यकल्पतरू, पृ० ११८

264 काशी खण्ड, पूर्वोद्धृत, पृ ६७–२५३

265 पद्मपुराण, आदिखण्ड, ३३/४६, सृष्टिखण्ड ५/१४/१६

266 वामनपुराण, पूर्वोद्धृत, पृ० ३/२८

267 जागालोपनिषद, खण्ड–२, उद्धृत पृ० ८२

जलधारा से निर्मित नदी को असि नदी कहा गया।[२६८] असि नदी की धार्मिक महत्ता के सदर्भ मे जाबालोपनिषद मे प्रदन्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि असि नदी मे स्नान करने से व्यक्ति के समस्त पापो का नाश होता है।[२६९] काशीखण्ड मे गंगा एव अरि सगम का असि सभेद तीर्थ कहा गया है। इसकी महत्ता के सदर्भ मे उल्लेख है – कि ससार के अन्य सभी तीर्थ इसके १६वे भाग के बराबर भी नही है। इस तीर्थघाट मे स्नान करने से सभी तीर्थों मे स्नान करने का पुण्य फल प्राप्त होता है।[२७०] इससे यह भी इगित होता है कि बनारस के प्राचीन घाट तीर्थों के रूप मे सनातन संस्कृति के अभिकेन्द्र रहे है।

गहडवाल युग मे इस घाट का विस्तार असि घाट से लेकर भदैनी घाट तक था। असि घाट पर काशी का प्रसिद्ध आदित्यपीठ लोलार्ककुण्ड भी था, जिसके कारण गाहडवाल दान पात्रो (११वी– १२वीं सदी ई०) मे इसे लोलार्क घाट कहा गया है।[२७१] १६वीं – १७ वीं शताब्दी मे सत तुलसीदास ने इसी घाट की एक गुफा मे रहकर रामचरित मानस जैसे महान ग्रन्थ की रचना की और सवत् १६८० ई० (१६२३ ई०) मे यहीं उन्होने प्राण त्याग दिया।[२७२] गीर्वाणपदमंजरी मे (१७वी शदी ई०) काशी के अन्य घाटो के साथ इस घाट का भी उल्लेख है।

लोलार्क घाट

---

268 रामबचन सिंह– वाराणसी एक परम्परागत नगर, वाराणसी १६७३, पृ० ४३
269 जाबालोपनिषद, भाग–२
270 काशी खण्ड, त्रि० से, पृ० १६१ से उद्धृत
271 एपिग्ताफिया इंडिका, खण्ड ४, पृ० ११६–११८
272 रणछोर लाल, श्री तुलसी जीवन, काशी, १६१५, पृ० ६६

वर्तमान तुलसीघाट ही मध्यकाल मे लोलार्कघाट के नाम से प्रसिद्ध था। पहले यह असिघाट का ही एक भाग था। घाट पर काशी का प्रसिद्ध आदित्य पीठ लोलार्क कुण्ड होने से यह लोलार्क घाट के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। असि घाट पर तुलसीदास की साधना स्थली होने के कारण इस स्थान को (लोलार्क) तुलसीघाट के रूप मे विकसित किया गया है।[२७३] इसका उल्लेख गाहडवाल शासको के दान पत्रो और गीर्वाणपदमजरी मे मिलता है। धार्मिक एवं सास्कृतिक गतिविधियो की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण घाट है।[२७४]

रामेश्वर घाट

वर्तमान हनुमान घाट का प्राचीन नाम रामेश्वर घाट था जिसके सदर्भ मे यह मान्यता है कि काशी यात्रा के समय राम ने स्वय यहा शिवलिग की स्थापना की थी जो वर्तमान मे जूना अखाडे के परकोटे मे है।[२७५] घाट पर रामेश्वर (शिव) मन्दिर के कारण ही इसका नाम रामेश्वर घाट था, जिसका उल्लेख गीर्वाणपदमजरी में भी मिलता है। १६वी शताब्दी ई० मे बल्लभाचार्य ने बनारस मे इसी घाट पर निवास किया तथा निर्वाण प्राप्त किया था। इसलिए यह घाट वैष्णव धर्मावलम्बियो के लिए महत्वपूर्ण रहा है। इस घाट पर हनुमान मन्दिर भी है। ऐसा माना जाता है कि तुलसीदास के द्वारा बनारस में स्थापित प्राचीन हनुमान मन्दिरो मे से यह भी एक है।[२७६]

केदारेश्वर घाट

---

[273] डॉ हरिशंकरः काशी के घाटः कलात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन वाराणसी १९९६ – पृ० ४६
[274] वही,
[275] वही,
[276] वही, पृ० ४७

इस घाट पर केदारेश्वर शिव का मन्दिर होने के कारण इसका आधुनिक नाम केदार घाट है। केदारेश्वर शिव का उल्लेख काशी के द्वादश ज्योर्तिलिगो मे हुआ है, जिसका सदर्भ मत्स्य पुराण[२७७] अग्निपुराण[२७८] काशीखण्ड[२७९] एव ब्रम्हवैवर्तपुराण[२८०] मे मिलता है। केदारघाट का उल्लेख गीर्वाण पदमजरी मे भी हुआ है।[२८१] ब्रम्हवैवर्तपुराण मे केदारघाट को आदिमणिकर्णिका क्षेत्र के अर्न्तगत स्वाकार किया गया है, जहा प्राण त्यागने से व्यक्ति को भैरवी यातना से मुक्ति मिल जाती है।[२८२] घाट पर केदारेश्वर शिव मन्दिर के अतिरिक्त भवनो मे कुमारस्वामी मठ प्रमुख है, जिसकी स्थापना १६वी शताब्दी ई० के उत्तरार्द्ध मे कुमारस्वामी ने किया था।[२८३]

मानसरोवर घाट

मानसरोवर घाट का प्रारम्भिक उल्लेख गीर्वाण पदमजरी मे मिलता है। मानसरोवर घाट और मानसरोवर कुड का निर्माण आमेर (राजस्थान) के राजा मानसिह ने कराया था।[२८४] १७वी शताब्दी ई० मे इस सरोवर का विशेष धार्मिक महत्व था। ऐसा माना जाता है कि इस सरोवर मे स्नान से हिमालय मे स्थित मानसरोवर मे स्नान का पुण्य मिलता है।

चो र ट्टी घाट

---

[277] मत्स्यपुराण, वही, १८१/२५--३०,
[278] अग्निपुराण, वही, ११२/३–५
[279] काशीखण्ड, वही, ७७–६–५६,
[280] ब्र० वै० पुराण, त्रि० से० पृ० १६२ से उद्धृत
[281] गोपीनाथ कविराज, काशी की सारस्वत साधना, पटना, द्वितीय संस्करण, १९६८ पृ० ५६
[282] डायना एल. इक. बनारसः सिटी आफ लाइट, न्यूयार्क, १९८२ पृ० २२५,
[283] डॉ मोतीचन्द्र, वही, पृ० ३५६
[284] राजबली पाण्डेय, वाराणसी दि हार्ट आफ हिन्दुइज्म, वाराणसी, १९६०

इस घाट का नाम घाट पर स्थित प्रमुख चौसठ योगिनी मन्दिर से जुडा हुआ है। १८वी शताब्दी ई० तक चौसठ योगिनी मन्दिर वर्तमान राणामहल मे था। वर्तमान मे इस महल मे मन्दिर का कोई अवशेष नही है। चौसट्टीघाट का प्रथम उल्लेख गीर्वाणपदमंजरी मे चतु षष्टि योगिनी घट्ट के रूप मे मिलता है।[२८५] धार्मिक दृष्टि से इस घाट का विशेष पारम्परिक महत्व है। घाट पर चौसट्टी देवी मन्दिर के अतिरिक्त काली मन्दिर तथा कई देवकुलिकाए भी है जिसमे शिव, गणेश, तथा कार्तिकेय की मूर्तिया है।

दशाश्वमेध घाट

धार्मिक, सास्कृतिक एव ऐतिहासिक दृष्टि से यह काशी के सर्वाधिक प्रसिद्ध घाटों मे प्रमुख रहा है। १८वी शताब्दी ई० के पूर्व तक इस घाट का विस्तार वर्तमान अहिल्याबाई घाट से लेकर राजेन्द्रप्रसाद घाट तक था। १७३५ ई० मे वाजीराव पेशवा द्वारा इस घाट का पक्का निर्माण कराया गया था। कालान्तर मे यह घाट ५ घाटो मे बट गया है।[२८६]

सोमेश्वर घाट

वर्तमान मानमन्दिर घाट का प्राचीन नाम सोमेश्वर घाट था। जिसका उल्लेख गीर्वाणपदमंजरी मे मिलता है इस घाट का पक्का निर्माण १६वी शताब्दी के अन्तिम चरण में आमेर के राजा मानसिह ने करवाया था। १८वी शताब्दी तक यह सोमेश्वर घाट के नाम से ही लोकप्रिय रहा। कालान्तर मे घाटो का नामकरण निर्माताओं के नाम से सम्बद्ध होने की परम्परा के पश्चात इसका नाम बदल गया

---

285 गोपीनाथ कविराज, वही, पृ० ५६

286 दशाश्वमेधिकं प्राप्य सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ।। यत्किचित् कियतेकर्म तदक्षय मिहेरितम्।। काशीखण्ड, वही, पृ० २०७

और इसके निर्माता मानसिह के नाम पर इसे मानमन्दिर घाट कहा जाने लगा। मानमन्दिर घाट नाम से इसका सर्वप्रथम उल्लेख प्रिन्सेप ने किया है।[२८७]

बनारस का यह घाट धार्मिक एव सास्कृतिक महत्व की अपेक्षा विशाल कलात्मक महल तथा महल मे निर्मित नक्षत्र वेधशाला (१७वी ई०) के लिए उल्लेखनीय है। घाट स्थित महल तथा घाट की ओर निकली बुर्जियाँ एव झरोखे उत्तर मध्यकालीन राजस्थानी राजपूत दुर्ग शैली का महत्वपूर्ण उदाहरण है। इस महल का निर्माण मथुरा के गोवर्धन मन्दिर के सदृश है[२८८] मानसिह के वशज राजा सवाई जयसिह ने १७वी ई० के उत्तरार्द्ध मे ग्रह नक्षत्रों की जानकारी देने वाली नक्षत्र वेधशाला का निर्माण कराया था, जिसमे सम्राट यत्र, लघु सम्राट यत्र, दक्षिणोत्तर भित्तियत्र, नाडी वलय यत्र तथा दिशाग एव चक्र यत्र है। इस सम्बन्ध मे विस्तृत विवरण परिशिष्ट के अन्तर्गत दिया गया है।[२८९]

वृद्धादित्य घाट

वर्तमान त्रिपुरभैरवी घाट का प्राचीन नाम वृद्धादित्य घाट था जिसका उल्लेख गीर्वाणपदमंजरी मे हुआ है। इस घाट की प्रसिद्धि भी अन्य प्राचीन घाटो की भांति इसके धार्मिक महत्व से है।[२९०]

७ रासंधश्वर घाट

आधुनिक मीरघाट ही पूर्व का जरासंघ घाट था। जरासघेश्वर घाट और वृद्धादित्य घाट पर मीर रूस्तम अली के द्वारा किला और पुश्ता बन जाने पर

---

287 कुबेरनाथ सुकुल, वा वै वही पृ० ३७५ वही,
288 ई० बी० हैबलः इण्डियन आर्किटेक्चर, द्वितीय सस्करण, लन्दन, १९२७ पृ० २०४–५
289 वही,
290 कुबेरनाथ सुकुल, वा० वै० वही, पृ० ३७५

उनका संयुक्त नाम मीरघाट हो गया।[२९१] मीरघाट के नाम से इसका प्रथम उल्लेख प्रिसेप ने (सन् १८२२) मे किया।

मणिकर्णिका घाट

तीर्थ के रूप मे इस घाट का प्रारम्भिक उल्लेख मत्स्यपुराण मे मिलता है, जहा गगा तट पर स्थित पाच तीर्थों मे इसे सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।[२९२]

सन् १३०२ ई० मे वीरेश्वर नाम के व्यक्ति ने मणिकर्णिकेश्वर मन्दिर का निर्माण करवाया था।[२९३] इस वर्ष दो राजा भाइयो द्वारा इस घाट को पक्का बनवाया गया था।[२९४] घाट एव घाट के समीप गगा के अनेक तीर्थों की स्थिति मानी गयी है, जिनमे मणिकर्णिका के अतिरिक्त अभिमुक्तेश्वर, इन्द्रेश्वर, चक्रपुष्करणी उमा, तारक, पितामह, विष्णु एवं स्कन्द तीर्थ मुख्य हैं। काशी की पचकोशी यात्रा करने वाले तीर्थयात्री यहीं स्नान, दान, पूजन एव सकल्प लेकर अपनी यात्रा प्रारम्भ करते है तथा अन्त में यही आकर स्नान और दान करने के पश्चात् यात्रा समाप्त करते हैं।[२९५]

बनारस मे यह घाट तीर्थ और श्मशान दोनो के लिये प्रसिद्ध है काशी के इस घाट पर शवदाह की परम्परा कब आरम्भ हुई इस संबध मे काशीखण्ड से पता चलता है कि इस तीर्थ के तट पर बनारस का महाश्मशान स्थित था। यही पर राजा हरिशचन्द्र ने सत्य की रक्षा के लिए चण्डाल के हाथ अपने को बेचा था।[२९६] इस प्रकार यह घाट धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है।

---

291 पूर्वोद्धत।

292 प० कुबेर नाथ सुकुल वा० वै० वही, पृ० ६८

293 जर्नल आफ उत्तर प्रदेश हिस्टोरिकल सोसाइटी, भाग–६ १९३६, पृ० २६

294 पं० कुबेरनाथ सुकुल, वाराणसी डाउन दी ऐजेज, पटना, १९७४, पृ० २७२

295 वही,

296 तृणीकृत्य निजं देंह यत्र राजर्षिसत्तमः हरिश्चन्द्रः सपत्नी को व्यक्रीणाद भूरियंः हि सा।।
काशी खण्ड, ३३/११०

मोक्षद्वारेश्वर घाट

आधुनिक जलशायी घाट ही मध्ययुग मे मोक्ष द्वारेश्वर घाट के नाम से प्रसिद्ध था। जिसका उल्लेख गीर्वाणपदमजरी मे मिलता है। जलशायी घाट के नाम से इसका सर्वप्रथम उल्लेख प्रिन्सेप ने किया है। इस घाट को जलासेन घाट भी कहतें है। इस नामकरण के सन्दर्भ मे यह मान्यता है कि घाट के सामने गगा मे शिव लिग रूप मे शयन करते है।[297] गगा मे शिव का निवास होने से इसे जलशायी या जलासेन घाट कहते है। ऐसा माना जाता है कि मृत व्यक्ति का रूद्राश जलशायी शिवलिग को समर्पित करने से मृत व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है।[298] इसी कारण सम्भवत इसका प्राचीन नाम मोक्षद्वारेश्वर था।

नागेश्वर घाट

आधुनिक भोसलाघाट का प्राचीन नाम नागेश्वर घाट था। जिसका उल्लेख गीर्वाणपदमजरी मे भी मिलता है। घाट पर स्थित नागेश्वर शिव का मन्दिर है, जिसका उल्लेख द्वादश ज्योर्तिलिगो के अन्तर्गत हुआ है। इस घाट को पक्का कराने तथा घाट पर महल निर्मित कराने का कार्य १७६५ ई० मे नागपुर के भोसला राजा ने किया था। यह घाट महल और महल स्थित कलात्मक मन्दिरों और उनके अपूर्व शिल्प सयोजन के लिये उल्लेखनीय है।[299]

अग्नीश्वर घाट

अनीश्वर घाट का विस्तार उत्तर में वर्तमान गणेश घाट तक था। इस घाट का वर्णन गीर्वाणपदमंजरी मे मिलता है। घाट के सामने अग्नितीर्थ तथा घाट के समीप अग्नीश्वर (शिव) मन्दिर के कारण ही इसे अग्नीश्वर घाट कहा जाता है।

---

297 काशी खण्ड, ६६–१६१

298 वा० वै० पृ० ५७–५८ (रूद्रांश का अर्थ शव जलाने के बाद उसका जो अर्धदग्ध अश बचता है।)

299 वा० वै० पृ० – ३७५

घाट के धार्मिक महत्व का उल्लेख लिग पुराण मे मिलता है जिसमे काशी की अष्टायतन शिवयात्रा करने वालो को सर्वप्रथम इसी घाट पर स्नान एव अग्नीश्वर (शिव) के दर्शन करने का वर्णन है, तत्पश्चात् आगे की यात्रा करने का सन्दर्भ आया है।[300]

रामघाट

१७वी शताब्दी के प्रमुख घाटो मे यह घाट अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। रामघाट के सामने गगा मे रामतीर्थ तथा घाट पर रामपचायतन मन्दिर होने के कारण इसका नाम रामघाट हुआ। घाट स्थित राम मन्दिर का निर्माण जयपुर के राजा सवाई जयसिह ने कराया था। जिसका उल्लेख तार्वेनियर ने किया है।[301]

बिन्दुमाधव घाट

बिन्दुमाधव घाट का प्रारम्भिक उल्लेख मत्स्यपुराण मे मिलता है। पचनद तीर्थ या घाट के नाम से इसका विस्तृत उल्लेख काशी खण्ड[302] मे मिलता है। इस घाट को पहले सम्वत् १६३७ वि (१५८० ई०) मे रघुनाथ टण्डन ने बनवाया था। कोनियाघाट पर शेषशायी की मढी मे लगे, पचगंगा घाट के प्रथम निर्माण का शिलालेख फ्यूहरर को मिला था, यह शिलालेख अब लुप्त है।[303] घाट स्थित शानदार विशाल बिन्दुमाधव मन्दिर का निर्माण १५८५ ई० मे राजा मानसिह ने करवाया था।[304] जिसका विस्तृत उल्लेख तार्वेनियर ने अपनी यात्रा विवरण में दिया है। उसने लिखा है कि बिन्दुमाधव मन्दिर की ख्याति सारे हिन्दुस्तान मे जगन्नाथ

---

300 लिंगपुराण (सम्पादक) जे० एल० शास्त्री दिल्ली, १६७३, कृत्यकल्पतरू वही, पृ० १२२ से उद्धृत।

301 ट्रेवल इन इण्डिया बाई जे० बापतिस्त तावेर्नियर, वही, भाग–१, पृ० ११८–२०

302 मत्स्यपुराण, वही, पृ० १८५/६५–६६,

303 काशी खण्ड, वही, ५६

304 काशी खण्ड, वही, पृ० ३६७

के मन्दिर की तरह थी।[305] गगातट से बिन्दुमाधव मन्दिर तक पक्की सीढियो का उल्लेख तार्वेनियर ने किया है।[306] १७वी शताब्दी ई० के मध्य बिन्दु माधव घाट का उल्लेख गीर्वाणपदमजरी मे भी मिलता है।[307]

वर्तमान घाट पर मध्ययुगीन अनेक मठ और मन्दिर अभी भी अपने परिवर्तित रूप मे विद्यमान है। बिन्दुमाधव घाट पर स्थित रामानन्द मठ १४वी–१५वी शदी मे वैष्णव संत रामानन्द का निवास था। यहा पर बल्लभाचार्य जी का बैठका भी है।[308]

उपरोक्त घाट के दक्षिण भाग मे स्थित भवन कगन वाली हवेली के नाम से जानी जाती है। १७वी शदी के पूर्वाद्ध मे आमेर के मिर्जा राजा जयसिह ने इसका निर्माण करवाया था। कगन हवेली के समीप स्थित भवन मे तैलगस्वामी का मठ है। इसी मठ मे एक विशाल शिवलिग (लम्बाई ५० मन वजन का) तैलगेश्वर शिवलिग स्थापित है, जिसके सदर्भ मे मान्यता है कि तैलगस्वामी ने अकेले ही इस विशाल शिव लिंग को गगा से निकालकर यहा स्थापित किया था।[309]

धार्मिक एवं सास्कृतिक गतिविधियो की दृष्टि से यह घाट वैष्णव सम्प्रदाय के लिये विशेष महत्वपूर्ण है। काशी मे स्थित छः अन्य पुरियो के अन्तर्गत इस घाट को काचीपुरी का क्षेत्र माना जाता है।[310]

दुर्गाघाट

इस घाट का प्रारम्भिक उल्लेख गीर्वाणपदमजरी मे मिलता है। पंचगगा घाट के उत्तर में स्थित इस घाट पर ब्रम्हचारिणी दुर्गा मन्दिर के कारण सम्भवतः इस घाट को दुर्गाघाट कहा गया है। गंगा तट से गली तक पत्थर की सुदृढ़ सीढियॉ

---

305 पं० कुबेरनाथ सुकुलः वा० दि ऐजेज, पृ० २७३
306 ट्रैवेल इन इण्डिया बाई जे० बायतिस्त तार्वेनियर, भाग–२, पृ० २३०–३५
307 वही,
308 डा० मोतीचन्द्र, वही, पृ० ३६६
309 हरिशंकर, काशी के घाट, कलात्मक एव सास्कृतिक अध्ययन पृ० ७५–७६,
310 बिन्दुमाधव पार्श्वथा विष्णुकांचीति विश्रुवा, काशीखण्ड पृ० १३/२६

है जिनका निर्माण शास्त्रीय विधि से किया गया है। गगा तट से नौ–नौ सीढियों के बाद चौकी का निर्माण किया गया है। नौ सीढ़ियाँ नौ दुर्गाओ की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मानी जा सकती है। चैत एव आश्विन माह के नवरात्र द्वितीया को घाट पर स्नान करने के पश्चात् ब्रम्हचारिणी दुर्गा का दर्शन करने का विशेष महात्म्य है। यह घाट धार्मिक महत्व के साथ–साथ सास्कृतिक किया कलापो का भी केन्द्र है।[३११]

ब्रह्मघाट

इस घाट का प्रारम्भिक उल्लेख गीर्वाणपदमजरी मे मिलता है। ब्रह्म और काशी के सम्बन्ध का उल्लेख मत्स्यपुराण मे मिलता है। इस घाट पर ब्रह्मा की मूर्ति (१३वीं ई०) तथा बह्मेश्वर शिव मन्दिर भी है। घाट के नामकरण के विषय मे यह कहा गया है कि जब शिव के आदेश पर ब्रह्मा काशी आये तो उन्होने काशी में इसी घाट पर अपना निवास स्थान बनाया था इसलिये इसका नाम ब्रह्मघाट प्रचलित हुआ।[३१२]

आदिविश्वेश्वर घाट

वर्तमान बूदी परकोटा घाट का प्राचीन नाम आदिविश्वेश्वर घाट था। यह घाट बिन्दुमाधव घाट के निकट था, जिसका उल्लेख गीर्वाणपदमजरी मे मिलता है।[३१३] १६वी ई० के अन्तिम चरण मे जिन घाटों का पक्का निर्माण कराया गया, उसमें आदिविश्वेश्वर का घाट भी था। इस घाट का निर्माण बूंदी के महाराजा राय सुर्जन ने करवाया था।[३१४] इस घाट पर निर्मित घाट के अवशेष आज भी विद्यमान है। १७वीं ई० के प्रथम चरण में बूंदी शैली में बना एक ऐसा रेखा चित्र सवाई

---

311 पूर्वोद्धत,

312 मत्स्यपुराण, वही, १८४/१७–१६

313 गोपीनाथ काशीराज, काशी को सारस्वत साधना, पटना, १६६५ पृ० ५६

314 टाड, वही, पृ० १४८

मानसिह सग्रहालय मे है। जिसमे राव सुर्जन द्वारा गगातट पर बनवाया गया पक्का घाट तथा उसके उपरी भाग मे विशाल महल दिखाया गया है। १८वी ई० मे घाट के उत्तरी भाग मे शीतला मन्दिर का निर्माण होने पर आदिविश्वेश्वर का नाम बदलकर शीतला घाट हो गया। प्रिन्सेप तथा शेरिंग ने इस घाट का नाम शीतला घाट रखा है।

गाय घाट

गोप्रेक्ष तीर्थ के नाम से इस घाट का उल्लेख लिग पुराण[३१५]मे मिलता है। धार्मिक दृष्टि से गायघाट भी महत्वपूर्ण घाटो मे एक है। ऐसी मान्यता है कि घाट पर स्नान करने से व्यक्ति गो हत्या के पाप से मुक्ति पा जाता है। यह घाट सास्कृतिक एव धार्मिक कियाओ के लिये भी प्रसिद्ध है।

त्रिलोचन घाट

इस घाट का उल्लेख गहडवाल काल से ही मिलता है।[३१६] घाट के समीप स्थित त्रिलोचन महादेव मन्दिर के कारण ही इसे त्रिलोचन घाट कहा गया है। त्रिलोचन शिव का विस्तृत उल्लेख काशीखण्ड मे मिलता है। यहा इसका सम्बन्ध शिव के तीसरे नेत्र से माना गया है। तुलसीदास ने भी त्रिलोचन का उल्लेख करते हुए इसे काशी के श्रेष्ठ तीर्थो मे एक माना है जिसका सम्बन्ध शिव के नेत्र से रहा है।[३१७]

घाट का पक्का निर्माण पेशवाओ के सहयोग से नारायण दीक्षित ने करवाया था। घाट स्थित प्राचीन त्रिलोचन मन्दिर औरंगजेब के काल मे नष्ट कर दिया गया था जिसका पुर्ननिर्माण १८वी ई० मे नाथू वाला पेशवा ने करवाया था।[३१८]

---

[315] काशी खण्ड, १००/६८–६९

[316] इण्डियन एन्टिक्वरी, खण्ड १८, पृ० १४

[317] काशी खण्ड, त्रिलोचन माहात्म्य, पृ० ७५–७६

[318] विनय पत्रिका, कुबेर नाथ सुकुल, वा० डाउन दि एजेज, पृ० २७५

राजघाट

राजघाट बनारस के प्राचीनतम घाटो मे एक है, जिसका उल्लेख प्राक मौर्यकाल से ही महत्वपूर्ण धार्मिक–सास्कृतिक एव व्यापारिक केन्द्र के रूप मे मिलता है। इस घाट के नामकरण के सम्बन्ध मे यह माना जाता है कि प्राचीन काशी के राजाओ का निवास स्थान इसी घाट के समीपवर्ती क्षेत्र मे था। गाहडवाल शासको का किला भी यही था। घाट के समीप प्राचीन काशी के राजाओ का निवास स्थान होने से ही इसका नाम राजघाट हुआ।[३१९]

आदिकेशव घाट

गंगा वरूणा नदियो के सगम के समीप स्थित आदिकेशवघाट काशी के उत्तरी सीमा पर स्थित अन्तिम घाट है। यह घाट गगातट पर स्थित पाच प्रमुख तीर्थो या घाटो मे एक है। गगा वरूणा के समीप होने के कारण इसे गगा वरूणा सगम घाट भी कहते है। इसका उल्लेख मत्स्य पुराण[३२०] मे हुआ है। इसे काशी का प्रथम एव प्रमुख विष्णुतीर्थ माना जाता है। इस घाट के सन्दर्भ मे उल्लेख मिलता है कि शिव के आदेश से विष्णु गरूड़ पर सवार होकर जब प्रथमत काशी आये तो सर्वप्रथम उनके चरण इसी स्थान पर पड़े।[३२१]

सारांश

मध्ययुगीन बनारस के घाटो के सम्बन्ध में सकलित तथ्यो के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि पुराणों के अर्न्तगत घाटों का उल्लेख तीर्थों के रूप में प्राप्त होता है। अधिकाश संत और भक्ति सम्प्रदाय के लोग गंगा के घाटो पर ही निवास करते थे। अधिकांश घाटो का वर्तमान स्वरूप मुगल काल मे ही आकार ग्रहण करने लगा था।

---

[319] बनारस गजेटियर, पृ० ४२–४८

[320] मत्स्यपुराण, १८५/६५–६६

[321] काशी खण्ड, ५८/ पृ० १७ – १८

सामान्यत काशी के अधिकाश घाट धर्म प्रधान सत्ता से ही सचालित होते थे। तात्पर्य यह है कि अधिकाश घाटो का निर्माण तीर्थस्थल के रूप मे किया गया था। विभिन्न राजाओ और सम्पन्न हिन्दू धर्मावलम्बियो ने गगा घाटो के निर्माण मे महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था।

जारी फरमान

28 फरवरी 1659 ...
...का हिन्दी अनुवाद —

अबुल हसन को यह जानकारी हो - - - - -

हमारे धार्मिक कानून द्वारा यह निर्णय किया गया है कि पुराने मन्दिर न तोड़े जांय एवं नए मन्दिर भी न बनें। इन दिनों हमारे अत्यन्त आदर्श एवं पवित्र दरबार में यह खबर पहुंची है कि कुछ लोग द्वेष एवं वैमनस्यता के कारण बनारस और उसके आसपास के क्षेत्रों में कुछ ब्राह्मणों को परेशान कर रहे हैं। साथ ही मन्दिरों के देखभाल करने वाले ब्राह्मणों को उनके पदों से हटाना चाहते हैं, जिससे उस सम्प्रदाय में असन्तोष पैदा हो सकता है। इसलिए हमारा यह शाही आदेश है कि इस फरमान के पहुंचते ही तुम्हें यह चेतावनी दी जाती है कि भविष्य में ब्राह्मणों व अन्य हिन्दुओं को किसी प्रकार के अन्याय का सामना न करना पड़े। इस प्रकार वे सभी शान्ति पूर्वक अपने व्यवसायों में लगे रहें एवं हमारे अल्लाह द्वारा दिए गए साम्राज्य (जो हमेशा बरकरार रहेगा) में पूजा-पाठ करते रहें। इस पर शीघ्रातिशीघ्र विचार होना चाहिए। तारीख १५ जुम्द-स-सनिया हिजरी १०६९ (१६५८-५९ ई.)।

जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी से संकलित फ़र्मान

इन फ़र्मानों के द्वारा जंगमबाड़ी मठ को मुगल शासकों द्वारा समय समय पर भूमि अनुदान में दी गयी एवं उसकी पुष्टि की गयी ।

अकबर बादशाह का फर्मान
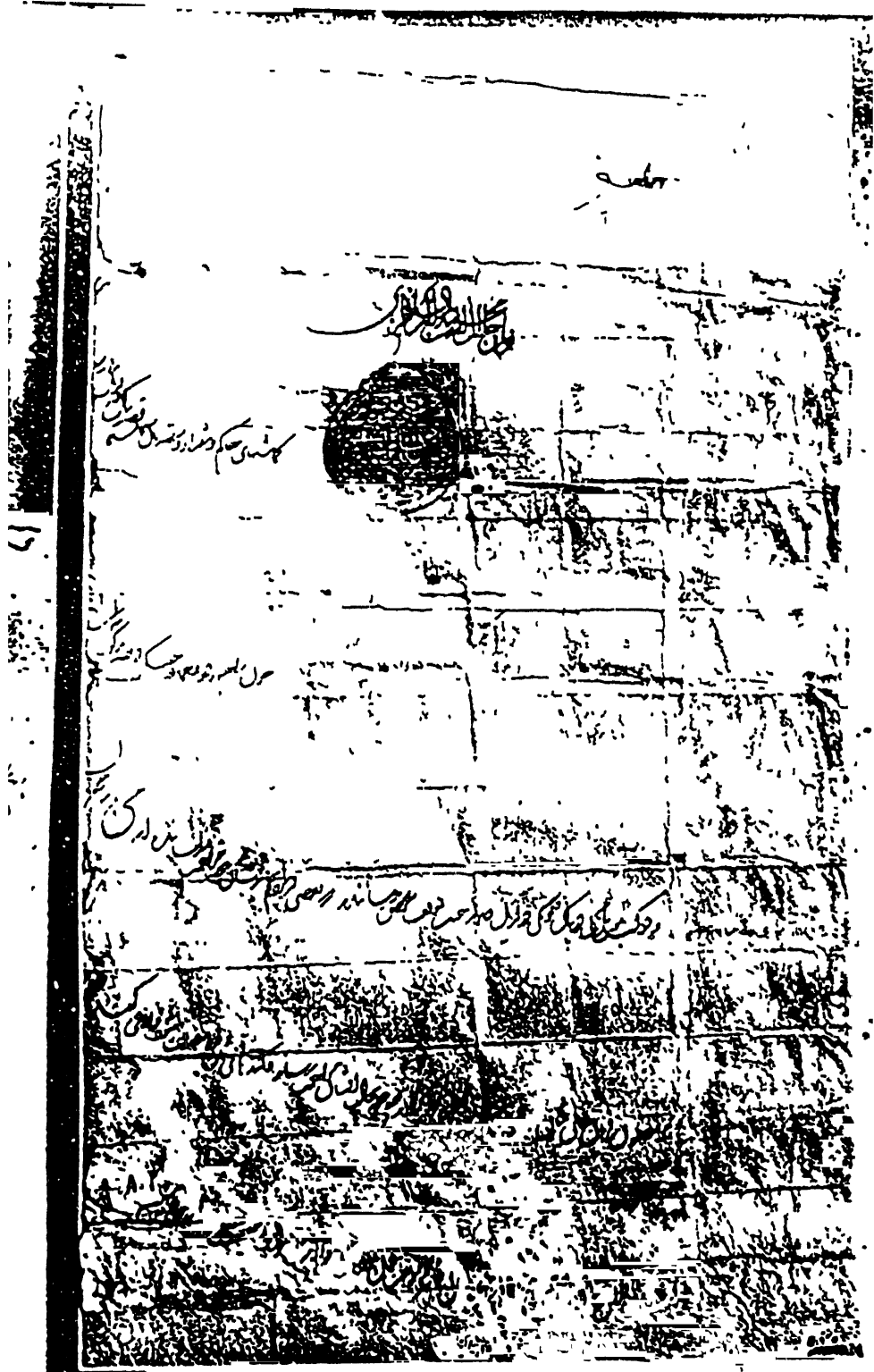
1024 हिजरी (1613 ई.) में जहाँगीर बादशाह द्वारा फर्मान जारी कर वहाँ के जागीरदार को आदेश दिया गया परगना हवेली बनारस की 178 बीघा जमीन के मामलात में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाय।

दारा शिकोह का फर्मान

शाहजहां बादशाह का फरमान

शाहजहाँ बादशाह का फ़र्मान

औरंगज़ेब का फ़र्मान

औरंगजेब का फरमान

विशिष्ट शब्दावली

अबवाब		सरकारी अधिकारियो और जमीदारों द्वारा लगाये जाने वाले विविध प्रकार के उपकर चुगी व प्रकार। ये कर इस्लाम धर्म मे स्वीकृत नही है।
आइन		सरकारी नियम कानून
आबादी		सामान्य अर्थ मे कृषि के क्षेत्र मे बसी जनसख्या विशेषकर कृषि कार्य मे लगी हुई जनसख्या।
अलत्मगा		सरकारी अनुदान, इस विशेष प्रकार की काशकारी की शुरूआत जहागीर द्वारा की गयी थी।
चकला		सत्रहवी शताब्दी में इसका अभिप्राय उस खालसा भूमि से था जो चकलादार के अधीन होती थी। बगाल मे १८वी शताब्दी मे यह एक प्रशासनिक क्षेत्र था।
दाम		तांबे का एक सिक्का जो अकबर के काल मे रूपये के चालीसवे हिस्से के बराबर होता था लेकिन चादी के सिक्के के हिसाब से इसका मूल्य बदलता रहता था।
दीवान	.	राजस्व मन्त्रालय में एक उच्च अधिकारी तथा प्रान्तीय राजस्व अधिकारी।
फौजदार	:	१६वीं से १८वीं शताब्दी तक किसी प्रान्त के एक हिस्से के सामान्य प्रशासन की देखरेख करने वाला अधिकारी।
हासिल	.	कभी कभी इसका प्रयोग महसूल के अर्थ मे किया जाता है जो सन्दर्भ के अनुसार उपज अथवा उपज की मांग को दर्शाता है। सोलहवीं शताब्दी से आमतौर पर इसका इस्तेमाल वास्तविक आय के अर्थ

	मे होने लगा जो अनुमानित आय के ठीक विपरीत अर्थ मे है।
हाट	गावो मे सामान्यत सप्ताह मे लगने वाला बाजार
हुण्डी	विश्वास पर आधारित एक प्रकार का भुगतान पत्र। जिसके आधार पर एक स्थान के व्यापारी को रूपये देकर दूसरे स्थान के व्यापारी से रूपये ले लिये जाते है।
इजारा	भू–राजस्व का ठेका।
इजारादार	भू–राजस्व का ठेकार।
जागीर	मुस्लिम शासन के दौरान वह क्षेत्र जिसका राजस्व किसी राजकीय कर्मचारी को उसकी सेवाओ के बदले मे वेतन के रूप में एक नियत अवधि के लिए दिया जाता था।
जमा	राज्य द्वारा निर्धारित किसी क्षेत्र अथवा जागीर का कुल राजस्व।
जजिया	गैर मुस्लिमों से वसूल किया जाने वाला व्यक्तिगत कर।
जकात	यह कर मुसलमानो की उस सम्पत्ति पर लगता था जो उसके पास निर्धारित समय तक रहती थी। यह कर गैर मुस्लिमों से नही लिया जाता था। भारत में यह कर धार्मिक कर के रूप मे नही बल्कि आयात शुल्क (सीमा शुल्क) के रूप मे वसूल किया जाता था।
जिहाद	धर्म युद्ध। इस्लाम के प्रसार के लिए युद्ध
जमा हाल हासिल	वास्तविक मलगुजारी

जात		मनसबदार का व्यक्तिगत पद जो उसकी पद स्थिति को निश्चित करता था तथा जिसके अनुसार उसे वेतन दिया जाता था।
जाबिताना		भूमि की पैमाइश के सम्बन्ध मे होने वाला व्यय।
तका		यह एक तोला सोना या चादी का होता था।
कानूनगो		भूमि के विभिन्न हिस्सो, नियमो और भू–राजस्व वसूली का रिकार्ड रखने वाला सरकारी कर्मचारी जो लेखपाल तथा पटवारी के ऊपर होता था।
खालसा भूमि		राज्य के सीधे नियत्रण और प्रबन्ध मे रखी गयी भूमि।
खराज		गैर मुस्लिमो किसानो से वसूल किया जाने वाला भूमि कर, इस्लाम धर्म मे स्वीकृत चार करो मे से एक। अन्य कर है – खुम्स, जजिया और जकात।
खुदकाश्त		भू–स्वामी द्वारा अपनी जमीन पर स्वय खेती करना, जबकि पाहीकाश्त इसके विपरीत होता था।
कोतवाल	.	नगर की सुरक्षा की देखभाल करने वाला अधिकारी।
खिजानादार		एकत्रित राजस्व को सुरक्षित रखने वाला अधिकारी।
करोड़ी	:	सरकारी तौर पर इसे अमल गुजार भी कहा जाता था। अठारहवी शताब्दी मे इसका प्रयोग जागीरदार द्वारा नियुक्त सग्रहकर्ता के अर्थ में भी किया जाता था।
तहवीलदार	:	कोषाध्यक्ष।
मदद–ए–माश	.	विद्वान अथवा धार्मिक लोगा की सहायता के लिए सरकार द्वारा निर्धारित राजस्व परोपकारी संस्थान।

मदरसा	.	उलमा को विशेष रूप से फिक का ज्ञान कराने के लिए पाठशाला।
महाजन	.	व्यापारी, साहूकार
महाल		शुद्ध अर्थ मे "राज सम्पत्ति" भूखण्डो का एक वर्ग जिसे भू–राजस्व को आंकने के लिए राजस्व की एक ईकाई माना जाता था। अकबर के शासन काल मे राजस्व का एक उपविभाग था।
मण्डी	.	नियमित रूप से लगने वाला बड़ा बाजार।
मनसब		अधीनस्थ घोडो और सवारों की संख्या के आधार पर बनाया गया मुगल राजदार का एक पद। यह पद मनसबदार को दिया जाता था। मनसबदारी प्रथा अधीनस्थ घोड़ो और सवारो की सख्या पर आधारित सरकारी पदानुक्रम थी।
मौजा		राजस्व के सन्दर्भ मे गाव के लिए प्रयोग मे आने वाला शब्द।
मुहर		मुगल कालीन सोने के सिक्के।
मीर–ए–अर्ज		आवेदन पत्रो को प्राप्त करने वाला अधिकारी।
मीर–बख्शी		मुगल शासन के चार प्रमुख विभागो मे सैन्य विभाग का मन्त्री।
मीर–ए–सामान		मुगल साम्राज्य के चार प्रमुख केन्द्रीय विभागो के मन्त्रियों मे से एक विभाग का मन्त्री। यह सम्राट के हीरे, जवाहरात, हथियार, साधारण वस्तुए शाही भवन इत्यादि के रख रखाव तथा चीजो को वक्त पर उपलब्ध कराता था।
मुकद्दम		गांव का प्रमुख अधिकारी। इसे चौधरी, पटेल, खूत या मुखिया भी कहा जाता था।

मुतसद्दी . यह बन्दरगाह का प्रमुख अधिकारी होता था।

मुशरिफ . लेखाकार।

राहदारी वह कर जो किसी विशेष क्षेत्र मे गुजरने वाले व्यापारियो से वसूल किया जाता था।

रैयत किसानो के लिए सामान्यत प्रयोग किया जाने वाला शब्द।

परगना गावो का समूह। कस्बो के स्थान पर सरकारी तौर पर प्रयोग होने लगा।

पटेल ग्रॉम का मुखिया।

पटवारी ग्राम का लेखपात्र

पेशकश जमीदारो तथा राजाओ द्वारा मुगल सम्राट को दी जाने वाली भेट तथा वार्षिक कर।

फरमान राजकीय आज्ञा पत्र

नाजिम प्रान्त पति।

नानकार कानूनगो द्वारा वसूल किये गये लगान का एक प्रतिशत दस्तूरी।

फोतादार · कोषाध्यक्ष (पोतदार) खजाची।

वितिकची . लिपिक।

वजीर–ए–आजम : प्रधानमन्त्री।

शरा (शरीयत) इस्लाम के धार्मिक नियम शरा कहलाते थे।

शिकदार	.	शिक (सरकार या जिला) का प्रमुख अधिकारी।
सद्र–ए–सुदूर	.	मुगल केन्द्रीय प्रशासन के चार प्रमुख विभागो में एक विभाग का मन्त्री। यह समस्त धार्मिक कार्यों की देख–रेख करता था। वह मुख्य न्यायाधीश था तथा न्याय सम्बन्धी कार्यों मे वह सम्राट की सहायता करता था।
सराय	.	व्यापारी तथा यात्री के ठहरने का अस्थायी स्थान।
सर्राफ	.	देशी महाजन या उधार देने वाला।
सैयद		मुसलमानो का एक प्रमुख समुदाय जो मोहम्मद के नाती हुसैन के वशज होने का दावा करता था।
सूबा		मुगल साम्राज्य का एक प्रान्त।
सुयूरगाल		मुगल काल मे पादशाह द्वारा दिये गये भत्ते। इनका भुगतान नकद अथवा भूमि अनुदानों के रूप मे किया जाता था।
सनद		वह प्रपत्र जिसके द्वारा किसी व्यक्ति विशेष को सरकारी पद, अनुदान दिया जाता है।
ताल्लुक		अधीन क्षेत्र या आश्रित राज्य।
तकाबी		सरकार द्वारा किसान को दी गयी पेशी रकम।
हासिले–बाजार		बाजार कर।
वजीर	.	मुगल सम्राट का प्रमुख मन्त्री। राजस्व एव प्रशासन सम्बन्धी सम्पूर्ण अधिकार इसके पास रहते थे।
विरान	.	निर्जन स्थान, मुख्यतः ऐसे ग्राम के लिए कहा जाता था जिसे लोग छोड़कर चले जाते थे और जहा कृषि कार्य नही होता था।

आमिल, अमलदार	ग्रामो मे भूमि कर वसूलने वाला अधिकारी, अठारहवी शताब्दी में इसका सूबेदार के अर्थ मे प्रयोग किया जाने लगा जो सामान्य प्रशासन देखता था।
अमीन	सत्रहवी शताब्दी मे प्रान्तो के दीवान के अधीन राजस्व निर्धारण करने वाला अधिकारी।
उलमा	इस्लामी धर्म शास्त्र का ज्ञाता।
बनजारा	अनाज तथा पशु व्यापारी, हिन्दुओ की एक घुमक्कड जनजाति।
बटाई	खेत जोतने वाले और भू–स्वामी अथवा सरकार के बीच उपज का बटवारा। नकदी अथवा अनाज के रूप मे भुगतान किया जाता था।
दस्तूरूल अमल	राजस्व सम्बन्धी नियम व अधिनियमो का सकलन जिसमे मालगुजारी का सकलन जिसमे मालगुजारी व राजस्व सम्बन्धी कार्यों मे सलग्न कर्मचारियो के लिए निर्देश होते थे।
दीवाने–आला	साम्राज्य के केन्द्रीय शासन का वित्तमत्री (इसे वजीर भी कहा जाता था)
दीवाने खालसा	उन क्षेत्रो का राजस्व मन्त्री जिनकी आय सीधे खजाने में जमा होती थी।
दीवाने–ए–तन	वेतन सम्बन्धी राजस्व मन्त्री।
नाजिर जाच	दरबार को एक अधिकारी जो सम्मन देने अथवा पडताल करने वाला होता था।
मैय्यावारा	जमीदार परिवार के सदस्यों द्वारा सयुक्त रूप से विशिष्ट अधिकार एवं अनुलाभ रखना।

सजावल — राजस्व एकत्रित करने हेतु नियुक्त अधीक्षक।

सदावर्त — भोजन दान।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१— प्राथमिक स्त्रोतः

अफीफ शम्सेसिराज . तारीखे फीरोजशाही, कलकत्ता, १८६० ई.

अब्बास शरबानी — तवारीख—ए—शेरशाही, अनुवादक राजाराम अग्रवाल, उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान, लखनऊ, १९८३ ई.

अबुल फजल — अकबर नामा, कलकत्ता, १८७३—८७ ई
आइने अकबरी, नवले किशोर प्रेस, १८९२ ई

अब्दुल्लाह — तारीखे दाऊदी, एस. ए रसीद, अलीगढ, हस्तलिपि, १९५४ ई

अब्बास खा सरवानी . तोहफाते अकबरशाही अथवा तारीखे शेरशाही, अलीगढ, इलाहाबाद, डॉ परमात्माशरण एव बाडलीएन की हस्तलिपियां।

अमीर खुसरो — तुगलुक नामा, १९३३ ई

खाफी खॉ — मुन्तखब—उल—लुबाव, (कलकत्ता, १८६०—७४ ई, १९०९—१९२५ ई)

जहागीर — तुजुके जहॉगीरी, गाजीपुर तथा अलीगढ, १८६३—६४ ई.

निजामुद्दीन अहमद . तबकाते अकबरी, कलकत्ता, १९२७ ई

बदायूनी अब्दुल कादिर : मुन्तखब—उत—तवारीख, कलकत्ता, १८६८ ई

बरनी, जियाउद्दीन — तारीखे फिरोजशाही, कलकत्ता, १७६०–६३ ई

बैहाकी, अब्दुल फजल — तारीख–ए–वैहाकी, सम्पा डब्ल्यू एच मारले, कलकत्ता, १८६२ ई

मिनहाज सिराज — तबकाते नासिरी, कलकत्ता, १८६३–६४ ई

अबू–नस्त्र–उतबी — तारीख–ए–यामिनी, इजीप्ट, १८६६ ई

इब्नेबत्तूता . यात्रा विवरण, पेरिस १६४६ ई.

बाबर जहीरूद्दीन मुहम्मद : बाबर नामा, लेईडेन तथा लन्दन, १६०५ ई, गिक मेमोरियल सीरीज – १

बाबरनामा . मूल तुर्की से अनुवाद मिस्टर लेईडेन और विलियम अर्सकिन के अग्रेजी अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर अनुवादक श्री केशव कुमार ठाकुर प्रकाशक, आदर्श हिन्दी पुस्कालय, इलाहाबाद, सितम्बर, १६६८ ई , प्रथम सस्करण।

मौलवी अब्दुसलामनोमानी — आसारे बनारस, वाराणसी।

२ – ि़तीयक स्त्रोतः

अग्निपुराण . मूल सस्कृत, खेमराज श्रीकृष्णदास जी वेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय, बम्बई, सरस्वती प्रेस, कलकत्ता, १८२२ ई सम्पादक बलदेव उपाध्याय, काशी सस्कृत सीरीज १६८, वाराणसी, १६६६ ई

अथर्ववेद सहिता — अग्रेजी अनु डब्ल्यू. डी हिबटनी भाग १, २ मोती लाल बनारसी दास, वाराणसी, १६६२ ई

अर्थशास्त्र . कौटिल्य, सम्पादक गैरोला वाचस्पति विद्याभवन, संस्कृत ग्रन्थालय – ७५, चौखम्भा, विद्याभवन, वाराणसी, १६७७ (द्वितीय संस्करण)

अष्टाध्यायी · पाणिनी भाग १, २ अंग्रेजी अनुवाद एस सी बसु मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, १९६२ (पुनर्मुद्रित)

ऋग्वेद सहिता . सायण भाष्य सहिता भाग– २, ३, तिलक महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, वैदिक सशोधन मण्डल, पूना, १९४१ ई

काशी रहस्य : मनसुख रायमोर, ५ क्लाइव रो, कलकत्ता, १९५७ ई

काशी केदार महात्म्य · भाषानुवाद पण्डित विजयानन्द त्रिपाठी, सम्पा कृष्ण पन्त साहित्याचार्य, अच्युत ग्रन्थमाला, काशी १९३६ ई.

कूर्म पुराण भाषाटीका पडित नारायण पति शर्मा, खेमराज श्री कृष्ण दास सेठ, बम्बई, १९१२ ई.

काशीखण्ड (स्कन्दपुराण) मूल सस्कृत, खेमराज श्री कृष्ण दास, वेकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय, बम्बई, १९०८ ई

काशीतिहास भाऊशास्त्री बझे, काशी क्षेत्रय, महावश, प्रथमावृत्ति सं २०११

कृत्यकल्पतरू (तीर्थ विवेचन काड) लक्ष्मीधर विरचित, गायकवाड ओरियण्टल सीरीज, बडौदा, १९४२ ई

तीर्थ चिन्तामणि वाचस्पति मिश्र विरचित, बिब्लिओथिका इण्डिका, १९१२ ई. कलकत्ता, एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, न्यू सिरीज न. १२५६ ई

पद्मपुराण . मूल सस्कृत, भाग १–५, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, १८९३ ई.

प्रबोध चन्द्रोदयम् कृष्णमिश्र विरचित, विद्याभवन, सस्कृत ग्रन्थमाला १४, चौखम्भा, विद्याभवन, वाराणसी, १९५५ ई

ब्रह्मपुराण मूल एवं अनुवाद सम्पादक तरिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९७६ ई

मत्स्यपुराण — मूल श्री जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य, संस्कृत प्रकाशन, कलकत्ता, १८७६ ई, हिन्दी अनुवाद, पण्डित रामप्रताप त्रिपाठी, साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सवत् २००३

मनुस्मृति — सम्पा, प्राणजीवन हरिहर पाण्ड्या, मणिलाल ईच्छा राम देसाई, बम्बई, १६१३ ई

महाभारत — आलोचनात्मक सस्करण, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इस्ट्टीयूट, पूना, १६६० ई

रामायण — बाल्मीकि प्रणीत, सम्पादक शिवराम शर्मा, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १६५७ ई

लिग पुराण — मूल सस्कृत जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य, सस्कृत प्रकाशन, कलकत्ता, १८८५ ई

वायुपुराण — मूल सस्कृत, गगा विष्णु श्री कृष्णदास,लक्ष्मी वेकटेश्वर स्टीम प्रेस, कल्याण, बम्बई, १६३३ ई

वामन पुराण : खेमराज श्रीकृष्ण दास (प्रकाशक), श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, स १६८६, शके १८५१

विष्णुपुराण : हिन्दी अनुवाद सहित, मुनि लाल गुप्त मोतीलाल जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर, षष्ठ संस्करण, स २०२४

वीरमित्रोदय (तीर्थप्रकाश) — मित्रमिश्र विरचित, चौखम्भा संस्कृत सीरिज आफिस वाराणसी, १६१७.

बौघायन श्रौतसूत्र — सम्पा. डब्ल्यू कलन्ड एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, १६०७.

बृहदारण्यकोपनिषद् — आनन्दगिरिकृत टीका, आनन्दाश्रम सस्कृत गन्थावलि, ग्रन्थाक, १५, १६१४.

शतपथ ब्राह्मण	हिन्दी अनुवाद गगा प्रसाद उपाध्याय, रिसर्च इन्स्टीयूट ऑफ एशियण्ट साइन्टिफिक स्टडीज, नई दिल्ली, १९७० ई
शखायन श्रौतसूत्र	सम्पादक, अलफर्ड हिलेब्राण्ड, एशियाटिक सोसाइटी, १८८६ई.
शिव पुराण	श्री वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई, स. १९६५ ई
स्कन्द पुराण (काशी खण्ड)	खेमराज श्री कृष्णदास (प्रकाशन) श्री वेकटेश्वर प्रेस बम्बई, स १९६५, शके १८३० ई
हरिवश पुराण	मूल गगा विष्णु श्री कृष्णदास, लक्ष्मी वेकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय, बम्बई, सवत् २०११
त्रिस्थली सेतु ग्रन्थावलि	नारायण भट्ट विरचित, आनन्दाश्रम सस्कृत ग्रन्थाक, ७८, १९१५ ई.

बौद्ध सा ित्य

अगुत्तर निकाय	पालि भाग १–४, सहसम्पादक, भिक्षु जगदीश कश्यप, नालन्दा देवनागरी लिपि सीरीज, पाली प्रकाशन बोर्ड, बिहार, १९६० ई
जातक	भाग–१,२,३,४,५,६ हिन्दी अनुवाद, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, स २०१३, स. २०१४, स. २२०४, सं २००८, स. २०११, सं. २०१३.
दिव्यावदानं	सम्पादक, पी. एल. वैद्य, बौद्ध सस्कृत ग्रन्थमाला, नं. २०, मिथिला इस्टीयूट, दरभगा, १९५९ ई.

दीर्घ निकाय — पालि (सुत्तपिटक) भाग १–३, सहसम्पादक, भिक्षु जगदीश कश्यप, नालन्दा देवनागरी पालि सीरीज, पालि प्रकाशन बोर्ड, बिहार, १९५८ ई

घम्मपद्द कथा — अग्रेजी अनु. ई डब्ल्यम बरलिगम, भाग १–३, पाली डेक्स्ट सोसायटी, लुजाका एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लन्दन, १९६६ ई

धम्मसगणिपालि — भिक्खु जगदीस कस्सपो, बिहार, १९६० ई

बुद्धचरित — अश्वघोष विरचित भाग १, २ रामचन्द्र दास शास्त्री (रचनाकार एव व्याख्याकार), चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९६३

मज्झिम निकाय — पालि (सुर्त्तापटक) भाग १ –३, सम्पादक पी बी वपट, भिक्षु जगदीश कश्यम, नालन्दा देवनागरी–पालि सीरीज, पालि प्रकाशन बोर्ड, बिहार, १९५८ ई

महावश — अग्रेजी अनु डब्ल्यू गाइगर, पालि टेक्स्ट सोसाइटी, लुजाक एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लन्दन, १९६४ ई

विनयपिटक — अग्रेजी अनु राइसडेविड्स, ओल्डेनवर्ग, भाग १, ३ सम्पादक मैक्समूलर, सेकेड बुक आफ द ईस्ट भाग – १२, १७, २० मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, १९६५ ई.

सयुक्त निकाय — पालि (सुर्त्तापटक) सहसम्पा भिक्षु जगदीश कश्यप, भाग १–४, नालन्दा देवनागरी पालि सीरीज, पालि, प्रकाशन बोर्ड, बिहार, १९५९ ई.

समन्तपासादिका — नियपट्ठकथा भाग–१, सम्पा. बिरबल शर्मा, नव नालन्दा महाबिहार, नालन्दा, बिहार, १९६४ ई.

जैन साहित्यः

उक्ति व्यक्ति प्रकरण — दामोदर विरचित, सपा जिनविजय मुनि, सिन्धीजैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थाक न ३६, सिंधी जैनशास्त्र शिक्षापीठ, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९५३ ई, (प्रथम सस्करण)

विविधतीर्थ कल्प — जिनप्रभु सूरि कृत स मुनि श्री जिनविजय, सिधी जैन ग्रन्थालय १०, कलकत्ता, बम्बई, १९३४ ई

पुरातन प्रबन्ध सग्रह · जिन विजय (सम्पा) कलकत्ता, १९३६ ई.

त्रिषष्टि सलाकापुरूष चरित्र · हेमचन्द्र विरचित, भाग–४, सम्पा जी. एच भट्ट अग्रेजी अनुवाद, जौनसन एम एच., ओरियन्टल इस्टीच्यूट ऑफ बडौदा, १९५४ ई

स ायक ग्रन्थ सूचीः

अशरफ के एम — हिन्दुस्तान के निवासियो का जीवन और उनकी परिस्थितिया भारत सरकार शिक्षामत्रालय द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, १९६६ ई

इलियट एव डाउसन . भारत का इतिहास, अनुवादक डॉ मथुरा लाल शर्मा, डॉ. गोपीनाथ शर्मा, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, १९७४, भाग–१ से भाग–८

इरफान हबीब . मध्य कालीन भारत, मैकमिलन, १९८० ई

उपाध्याय डॉ० बलदेव — काशी की पाण्डित्य परम्परा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी, १९८३ ई. (प्रथम संस्करण)

कविराज गोपीनाथ — काशी की सारस्वत साधना बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९६५ ई

काणे पाण्डु रगवामन — धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १ – ३ हिन्दी अनुवाद, अर्जुन चौबे काश्यप, हिन्दी समिति उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ, १६७३ ई

कनिघम — सिक्खो का इतिहास (अनु रमेश तिवारी तथा सुरेश तिवारी) वाराणसी छठा सस्करण, १६६५ ई

कानूनगो कालिका रजन — दाराशिकोह (हिन्दी अनु र च मजूमदार प्रकाशक गया प्रसाद एण्ड सस, आगरा, १६३४ ई

कुरील रामचरन — भगवान रविदास की सत्यकथा, कानपुर, स १६६७

खुराना के एल — मध्यकालीन भारतीय सस्कृति, तृतीय सस्करण, आगरा, १६६४

गोयल श्रीराम — मागध सातवाहन कुषाण, साम्राज्यो का युग, कुसुमाञ्जलि प्रकाशन, मेरठ संस्करण १६६३ ई नन्द मौर्य साम्राज्य का इतिहास कुसुमाञ्जलि प्रकाशन, मेरठ, १६६२ ई संस्करण, १६६२ ई

गुप्त सरयू प्रसाद — महाभारत तथा पुराणो के तीर्थों का आलोचनात्मक अध्ययन चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन, वाराणसी।

गुप्त गणपति चन्द्र — हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (११८४–१८५७) प्रथम खण्ड, इलाहाबाद, १६६४

गुप्त माता प्रसाद — तुलसीदास, प्रयाग, चतुर्थ सस्करण, १६६५ ई

चतुर्वेदी सीताराम — भारतीय सस्कृति का केन्द्र वाराणसी, काशी स २०२४ ई

जैन जगदीश चन्द्र एव — जैन साहित्य का वृहद इतिहास, भाग–२, पार्श्वनाथ विद्याश्रम मेहता मोहनलाल शोध सस्थान जैनाश्रम, वाराण्सी, १६६६ ई.

जहागीर	जहागीर नामा (अनु पुरूषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी) काशी, सम्वत् २०१२
झुनझुनवाला श्रीमति पद्मावती	सन्त रैदास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १६६५ ई
टडन तेज नारायण	स्टीक कबीर बचनावली, लखनऊ, १६६२ ई
द्विवेदी हजारी प्रसाद	सत कबीर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १६७३ ई प्रबन्ध चिन्तामणि का हिन्दी अनुवाद
धर्मरक्षित भिक्षु	सारनाथ का इतिहास, नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, १६६१ ई
पाण्डेय उमा	वाराण्सी भारत के सास्कृतिक केन्द्र, दि मैकमिलन एण्ड कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, मद्रास, १६८० ई
पाठक डॉ विशुद्धानन्द	उत्तरभारत का राजनीतिक इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान लखनऊ, तृतीय सस्करण, १६८२ ई
परमात्माशरण तथा राय कृष्णदास	काशी प्रदर्शन, वाराणसी, १६६६ ई
बर्नियर	बर्नियर की भारत यात्रा, (अनु बाबू राम चन्द्र वर्मा) भाग–४, काशी, स १६६५ वि ।
बाबू श्याम सुन्दर दास	कबीर ग्रन्थावली, प्रयाग, १६२८
भटनागर डॉ. रामरतन	तुलसी नव मूल्याकन, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, १६७१ई
भक्ति सुधास्वाद तिलक	भक्तमाल, लखनऊ, १६५१ ई.
मिश्र जयशकर	. ग्यारहवी सदी का भारत (अलबीरूनी के आधार पर एक सांस्कृतिक अध्ययन) भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १६६८ ई.

एम० ए० शेरिंग — बनारस दि सेक्रेट सिटी आफ दि हिन्दूज इन एनशियन्ट हिन्दूज इन एनशिएन्ट एण्ड मार्डन टाइम्स रिप्रिन्ट, द्वितीय सस्करण, दिल्ली, १९७५,

एम० अतहर अली — दि मुगल नोबिलिटी अण्डर औरगजेब, नई दिल्ली, १९६६

मिश्र सुदामा प्रसाद — प्राचीन भारत मे जनपद राज्य, काशी विद्यापीठ प्रकाशन, वाराणसी, १९७२ ई.

मोतीचन्द्र · काशी का इतिहास हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई, १९६२ ई (प्रथम सस्करण) सार्थवाह (प्राचीन भारतीय पथ पद्धति) बिहार राष्ट्भाषा परिषद सम्मेलन भवन पटना, १९५३ ई

मैकडानल एव कीथ — वैदिक इन्डेक्स, हिन्दी अनु, रामकुमार राय। चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, १९६२

मोहम्मद हाशिम खाफी खान — मुन्तखब–उल–लुबाब (हिन्दी अनु) पी आर भाटिया तथा एल एन शर्मा) लखीमपुर खीरी, तृतीय संस्करण, १९६१ ई

मिश्रा मीना उर्फ डॉ देवमणि — सत साहित्य मे मानव मूल्य, इलाहाबाद, १९८९ ई

प्रिय प्रो श्याममनोहर — प्राचीन भारत मे आर्थिक जीवन, प्रकाशक प्रमाणिक पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९९७ ई

मजूमदार श्री एम आर — माधवानल काम कदला प्रबन्ध बडौदा, १९४१ ई

महतो, एम.एल — जातक कालीन भारतीय सस्कृति, पटना, १९५८ ई

मोदी उर्मिला : काशी की साधक परम्परा।

मुखर्जी विश्वनाथ : बना रहे बनारस, यह बनारस है, वाराणसी, १९७८ ई

मुखर्जी विश्वनाथ	काशी का अतीत और वर्तमान, वाराणसी, प्रथम सस्करण, १६५६ ई
मोरलैण्ड डब्ल्यू एच	मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था, इतिहास प्रकाशन सस्थान, ४६२ मालवीय नगर, इलाहाबाद (पहला संस्करण)
मोरलैण्ड डब्ल्यू एस	अकबर की मृत्यु के समय भारत।
हरबस मुखिया	मध्यकालीन भारत नए आयाम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, १६६८ ई
राय चौधरी हेनचन्द्र	प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास किताब महल, इलाहाबाद।
रावत डॉ चन्द्रभान	तुलसी साहित्य बदलते प्रतिमान, मथुरा, १६७१ ई
राय डॉ चन्द्रदेव	कबीर और रैदास, सौहार्द प्रकाशन, आजमगढ १६३८ ई
डॉ राधेश्याम	मुगल सम्राट बाबर, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, सम्मेलन भवन, कदम कुऑ, पटना १६७४ ई
लूनिया बी एन	अकबर महान, इन्दौर, १६७२ ई
वर्मा बालमुकुन्द	काशी या बनारस, ब्रह्यनाल, बनारस सिटी, १६३५ ई
वैद्यनाथ सरस्वती	भोग मोक्ष समभाव काशी का सामाजिक, सास्कृतिक (सम्पा.)स्वरूप, डी.के.प्रिंटवर्ल्ड (प्रा) लि नई दिल्ली, २००० ई.
बाजपेई कृष्णदत्त	भारतीय व्यापार का इतिहास, मथुरा, १६५१
विद्यालकार भीमसेन	शिवा जी, दिल्ली, १६४३ ई.

वेलवेडियर प्रेस (प्रकाशक)	रैदास की बानी और उनका जीवन चरित्र, प्रयाग, छठा सस्करण, १६४८ ई
वियोगी हरि	विनय पत्रिका, काशी, १६६२ ई
विश्वकर्मा डॉ ईश्वर शरण	काशी का ऐतिहासिक भूगोल (प्रारम्भ से लेकर १२ वी सदी ई. तक) रामानन्द विद्याभवन, दिल्ली, प्रथम सस्करण, १६८७ ई
शर्मा श्रीराम	मुगल शासको की धार्मिक नीति, एस चन्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली, १६६७ ई.
शाह नवाज खॉ समसामुद्दौला	मआसिर–उल–उमरा (अनु ब्रजरत्न दास) भाग–२,३,४, वाराणसी, सम्वत् २००४
सिद्दीकी नोमन अहमद	मुगल कालीन भू–राजस्व प्रशासन १७०० ई–१७५० ई राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, १६७७ ई
सहायक रामजी लाल	कबीर दर्शन, लखनऊ, प्रथम संस्करण, १६६२ ई
सिह राम बचन	वाराणसी एक परम्परागत नगर, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १६७३ ई
सिह विजयपाल	काशी कीर्ति कथा, प्रकाशक छत्रपति कल्याण समिति, मुद्रक रत्ना आफसेट्स लि कमच्छा, वाराणसी, २०५६ वि
सुकुल कुबेरनाथ	वाराणसी वैभव, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १६७७ ई
सक्सेना बनारसी प्रसाद	मुगल सम्राट शाहजहॉ, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, द्वितीय सस्करण, १६८७ ई.
रिजवी सैय्यद अत्तहर अब्बास	आदि कालीन तुर्क भारत, अलीगढ, १६५६ ई खलजी कालीन भारत, अलीगढ़ १६५५ ई

उत्तर तैमूर कालीन भारत भाग–१,२, अलीगढ १६५८ ई १६५६ ई
मुगलकालीन भारत बाबर, अलीगढ, १६६० ई
मुगल कालीन भारत हुमायूँ भाग–१,२, अलीगढ, १६६१ ई– १६६२ ई

सरदेसाई गोबिन्द सखाराम — मराठो का नवीन इतिहास प्रथम खण्ड (अनु राधे मोहन अग्रवाल) आगरा द्वितीय सस्करण, १६६३ ई

सरकार यदुनाथ — औरगजेब का सक्षिप्त इतिहास, आगरा, १६४८ ई
शिवा जी और उनका युग (अनु मदन लाल जैन), आगरा, प्रथम संस्करण, १६६४ ई.

सिह उदय भान — तुलसी, दिल्ली, १६६७ ई

सिह रामधारी दिनकर — संस्कृति के चार अध्याय, पटना चतुर्थ सस्करण, १६६६ ई

सिह डॉ कामेश्वर प्रसाद — कबीर मूल्याकन, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी, १६६२ ई

सिंह राजेन्द्र — तुलसी की समन्वय साधना, भाग–१,२, वाराणसी।

सैय्यद एकबाल अहमद जौनपुरी — शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास, जौनपुर, प्रथम सस्करण, १६६८ ई

हरिशकर — काशी के घाट कलात्मक एवं सास्कृतिक अध्ययन, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी, प्रथम सस्करण, १६६६ ई.

त्रिपाठी डॉ विश्वनाथ — लोकवादी तुलसीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १६७४ ई.

त्रिगुणारात डॉ गोविन्द — कबीर की विचारधारा, साहित्य निकेतन, कानपुर, द्वितीय सस्करण, २०१४ ई

हिन्दी का निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, मुरादाबाद।

श्रीवास्तव आर्शीवादी लाल — अकबर महान (अनुवाद डॉ भगवान दास गुप्ता), आगरा, प्रथम सस्करण, १९६७ ई

श्रीवास्तव आर्शीवादी लाल — मध्यकालीन भारतीय सस्कृति आगरा, प्रथम सस्करण, १९६७ ई

श्रीवास्तव बदरी नारायण — रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव, प्रयाग, प्रथम सस्करण, १९५७ ई

श्रीवास्तव हरिशकर — हुमायूँ स्टर्लिंग पब्लिर्श प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, १९८५ ई.

हुसैन युसूफ — मध्ययुगीन भारतीय सस्कृति (अनु मुहम्मद उमर) अलीगढ

सक्सेना बनारसी — मुगल सम्राट शाहजहाँ, प्रकाशक, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, द्वितीय प्रति, १९८७ ई

डॉ झारखण्डे चौबे
डॉ. कन्हैया लाल श्रीवास्तव — मध्ययुगीन भारतीय समाज एव सस्कृति प्रकाशक, अरूण सिह, निदेशक, उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान लखनऊ, तृतीय सस्करण, २००० ई

बनारस गजेटियर,
बलवन्तनामा,
जौनपुर गजेटियर,

शोध ग्रन्थ–

प्रो. रेखा मिश्र — वीमेन इन मुगल इण्डिया, नई दिल्ली,

डॉ. हेरम्ब चतुर्वेदी — दि सोसायटी आफ नार्थ इण्डिया इन दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी, एस डिफेक्ट टू कन्टेम्परेरी हिन्दी लिटरेचर,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, १९६०

शेफाली चटर्जी	शर्की सुल्तानो का इतिहास, पुस्तक महल, इलाहाबाद
डॉ हृदय नारायण मिश्र	बनारस की चित्र कला—१९८४ हस पत्रिका,